विषय सूची

* * *

चित्र-सूची

पटना में होने वाली तृतीय अखिल भारतवर्षीय महिला-कॉन्फ़्रेन्स की सभानेत्री

श्रीमती रानी ललितकुमारी साहिबा, मण्डी
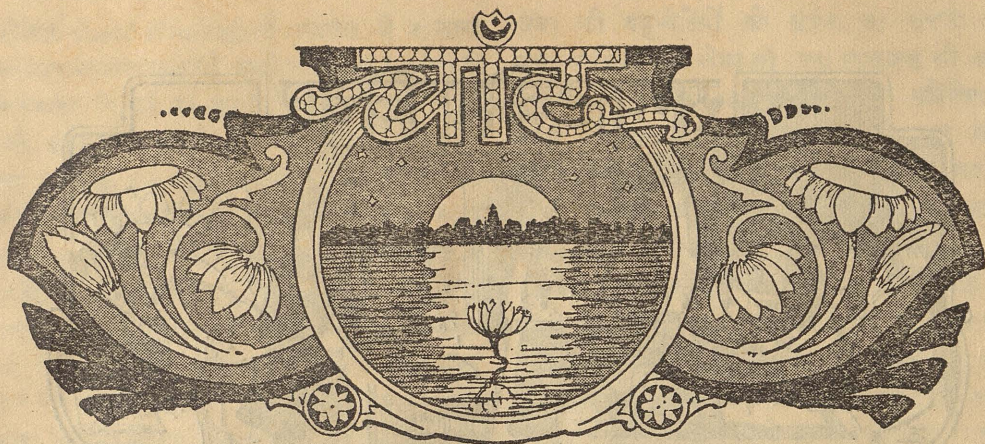
Highly appreciated and recommended for use in Schools and Libraries by Directors of Public Instruction, Punjab, Central Provinces and Berar, United Provinces and Kashmir State etc., etc.
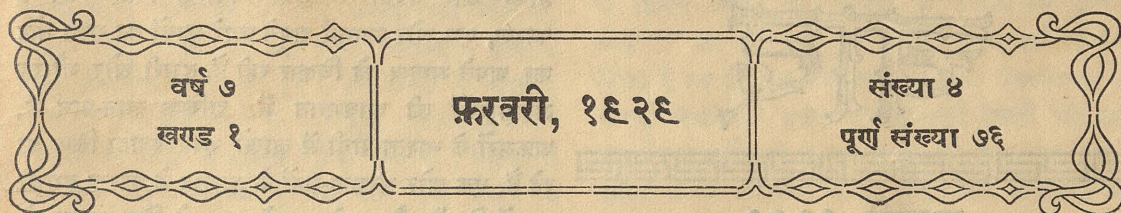
सन्देह

[रचयिता—श्रीमती महादेवी जी वर्मा]

(१)

बहती जिस नक्षत्र-लोक में,
निद्रा के श्वासों से वात।
रजत-रश्मियों के तारों पर,
बेसुध-सी गाती थी रात।

(२)

अलसाती थीं लहरें पीकर—
मधु-मिश्रित तारों की ओस।
भरती थीं सपने गिन-गिन के—
मूक व्यथाएँ अपने कोष!

(३)

दूर उन्हीं नीलम-कूलों पर,
पीड़ा का ले झीना तार।
उच्छ्वासों की गूँथी माला,
मैंने पाई थी उपहार।

(४)

यह विस्मृति है या सपना वह—
या जीवन-विनिमय की भूल।
काले क्यों पड़ते जाते हैं,
इसके वे सोने-से फूल!

फ़रवरी, १९२९

देशी नरेशों की विलासिता

भागे भारत को आज इस दुरवस्था तक पहुँचाने में तथा उसे पराधीनता की बेड़ी से जकड़ने में भारतीय नरेशों का कम हाथ नहीं रहा है, इस देश के पतन का इतिहास हमारे इस कथन का साक्षी है ! आज यदि हमारे देश के नरेन्द्र-मण्डल में १०-५ नरेश भी अफ़ग़ानिस्तान के यशस्वी और देश-भक्त अमानुल्ला की भाँति अपने देश के शुभ-चिन्तक और समाज-सुधार के पक्षपाती होते तो संसार की कोई भी शक्ति भारत की ओर उँगली उठाने का साहस न कर सकती, पर यहाँ की तो बात ही दूसरी है । एक ओर प्रजा दाने-दाने को तरस रही है—भूख से व्याकुल होकर और बच्चों की क्षुधा निवारण न कर सकने के कारण, एक ओर माताएँ अपने प्यारे बच्चों का गला घोंट कर अपने मातृत्व को धिक्कार रही हैं, दूसरी ओर गौराङ्ग महाप्रभुओं की आवभगत में, क्षणिक खान-पान में, अफ़सरों के नाश्ता-पानी में लाखों रुपए स्वाहा किए जा रहे हैं, एक ओर संरक्षण-गृहों के अभाव के कारण हमारी लाखों स्त्रियाँ और बच्चे हमसे सदा के लिए अलग हो रहे हैं, दूसरी ओर कुत्तों की ख़रीद में और उनके लालन-पालन में लाखों रुपए व्यय किए जा रहे हैं ! एक ओर शिक्षा-सम्बन्धी संस्थाओं के अभाव के कारण करोड़ों भारतीय बालक-बालिकाएँ शिक्षित होने के नैसर्गिक अधिकार से वञ्चित रक्खी जाती हैं, दूसरी ओर प्रजा के रक्त से डूबे हुए धन-राशि को वेश्याओं के श्रीचरणों पर समर्पित किया जा रहा है !! हमारी ये पंक्तियाँ निराधार हों, सो बात नहीं है, हम इसके प्रमाण भी दे सकते हैं, अस्तु ।

पूरे तीन वर्ष की बात है, शिमला-शैल पर हमारे एक महाराजा बहादुर ने लाट-साहब की 'टी पार्टी' में ६ लाख से अधिक व्यय करके अपनी राज्य-भक्ति का परिचय अपने प्रभुओं को दिया था ! नवानगर के जाम साहब ने लॉर्ड सिडनहम (Lord Sydenham) की आवभगत में ७ लाख, लॉर्ड वेलिङ्गटन (Lord Wellingdon) के सत्कार में १० लाख, सर जॉर्ज लॉयड (Sir George Lloyed) की ख़ुशामद में ५ लाख,

लॉर्ड रीडिङ्ग (Lord Reading) के स्वागत में ५ लाख और वर्तमान वायसराय लॉर्ड इरविन (Lord Irwin) के स्वागत-सत्कार में पूरे २५ लाख रुपयों की जो होली खेली थी, हमारा वह संस्मरण अभी पुराना नहीं हुआ है। इस अन्तिम २५ लाख की होली का ब्योरा भी सुन लीजिए, ४ लाख की नई मोटरें ख़रीदी गईं ५ लाख ८० हज़ार की मोटर बोटें, नौकरों की वर्दी-चपरास में ६५ हज़ार रुपए व्यय किए गए, ४० हज़ार का नया फ़र्श तथा क़ालीन आदि ख़रीदा गया, २ लाख रुपए सजावट में व्यय किए गए और १५ हज़ार रुपयों के फूल तथा ५ हज़ार की सुनहरी मालाएँ ख़रीदी और चढ़ाई गईं, १॥ लाख का बिजली का नया सामान ख़रीदा गया, ५० हज़ार के ख़ीमें लिए गए, २५ हज़ार का पेट्रोल और २० हज़ार आतिशबाज़ी में स्वाहा किए गए, १ लाख शिकारगाह की सजावट में लगाए गए और १ लाख दावत में, १ लाख का फ़र्नीचर ख़रीदा गया और ३५ हज़ार इस उत्सव की स्मृति को चिरस्थायी करने के लिए फ़ोटोग्राफ़री में व्यय हुए! इन रक़मों के अलावा ३ लाख रुपए ऐसे कामों में व्यय हुए, जिनका प्रकाशन शिष्टता की दृष्टि से वञ्चित रक्खा गया है!! विलायती समाचार-पत्रों के कॉलमों में एक ओर इस प्रकार के नित्य होने वाले राजशाही ख़र्चों की सूची छपा करती है, दूसरी ओर भारत की दरिद्रता का करुण-क्रन्दन! पाश्चात्य देशवासी, जो भारतीय परिस्थिति और यहाँ के वातावरण से भली-भाँति परिचित नहीं हैं, सहसा विश्वास नहीं करते कि अधिकांश भारतवासी आज भूखों मर रहे हैं। देशी नरेशों की इस हृदय-हीनता पर उनका अविश्वास करना स्वाभाविक ही है। महाराजा पटियाला के कुत्तों की प्रेम-कथा अभी पुरानी नहीं हुई है। पिछली बार जब आप विलायत पधारे थे, आपने लाखों रुपए कुत्तों के ख़रीद-फ़रोख़्त में व्यय किए थे, यह देख कर कुत्ता-प्रेमी अङ्गरेज़-जाति के भी छक्के छूट गए थे और महाराजा पटियाला के कुत्ता-प्रेम की जो प्रशंसा हमने दिल मसोस कर विलायती समाचार-पत्रों में पढ़ी थी, वह भूल जाने का विषय नहीं है।

अब नरेन्द्र-मण्डल की चरित्र-हीनता तथा विलास-लीला की ओर ज़रा दृष्टिपात कीजिए। कई देशी नरेशों, ताल्लुक़ेदारों तथा ठाकुरों के लिए गुण्डों द्वारा प्रजा की बहू-बेटियों को उड़वा कर अपनी क्षणिक पर्यङ्कशायिनी बना लेना तो एक साधारण सी बात है, जिससे अधिकांश भारतवासी पूर्णतः परिचित हैं। आज से क़रीब दो वर्ष पूर्व एक देशी रियासत की एक हतभागिनी महिला ने परदा-प्रथा के विरुद्ध हमारी एक टिप्पणी पढ़ कर जो उद्गार प्रकट किए थे, वह आज भी हमारे कानों में गूँज रहे हैं। उस देवी ने अपने शासक की अमानुषिक इन्द्रिय-लोलुपता का हृदय-भेदी वर्णन करते हुए लिखा था—"परिस्थिति यह है, कुँओं पर से, घाट पर से तथा घर के आँगनों में से केवल इस अपराध के कारण अनेक स्त्रियाँ उड़वा ली जाती हैं कि परमात्मा ने उन्हें सौन्दर्य प्रदान करने में विशेष उदारता की है! तब भला आप ही बतलाइए, जब कठोर परदे को भेद कर शासकों की कुटिल आँखें उन पर पड़ रही हैं तब परदा-प्रथा उठ जाने से—जब रूप-राशि इन नर-पशुओं के सामने बिखेर दी जायगी तो हमारी क्या दुर्दशा होगी?" जब से इस देवी का यह करुणापूर्ण पत्र हमें मिला है तब से, जब कभी हम प्रसङ्गवश परदा-प्रथा के विरुद्ध लिखने की इच्छा करते हैं तभी स्त्रियों की यह मूक-वेदना मूर्तिमती करुणा का स्वरूप धारण कर हमारी आँखों से गर्म आँसुओं की दो बूँदें सामने के काग़ज़ पर अवश्य टपका देती है। हम जानते हैं, पाठकों को सहसा विश्वास नहीं होगा, पर जिन बातों का हम उल्लेख करने जा रहे हैं वे सभी बातें एकान्त सत्य हैं, अस्तु।

पीढ़ियों से चले आए अनेक दुर्गुणों के कारण अनेक राज्य के शासक नपुंसक हैं और अप्राकृतिक व्यभिचार में आकण्ठ लिप्त हैं, पर दूसरों के सामने शान तो रखनी ही होगी, इसलिए रानियाँ एक-दो नहीं, दर्जनों उनके नाम पर आँसू बहा रही हैं—पल्ले उठा-उठा कर उन्हें, अपने माता-पिताओं की हृदय-हीनता तथा अपने नारकीय जीवन को कोस रही हैं! बात यहीं तक होती तो ग़नीमत थी, उन्हें जो लज्जापूर्ण जीवन व्यतीत करना पड़ रहा है वह एक बार ही असह्य है, अमानुषिक है और हैं हृदय को हिला देने वाली, किन्तु सत्य घटनाएँ!! राजा साहब स्वयं शराब पीकर मस्त हो जाते हैं, इष्ट-मित्रों को तथा राज्य के अफ़सरों को भी पिला कर मस्त कर दिया जाता है। जब सभों पर शैतान अपनी सवारी गाँठ लेता है, तब राजा साहब बहादुर अपनी दो-तीन चुनी हुई रानियों को

बुलवा कर उन्हें पारा-पारी अफ़सरों तथा मित्रों की काम-लिप्सा शान्त करने की आज्ञा देते हैं और आप स्वयं एक ऊँची कुरसी पर बैठ कर इस अमानुषिक दुराचार का दृश्य बड़े आशापूर्ण नेत्रों से देखते और आनन्दित होते हैं !! कुछ ही दिनों की बात है, इस प्रकार के नारकीय जीवन से दुखी होकर एक अभागिनी रानी ने इस विलास-भवन में प्रवेश करते ही तमन्चे से एक ऐसे अफ़सर को मार डाला था, जो उसे अपने बाहु-पाश में लेने को सब से पहले आगे बढ़ा था। इसके बाद पिस्तौल का मुँह राजा साहब की छाती के सामने करके उस देवी ने कहा था—"मैं सदा आपकी कृपा पर निर्भर थी, पर इस समय आपका जीवन मेरी कृपा पर अवलम्बित है। अगर मैं चाहूँ तो आपकी अमानुषिक हरकतों के लिए आपको मार कर, प्रजा का उपकार तथा पृथ्वी का बोझ बात की बात में हलका कर सकती हूँ, पर आप नहीं जानते कि मैं ऐसा क्यों नहीं कर रही हूँ ! आपके सौभाग्य से मैं हिन्दू-स्त्री हूँ और जिस वातावरण में मैं पली हूँ वह मुझे ऐसा करने से रोकता है, यही कारण है कि मैं आप पर हाथ नहीं छोड़ सकती, पर साथ ही मैंने भी इस नारकीय जीवन को न धारण करने की शपथ खा ली है।" इतना कहते हुए उस रानी ने अपनी छाती में स्वयं आघात कर उसी विलास-भवन में अपनी जीवन-लीला समाप्त कर दी !! व्यभिचार के उपस्थित कीड़े मन्त्र-मुग्ध की भाँति खड़े हुए यह सारा दृश्य देखते रहे। किसी के किए कुछ भी नहीं हो सका! नशा उतरने पर सबको अपने पतन का ध्यान आया और यह ख़बर फैलाई गई कि रानी की मृत्यु का कारण एकाएक हृदय की गति बन्द हो जाना था !!

एक दूसरे राज्य की एक नारकीय घटना सुनिए। वहाँ की परिस्थिति भी उपरोक्त राज्य से मिलती-जुलती ही है। महाराजा साहब बड़े विनोद-प्रिय हैं और उनका सारा दिन आमोद-प्रमोद तथा शराब-कबाब में ही व्यतीत होता है, शिकार का भी बहुत शौक़ है। विनोद का एक उदाहरण हमें इसी प्रान्त के एक प्रतिष्ठित पादरी साहब ने सुनाया था, वह इस प्रकार है। प्रायः ऐसा होता है कि महाराजा साहब दीवानख़ाने में ख़ूब सज-बज कर बैठते हैं, शराब का दौर चलता है, प्रायः ऐसा होता है कि अपने साथ ही इष्ट-मित्रों को शराब पिला कर बद-मस्त कर दिया जाता है और किसी बहाने से उनकी बहू-बेटियों अथवा माँ-बहिनों को बुलवा लिया जाता है। दोनों की आँखों पर काले कपड़ों की पट्टी बाँध दी जाती है और उनसे परस्पर सम्भोग करने को कहा जाता है। मुँह काला करने के बाद उनकी पट्टी खोल दी जाती है और तब वे देखते हैं कि बहिन भाई के साथ पड़ी है और माता पुत्र के साथ, ससुर पुत्र-वधू की पर्यङ्कशायिनी है और पुत्री पिता की !! इस पर ख़ूब मख़ौल उड़ाया जाता है और उन्हें माँ-बहिन लगाकर गालियाँ दी जाती हैं। इसे साधारण विनोद-प्रियता का एक उदाहरण ही समझना चाहिए।

राजपूताने की एक रियासत की विलास-लीला तो अपनी चरम-सीमा लाँघ चुकी थी। सौभाग्य से वे राजा साहब अब इस क्षणभङ्गुर संसार में नहीं हैं, पृथ्वी उनके बोझ से हल्की हो चुकी है, पर अन्य तरीक़ों द्वारा उनकी स्मृति अन्य रूपों में अब तक क़ायम है। उन नारकीय राजा साहब के जीवन-काल में—जिसे अभी बहुत दिन नहीं हुए—कैसा अमानुषिक व्यभिचार होता था, उसका एक उदाहरण यहाँ दे देना पर्याप्त होगा, जो हमारे एक परम प्रतिष्ठित और आदरणीय मित्र ने हमें बतलाया है :—

राजा साहब नपुंसक थे, पर चाहते थे समस्त सांसारिक सुखों का उपभोग करना। आपने अपनी नपुंसकता के इलाज का जो आविष्कार किया था, वह उन्हीं के उपयुक्त था। आपने एक भवन ऐसा बनवाया था जिसके बीच में एक २० सीटों का आमोद-चक्र (Joy Wheel) लगाया गया था और ऊपरी भाग में एक रत्न-जटित कुर्सी लगाई गई थी। 'आमोद-चक्र' का ब्योरा इस प्रकार था। चारों ओर बीस रेल के सेकेण्ड क्लास जैसे बर्थ (Birth) बने थे। सब पर बिजली की बत्तियाँ फ़िट थीं और इन सभों के बटन (Switch) ऊपर रत्न-जटित कुरसी के पास लगे थे। जब महाराजा साहब की इच्छा प्रज्ज्वलित होती, वे तुरन्त मुसाहिबों को इसकी सूचना देते। तुरन्त २० स्त्री-पुरुष इस विलास-भवन में बुलाए जाते और घण्टी बजते ही स्त्री-पुरुषों का एक-एक जोड़ा आमोद-चक्र में एक-एक ख़ाने में लेट जाता और महाराजा साहब ऊपर की रत्न-जटित कुरसी पर विराजमान होकर बत्तियाँ गुल कर देते। दूसरी घण्टी बजते ही सब सम्भोग

शुरू कर देते। बीच-बीच में बत्तियाँ बाल और हुक्का कर महाराजा साहब आनन्द लाभ करते। फिर जोश में आकर वे नीचे उतर आते और बड़े ग़ौर से वे स्त्री-पुरुष रूपी इन कल-पुर्ज़ों का निरीक्षण करते। जब उनकी काम-पिपासा पूर्ण-रूपेण जाग्रत होती, तब किसी भी पुरुष को हटा कर स्वयं × × ×

यह तो केवल कुछ देशी नरेशों में प्रचलित व्यभिचार के कुछ सीन-मात्र हैं, इसके अतिरिक्त एक-एक राजा की सैकड़ों रानियों का होना तो जगत्-विख्यात बात है। शायद ही कोई अभागा राजा हो जो अपनी एक भार्या से सन्तुष्ट रहता हो। ऐसी परिस्थिति में राज-परिवारों में व्यभिचार का आधिक्य होना कितना स्वाभाविक है, इस बात का सहज ही में अनुमान लगाया जा सकता है। एक व्यक्ति सैकड़ों विवाहिता अथवा रखेल स्त्रियों को सन्तुष्ट कर सकेगा, यह बात ज़रा विचार करने की है। प्रायः देखा गया है कि सैकड़ों रानियों में से २-४ ही ऐसी सौभाग्यशालिनी महिलाएँ होंगी, जो अपने पति-प्रेम की अधिकारिणी हों। उनमें भी स्थायी प्रेम नहीं होता, कुछ दिनों तक वे एक स्त्री के प्रेम-पाश में बँधते हैं, फिर दूसरी के और फिर तीसरी अपने भाग्य पर गर्व करती है। शेष स्त्रियाँ प्रकृति से किस प्रकार युद्ध करने में समर्थ हो सकती होंगी—विशेष कर, जबकि वे इस प्रकार के दूषित एवं पापपूर्ण वायुमण्डल में रहती हों ; जब उनमें शिक्षा का अभाव हो और जब उनके चारों ओर प्रलोभनों के ढेर लगे हों। उनका ऐसी परिस्थिति में सदाचार के पथ से विचलित न होना आश्चर्य एवं कौतूहल का विषय हो सकता है, उसमें लिप्त होना नहीं ! इसका एक दूसरा पहलू भी है। मान लीजिए एक राजा की १०० रानियाँ अथवा रखेलियाँ हैं। राजा का देहान्त हो जाता है, फिर इन १०० स्त्रियों का क्या भविष्य होगा, कल्पना के सहारे कोई भी इस बात का अनुमान लगा सकता है !

महाराजा इन्दौर की व्यभिचार-लीला अभी पुरानी नहीं हुई है। मुमताज़ बेगम सम्बन्धी बावला-हत्याकाण्ड को भारतवासी भूलने भी न पाए थे कि महाराजा साहब बहादुर की प्रणय-लीला का दूसरा अध्याय शुरू हो गया था। एक साधारण वेश्या के कारण ही महाराजा इन्दौर को गद्दी से उतारा गया था, इस घटना को पाठक भूले न होंगे। इसी झेंप को मिटाने के लिए महाराजा तुकोजी राव बहादुर सन् १९२६ में इङ्गलैण्ड चले गए, वहाँ से फ़्रान्स गए और फिर स्वीज़रलैण्ड। पर कहीं भी आपकी आत्मा को शान्ति नहीं मिली—मन-चाही वस्तु प्राप्त नहीं हो सकी। अन्त में कैलिफ़ोर्निया (अमेरिका) में सैनफ़्रैन्सिस्को के पास मिस मिलर से उनकी कैसे भेंट हुई और किस छल-बल से उसे प्रेम-पाश में आबद्ध किया गया, यह सब हाल ही में घटित होने वाली मनोरञ्जक घटनाएँ हैं, इसलिए विशेष लिखना व्यर्थ है। खुले व्यभिचार पर परदा डालने के लिए उनके कुछ 'जी-हुज़ूर' कह सकते हैं कि मिस मिलर से उनका विवाह धार्मिक रीति से हुआ है, पर हम इस विचार के पोषक नहीं हैं। यह बिलकुल सत्य है कि शारदापीठ के जगद्गुरु शङ्कराचार्य ने स्वयं इन दो प्रेमियों को विवाह-सूत्र में बाँध कर, इस खुले व्यभिचार पर धर्म की मुहर लगा दी है, पर धर्म के इस उपहास को हमने सदा घृणा तथा रोष की दृष्टि से देखा है। पत्रकार की हैसियत से अध्ययन ही हमारा व्यवसाय है और अपने इस व्यवसाय से जो अनुभव हम प्राप्त कर सके हैं, उसके बल पर हम कह सकते हैं कि धर्म-गुरुओं की व्यवस्था जो चाहे और जब चाहे धन-रूपी कलियुगी भगवान द्वारा ख़रीद सकता है। स्वर्गीय लोकमान्य तिलक ने काशी के धर्म-गुरुओं से समुद्र पार करने की व्यवस्था १०,००० कलदार रुपयों से ख़रीदी थी, यह हमें ख़ूब स्मरण है। आज इस मद में रुपए ख़र्चने वालों की कमी है, नहीं तो बाल-विवाह आदि सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध भी व्यवस्था ख़रीदी जा सकती थी, अस्तु।

महाराजा तुकोजीराव की दो विवाहिता सती और अनुपम सुन्दरी रानियाँ उनके नाम पर रक्त के आँसू बहा रही हैं। यह समाचार भी हमसे छिपा नहीं है कि मिस मिलर की प्रणय-लीला का समाचार सुनते ही इन्दौर की छोटी महारानी साहिबा श्रीमती इन्दिराबाई ने अन्न-जल त्याग दिया था, पर फल कुछ भी नहीं हुआ। आज तक ये बेचारी रानियाँ आन्तरिक सन्ताप की असह्य आग में धायँ-धायँ करके जल रही हैं और महाराजा बहादुर फ़्रान्स-अवस्थित निकुञ्जों में केलि-लीला कर रहे हैं ! चाँदी की जूतियों से बहुमत को अपने पक्ष में करने का भूतपूर्व महाराजा इन्दौर और उनके साथियों ने जो असफल प्रयत्न किया है और मिस मिलर से विवाह

कर पूर्व तथा पश्चिम को एक सूत्र में बाँधने की जो दुहाई दी गई है वह आज के शिक्षित समाज को धोखा देने में कदापि समर्थ नहीं हो सकती !

इन्दौर-नरेश की दोनों रूप-यौवन-सम्पन्ना महारानियों की—महारानी चन्द्रावतीबाई तथा महारानी इन्दिराबाई की—आज जो दयनीय दशा है, उन्हें अपने जीवन से जैसी घृणा और असन्तोष हो गया है, उस पर विचार करते एक बार ही हृदय काँप उठता है। ये दोनों महारानियाँ उच्च कोटि की शिक्षिता, सुन्दरी तथा आदर्श पतिभक्ता रमणियाँ हैं, जिन्हें इन्हीं सद्गुणों के कारण आज रक्त के आँसू बहाने पड़ रहे हैं। बड़ी महारानी साहिबा के वे उद्गार, जो उन्होंने मिस मिलर की शादी के समय अपनी सौत से प्रकट किए थे, उनके हृदय की विशालता, उनकी सहनशीलता तथा उनकी मूक-वेदना के परिचायक हैं। जब छोटी महारानी साहिबा ने खान-पान परित्याग कर अपनी असाधारण मानसिक व्यथा का परिचय दिया था उस समय बड़ी महारानी साहिबा ने आँखों में आँसू भर जिन शब्दों में उन्हें सान्त्वना दी थी, उन्हें धैर्य बँधाया था, वे रमणी-हृदय की महानता का परिचय देते हैं। आपने छोटी महारानी साहिबा से कहा था—"इस घटना से इतनी व्यथित क्यों होती हो बहिन! हमारे पति ने मेरे जीवित रहते हुए जब तुम्हारे साथ विवाह रचाया था तब क्या मैंने पति अथवा तुम्हारा सहयोग नहीं किया था? हम स्त्रियाँ हैं बहिन, हिन्दू-समाज ने—हिन्दू-धर्म-ग्रन्थों ने ही जब हमारे साथ इतना घोर अन्याय किया है, तब पति को क्यों दोष देती हो? वे भी तो स्त्रियाँ हैं, जिनके पति एक-दो नहीं, सैकड़ों विवाह कर डालते हैं और रात-दिन व्यभिचार में आकण्ठ विलीन रहते हैं, उन सैकड़ों अभागिनी बहिनों की व्यथा का ज़रा अनुमान तो करो, इसी से अपना सारा दुःख भूल जाओगी!!"

एक ओर इन्दौर-राज्य के रङ्गमञ्च पर यह दुःखान्त नाटक हो रहा था और दूसरी ओर बड़वाहा के विवाह-रूपी मण्डप में एक नए बलिदान की योजना हो रही थी! इस धर्मानुमोदित बलिदान में शारदा-मठ के जगद्गुरु शङ्कराचार्य जी का कम हाथ नहीं था। उन्हीं की व्यवस्था ने इस पापाचार पर धर्म की मुहर लगा कर हिन्दू-धर्म का उपहास कराया था। यदि कोई धर्म ऐसी परिस्थिति में—एक नहीं, दो-दो स्त्रियों के जीवित रहते—एक तीसरा विवाह करने का आदेश देता है तो यह धर्म नहीं, अधर्म है। समय आ गया है, जब ऐसे धर्म के मस्तक पर शिक्षित भारतवासियों को पाद-प्रहार करना चाहिए!!

एक नया बलिदान होते-होते अभी बचा है। अलवर के महाराजा साहब बहादुर, जिनकी अवस्था ५० वर्ष के क़रीब है और जिन्हें अलवर की ख़ुशामदी प्रजा ने "प्रभु जी" की उपाधि से विभूषित कर रक्खा है, एक षोडशी बालिका से विवाह कर उसका सर्वनाश करने जा रहे थे। प्रसन्नता की बात है, बालिका तथा उसके पिता की सामयिक दूरदर्शिता से यह काण्ड अनुष्ठित न हो सका। यह विवाह बीकानेर रियासत के श्री० दाऊभाई राव जी नाम के एक राजपूत सज्जन की कन्या से लगभग ठीक हो चुका था, किन्तु "सूक डूबे रहने के कारण और देवों के सोए रहने के कारण" विवाह शीघ्र सम्पन्न नहीं हो सका। इसी बीच में इस कुत्सित काण्ड का भण्डा फूट गया और पत्र-पत्रिकाओं में तथा सभा-सोसाइटियों में बड़ा आन्दोलन उठाया गया। कई प्रतिष्ठित व्यक्तियों तथा संस्थाओं के प्रवर्तकों ने भावी श्वसुर साहब से मिल कर उन्हें ख़ूब खोटी-खरी सुनाई, उन्हें अलवर-नरेश की घृणित विलासिता के क़िस्से सुनाए गए और लड़की के भविष्य की ओर उनका ध्यान आकर्षित किया गया। एक बड़े मार्के की बात जो हुई वह यह थी कि स्वयं बालिका ने इस विवाह-सम्बन्ध का खुला विरोध कर अपने औचित्य का पालन किया। भावी श्वसुर साहब पर इन बातों का काफ़ी प्रभाव पड़ा। 'प्रभु जी' की एक महारानी ने अपने नारकीय जीवन से खीज कर—जो उन्हें व्यतीत करना पड़ता था—कुछ ही वर्ष हुए आत्म-हत्या कर डाली थी। इसकी चर्चा भी भावी श्वसुर से की गई, यह भी कहा गया कि 'प्रभु जी' की रानियाँ एक नई सौत का स्वागत करने के लिए तैयार नहीं हैं! इसलिए नहीं, कि उनके स्वार्थ पर प्रहार होगा, बल्कि इसलिए कि वे अपनी जाति की एक और बहिन को उसके सर्वनाश से बचाना चाहती हैं। इन सब बातों का 'प्रभु जी' के भावी श्वसुर पर सौभाग्य से वही प्रभाव पड़ा, जिसकी आशा थी और अन्त में उन्होंने अलवर-नरेश से अपनी कन्या का विवाह करने से साफ़

इनकार कर दिया ! पर 'प्रभु जी' अभी निराश नहीं हुए हैं। दूसरी चिड़िया फँसाने का प्रयत्न हो रहा है !!

अलवर-नरेश की विलास-प्रियता के सम्बन्ध में भी कुछ पंक्तियाँ यहाँ लिख देना अनुचित न होगा। राज्य की हालत फ़िज़ूलख़र्चियों के कारण बड़ी अबतर हो रही है। राज्य के क़र्ज़दार होने पर भी तीन-तीन मास तक पलटनों तथा अन्य कर्मचारियों का वेतन नहीं बट सकता। यदि हाल ही में प्रकाशित होने वाली समाचार-पत्रों की ख़बरें सत्य हैं, तो शीघ्र ही अलवर-नरेश को महाराजा नाभा की भाँति अपने सारे राज्य से हाथ धोना पड़ेगा। ताज़ा समाचार यह है कि राज्य में भारी कुप्रबन्ध होने के कारण राज्य का सञ्चालन-भार ब्रिटिश-सरकार द्वारा नियुक्त एक अङ्गरेज़ एजेण्ट करेगा और महाराजा बहादुर को तीन वर्षों के लिए विलायत की यात्रा करनी होगी। विलायत जैसी विलास-नगरी में 'प्रभु जी' का नैतिक सुधार होना तो दूर रहा, रहा-सहा पतन अवश्यम्भावी है। हमें खेद तो इस बात का है कि अपना इतना परोक्ष पतन देखते हुए भी 'प्रभु जी' की आँखें अभी तक नहीं खुली हैं। अपने २५ वर्षों के इस कुशासन पर परदा डालने के लिए महाराजा बहादुर ने अपने राज्य में रजत्-जयन्ती बड़ी धूम-धाम से मनाने का निश्चय कर लिया है और इसमें कम से कम २५ लाख रुपयों के व्यय करने का भी निश्चय किया गया है। इस उत्सव में आमन्त्रित अफ़सरों तथा इष्ट-मित्रों के लिए तम्बू-ख़ीमे लगाने के लिए बेचारे दीन-हीन किसानों की पनपी हुई खेती को, उनकी उपजी हुई फ़सल को, उखाड़ कर फेंक दिया गया है। अनेक मकान तोड़-फोड़ कर जगह साफ़ कर दी गई है ! एक देशी नरेश की हृदय-हीनता का इससे अधिक क्या प्रमाण दिया जा सकता है ? अलवर के 'प्रभु जी' के पतन की सीमा और भी विस्तृत है, एक ओर प्रजा भूखों मर रही है, दूसरी ओर नरेन्द्र-मण्डल के स्वार्थों की पुष्टि का प्रलोभन देने वाली बटलर-कमिटी के समक्ष अपनी माँगें उपस्थित करने के लिए लाखों रुपए नष्ट किए जा रहे हैं। अभी उस रोज़ हमने समाचार-पत्रों में पढ़ा है, पटियाला के महाराजा बहादुर ने अलवर-नरेश को और भी धन भेजने के लिए लन्दन से तार दिया है। उन्होंने लिखा है—"शीघ्र ही रुपए भेजिए, सर लेस्ली स्कॉट जैसे प्रतिष्ठित वकील किए गए हैं। अभी उनकी फ़ीस में ही ढाई लाख रुपयों की कमी है।" अनेक पाठकों को इस आन्दोलन के रहस्य का पता न होगा, इसलिए इस सम्बन्ध में कुछ पंक्तियाँ लिख देना आवश्यक है। देश के भावी शासन-विधान में देशी नरेशों की विलासिता में अनुचित हस्तक्षेप न किए जायँ—केवल इस बात का आन्दोलन हो रहा है और भारत के अनेक बड़े-बड़े राजे-महाराजे पानी के समान इस आन्दोलन में धन स्वाहा कर रहे हैं। जामनगर, काश्मीर तथा पटियाला आदि बड़े-बड़े सभी महाराजे लन्दन में इसीलिए पड़े हैं। लाखों रुपए व्यय कर इस स्वार्थपूर्ण आन्दोलन के लिए बहुमत अपने पक्ष में करने का प्रयत्न हो रहा है। पार्लिमेण्ट के मेम्बरों, नामी लेखकों तथा वकीलों द्वारा समाचार-पत्रों में अतुल धन-राशि देकर अपने पक्ष में लेख आदि लिखाए जा रहे हैं और न जाने क्या क्या हो रहा है; केवल इसलिए कि दैवयोग से कहीं भारत को औपनिवेशिक स्वराज्य (Dominion Status) अथवा पूर्ण स्वतन्त्रता (Complete Independence) प्रदान कर दी जाय तब भी देशी नरेश ब्रिटिश-शासन की छत्र-छाया में ही रहें—स्वतन्त्र भारत के अधीन नहीं ! यह है भारतीय नरेशों की मनोवृत्ति का नग्न-स्वरूप !!

काश्मीर के वर्तमान महाराजा बहादुर की विलास-लीला और उनकी प्रजा का करुण-क्रन्दन और उसकी अधोगति तथा करुणापूर्ण दरिद्रता यथेष्ट रूप से विख्यात है, इसलिए इस परिमित स्थान पर विशेष टीका-टिप्पणी करना सर्वथा व्यर्थ है।

सारांश यह कि देशी नरेशों की इस विलासिता का भयङ्कर प्रभाव स्त्री-समाज पर न पड़ता हो, सो बात नहीं है ! यह एक अप्रिय-सत्य है कि अधिकांश रानियाँ, महारानियाँ ठकुराइनें और बबुआइनें आज अपने पतियों की स्वेच्छाचारिता तथा विलास-प्रियता की शिकार हो रही हैं और उनका यह आचरण वर्तमान परिस्थिति को दृष्टि में रखते हुए, जिसका उल्लेख हम ऊपर कर चुके हैं, बहुत हद तक क्षम्य है। इन आचार-भ्रष्ट देवियों से हमारी पूर्ण सहानुभूति है। हम वर्तमान प्रगति को दृष्टि में रखते हुए उनके मनोभावों का, उनके परिपीड़न का तथा उनके मस्तिष्क से उत्पन्न होने वाली स्वाभाविक क्रान्ति की एक हद तक कल्पना कर सकते हैं। जब हम सुनते हैं कि अमुक रानी का

अनुचित सम्बन्ध उसके अधीनस्थ अमुक कर्मचारी से है, जब हम सुनते हैं कि अमुक ठकुरानी का सम्बन्ध अमुक सेवक से है तो घृणा के स्थान पर हम अपने हृदय में दया का अनुभव करते हैं—उनकी वर्तमान दशा देख कर हमारे नेत्रों से रोष के स्फुलिङ्ग प्रकट नहीं होते, प्रकट होती हैं आँसुओं की गर्म धारें !!

उस दिन, जब हमने बम्बई में एक महारानी साहिबा के नैतिक पतन का समाचार पढ़ा था, सहानुभूति के कोमल भावों से हमारा हृदय एक बार ही भर आया था। उस अभागिनी महारानी की कथा समाचार-पत्रों में इस प्रकार प्रकाशित हुई थीः—

"बम्बई सूबे के एक देशी राज्य की महारानी गर्मियों में यू॰पी॰ के एक पहाड़ी मुक़ाम पर रहती हैं और उनके पति साल का अधिक भाग विलायत में यूरोपियन स्त्रियों के साथ गुज़ारते हैं! यह महारानी इस पहाड़ी मुक़ाम पर शराब, अङ्गरेज़ी नाच और दूसरे दिल बहलाव के लिए मशहूर हैं। कुछ समय हुआ, यूरोप के दो पैदल संसार-यात्री इस पहाड़ी मुक़ाम पर आए और प्रसिद्ध लोगों के दस्तख़त लेने शुरू किए। ये महारानी की कोठी पर भी गए। महारानी ने जब देखा कि ये यूरोपियन सुन्दर जवान हैं तो उनसे कहा कि इस समय फ़ुरसत नहीं है, शाम को आओ! जिस समय यह दोनों शाम के वक़् हस्ताक्षर कराने आए तो महारानी साहिबा ने उन्हें ख़ूब शराब पिलाया और १२ बजे रात तक उन लोगों में खाना-पीना होता रहा। अन्त में महारानी साहिबा को एक युवक पसन्द आ गया। महारानी साहिबा उसे आराम के कमरे में ले गईं और वहाँ जो कुछ हुआ उसका उल्लेख करना लज्जाजनक है !!" उसी गोरे ने—जिससे महारानी साहिबा ने मुँह काला किया था—यह सारी घटना देहली के सहयोगी 'रियासत'-सम्पादक के एक मित्र से कह कर भारतीय स्त्रियों के व्यभिचार-प्रकृति की खिल्ली उड़ाई थी !!

यह समस्त भारत के मातृ-मण्डल का मस्तक नत करने वाली ऐसी लज्जापूर्ण घटना है, जिसका प्रभाव व्यभिचार में आकण्ठ लिप्त रहने वाले नरेन्द्र-मण्डल पर भले ही न पड़े, किन्तु समस्त भारत का यह एक निश्चित-कलङ्क है। "महाजनो येन गतः स पन्था" अर्थात् बड़े लोग जिस राह से चलें, छोटों को उसी का अनुकरण करना चाहिए। जब शासक-मण्डली की दशा यह है, तो साधारण प्रजा की क्या गति होगी, यह कल्पना का विषय है, लिखने का नहीं !!"

विधवा की व्यथा

[रचयिता—श्री॰ 'कुमार' बी॰ ए॰]

(१)

मैं सोई, मैंने देखा—यह,
जग उपवन है हरा, नवीन।
शैशव, यौवन और जरापन—
के प्रसून विकसित थे तीन॥

(२)

शैशव-सुमन अधखिला था,
यौवन-प्रसून पर थी लाली।
जर्जरपन का फूल छोड़ने—
वाला था तरु की डाली॥

(३)

उपवन हरा-भरा था—तरु थे—
पल्लव थे—थे सुरभित फूल।
हाय! न जाने कहाँ छिपा था,
मेरे विधवापन का शूल!!

स्वेच्छाचारिता

[ले० श्री० विश्वम्भरनाथ जी शर्मा कौशिक]
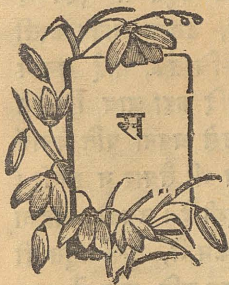
सरस्वती देवी चौहान की अवस्था इस समय १९ वर्ष के लगभग है। वह आजकल थर्ड-इयर में पढ़ती हैं। उनके पिता ठाकुर रिपुदमनसिंह चौहान नगर के एक अग्रगण्य वकीलों में हैं। ठाकुर साहब के इस कन्या के अतिरिक्त अन्य कोई सन्तान नहीं है। अतएव उन्होंने सरस्वती का लालन-पालन बड़े लाड़-प्यार से किया है। सरस्वती को उच्च शिक्षा देने का सङ्कल्प उन्होंने इसी कारण से किया है कि वह उनकी एकमात्र सन्तान है। उनके कुछ पुराने विचार के नाते-रिश्तेदारों ने उनके इस सङ्कल्प पर बहुत नाक-भौं चढ़ाई थी, क्योंकि वे लड़कियों को अङ्गरेज़ी की उच्च शिक्षा देना पाप समझते हैं; परन्तु ठाकुर साहब ने उनकी कुछ भी परवा न करके सरस्वती को शिक्षा देने का कार्य जारी रक्खा। सरस्वती देवी का नख-शिख सौन्दर्यपूर्ण है।

सरस्वती देवी के साथ ही निर्मला देवी नाम की एक अन्य लड़की पढ़ती है। इसकी वयस भी १९-२० वर्ष के लगभग है। सरस्वती तथा निर्मला में बहुत स्नेह है। शाम के सात बज चुके हैं। सरस्वती अपने निजी कमरे में बैठी हुई निर्मला से बातें कर रही है। बातें वही कॉलेज सम्बन्धी हो रही हैं। थोड़ी देर तक तो दोनों प्रोफ़ेसरों तथा लेक्चरारों के सम्बन्ध में टीका-टिप्पणी करती रहीं। हठात् बात का रुख़ बदल कर सरस्वती ने निर्मला से पूछा—सोमेश्वरप्रसाद से तुम्हारी बड़ी गहरी मित्रता है।

निर्मला ने किञ्चित मुस्करा कर पूछा—गहरी मित्रता से तुम्हारा क्या तात्पर्य है ?

"मित्रता से मेरा मतलब शुद्ध तथा पवित्र मित्रता से है।"

"हाँ, मैं मानती हूँ—मेरी उनकी मित्रता है।"

"आदमी तो अच्छा मालूम होता है। देखने-सुनने में भी अच्छा है, पढ़ने-लिखने में भी तेज़ है।"

निर्मला ने गम्भीर होकर कहा—बड़ा अच्छा आदमी है। मैं उसे बहुत पसन्द करती हूँ।

"मुझे वह बड़े ग़ौर से देखा करता है—यद्यपि वह मुझसे बातचीत करना चाहता है, पर उसका साहस नहीं पड़ता।"

"तो क्या हुआ, इसमें क्या हर्ज है ?"

"हर्ज की बात मैं नहीं कहती, मैं केवल तुम्हें बताती हूँ कि वह मुझ से मित्रता पैदा करना चाहता है।"

"यदि ऐसी बात है, तो उन्हें मुझसे कहना चाहिए था—मेरी तुम्हारी घनिष्टता है—यह बात वह भली भाँति जानते हैं।"

"कदाचित् उन्होंने इसलिए न कहा हो कि तुम्हें कुछ ईर्ष्या हो।"

"क्यों ? मुझे क्यों ईर्ष्या होने लगी ? क्या तुम समझती हो कि मेरा उनका प्रेम-सम्बन्ध है ?"

"यह सम्भव है कि तुम उनसे प्रेम न करती हो, पर तुम क्या यह निश्चयपूर्वक कह सकती हो कि वह तुमसे प्रेम नहीं करते ?"

निर्मला चुप हो गई। सरस्वती ने मुस्करा कर कहा—जान पड़ता है, तीर ठीक निशाने पर लगा है।

निर्मला मुस्करा कर कुछ झेंपती हुई बोली—तुम बड़ी चतुर हो सरस्वती। किस मज़े से धीरे-धीरे सब बातें जानना चाहती हो।

"मैं समझती हूँ कि तुम्हारे मन की बातें जानने का मुझे अधिकार है—अन्यथा हमारी तुम्हारी मित्रता बिलकुल व्यर्थ है।"

"ठीक कहती हो। अतएव मैं तुम्हें बताती हूँ कि सोमेश्वरप्रसाद के व्यवहार से यह पता चलता है कि वह मुझ से विवाह करना चाहता है।"

सरस्वती ने सिर हिलाते हुए कहा—यह बात है ? मैं तो पहले ही समझ गई थी। पुरुष अपना प्रेम-भाव पुरुष से भले ही छिपा ले, पर स्त्री से कभी नहीं छिपा सकता। पुरुष की प्रेम-दृष्टि को स्त्री तुरन्त ताड़ जाती है।

"ख़ैर, वह मुझ से प्रेम करता हो, चाहे न करता हो, परन्तु मैं तुम्हें विश्वास दिलाती हूँ कि मैं उससे प्रेम नहीं करती।"

सरस्वती ने नेत्र विस्फारित करके कहा—अच्छा! क्या ऐसी बात भी है?

"हाँ, ऐसी ही बात है। क्यों, तुम्हें आश्चर्य क्यों हुआ? क्या यह आवश्यक है कि मैं उससे प्रेम करूँ?"

"नहीं, आवश्यक तो नहीं है; परन्तु तुम्हारी उनकी मित्रता देख कर यह भावना उत्पन्न होना स्वाभाविक है कि तुम्हारा उनका प्रेम है।"

"मेरी उसकी मित्रता है। वह बहुत ही भला और नेक आदमी है, तीव्र बुद्धि और विचारशील है। इसलिए मैं उससे मित्रता रखने में कोई हानि नहीं समझती। परन्तु मैं उससे विवाह करने के लिए प्रस्तुत होऊँगी—इसमें अभी मुझे सन्देह है। दूसरे, मैं अपनी इच्छानुसार विवाह करने के लिए स्वतन्त्र भी नहीं हूँ।"

"क्यों?"

"माता-पिता के रहते हुए मैं अपना पति स्वयम् कैसे चुन सकती हूँ? हम लोग ईसाई तो हैं नहीं।"

सरस्वती ने घृणा से मुँह बना कर कहा—इस से क्या होता है। हम लोग अशिक्षित तो हैं नहीं, जो अपना पति चुनने में ग़लती करें। हम लोग अपना भला-बुरा भली-भाँति समझती हैं। मैं अपने लिए तो शायद कभी अच्छा न समझूँगी कि मैं अपने विवाह की समस्त ज़िम्मेदारी अपने पिता पर छोड़ दूँ। कम से कम यह तो मैं स्वयम् निर्णय करूँगी कि मैं किस से विवाह करूँ।

निर्मला बोली—हाँ, तुम ऐसा कर सकती हो—तुम अपने पिता की एकलौती और दुलारी हो। तुम्हें सुखी करने के लिए वह, बहुत सम्भव है, तुम्हारी बात मान लें; परन्तु मेरे यहाँ ऐसा होना कठिन है।

"यह तो तुम्हारे अपने वश की बात है। यदि तुम चाहो तो तुम भी ऐसा कर सकती हो। यदि हमारे पिता हमें इतनी उच्च शिक्षा देने के पश्चात् हम लोगों से यह आशा करें कि हम—भेड़-बकरी की तरह—जिसे सौंप देंगे, उनके साथ हो लेंगी, तो उनकी यह बहुत बड़ी ग़लती है।"

"परन्तु हमारे पिता, जो हमें सुशिक्षित बनाने की प्राणपण से चेष्टा कर रहे हैं, इतने अज्ञ नहीं हैं जो हमें किसी अयोग्य व्यक्ति के साथ कर दें।"

"अयोग्य और योग्य का प्रश्न नहीं है। बड़े से बड़ा योग्य व्यक्ति भी ऐसा हो सकता है जिससे हम विवाह करना पसन्द न करें। ऐसे बहुत से पुरुष हैं जिन्हें हम बहुत योग्य समझती हैं, उनका आदर करती हैं। हम उन्हें अपना मित्र, शुभ-चिन्तक, भाई बनाने के लिए सहर्ष तैयार हैं; परन्तु यदि कहा जाय कि हम उनमें से किसी से विवाह करके उसे अपना पति बनावें तो कदाचित् इसके लिए हम कभी भी तैयार न होंगी। प्रोफ़ेसर × × × कितने योग्य आदमी हैं। उनकी विद्वत्ता तथा पाण्डित्य के कारण, कम से कम मैं, उन्हें बहुत ही आदर की दृष्टि से देखती हूँ, परन्तु यदि मुझ से पूछा जाय कि मैं उनसे विवाह कर सकती हूँ या नहीं, तो मैं साफ़ इन्कार कर दूँगी। मनुष्य की हैसियत से वह एक रत्न हैं, पर पति की हैसियत से, हुँः! वह एक अच्छे पति कभी नहीं हो सकते—कम से कम मेरा ऐसा ही विचार है। अतएव ऐसी दशा में हमें अपना पति चुनने का कार्य स्वयम् ही करना चाहिए। जब तक हमें यह विश्वास न हो जाय कि जिससे हमारा विवाह हो रहा है उससे हम प्रेम करती हैं तब तक हमें विवाह के लिए कभी भी तैयार न होना चाहिए।"

निर्मला बोली—हिन्दुओं में अधिकतर स्त्रियाँ विवाह के पहले अपने पति से प्रेम नहीं करतीं, वरन् विवाह के पश्चात् उनसे प्रेम करना सीख जाती हैं।

"अच्छा, तो क्या प्रेम करना सीखा भी जा सकता है?"

"हिन्दुओं में तो वह अभी तक सीखा ही जाता है! विवाह के पूर्व पति-पत्नी एक दूसरे की सूरत भी नहीं देखने पाते। विवाह होने के पश्चात् जब वे परस्पर मिलते हैं तब क्रमशः वे एक दूसरे से प्रेम करना सीख जाते हैं।"

सरस्वती अट्टहास्य करके बोली—यह नई बात सुनी।

"नई नहीं, यह बहुत पुरानी बात है। यदि तुम्हें इतिहास का ज्ञान हो तो तुम्हें मालूम होगा कि जब से यहाँ स्वयम्बर की प्रथा बन्द हुई है तब से ऐसा ही होता आया है और अब तक हो रहा है।"

"परन्तु यह ग़लत है—ऐसा नहीं होना चाहिए।

यह तभी से हुआ जब से कि स्त्रियाँ अशिक्षित रक्खी जाने लगीं। जिस काल में स्त्रियाँ शिक्षित होती थीं उस काल में स्वयम्बर होते थे। यूरोप की स्त्रियाँ शिक्षित हैं, इसलिए वह अपना पति स्वयम् चुनती हैं। जहाँ स्त्रियाँ शिक्षित होंगी, वहाँ ऐसा ही होगा। और सच पूछो तो विवाह की सफलता इसी पर निर्भर है कि वर तथा वधू विवाह के पूर्व एक दूसरे से भली-भाँति परिचित हो जायँ।"

"यह बात मैं नहीं मानती। यूरोप आदि में कोर्ट-शिप होने के पश्चात् विवाह होने पर भी कितने तलाक़ होते हैं—हिन्दुओं में तलाक़ का नाम भी नहीं है।"

"इसी कारण हिन्दू-स्त्रियाँ अयोग्य पति मिलने से जन्म भर दुख झेलती रहती हैं।"

"न कहीं! अधिकतर तो यही देखने में आता है कि हिन्दू-स्त्रियाँ घर की रानी बन कर रहती हैं। अच्छा, अब बहुत समय होगया, अब घर जाऊँगी।" यह कह कर निर्मला विदा हुई।

२

सरस्वती देवी सोमेश्वरप्रसाद से परिचय प्राप्त करने के लिए बहुत उत्सुक हो उठीं। वह पहले ही से सोमेश्वर-प्रसाद के सौन्दर्य तथा उसके गुणों के कारण उस पर मुग्ध-सी थीं—यद्यपि निर्मला के द्वारा वह उससे परिचित हो सकती थीं; परन्तु इस ढङ्ग को वह उचित नहीं समझती थीं। अतएव एक दिन उन्होंने कॉलेज से निकलते समय, जब कि सोमेश्वर उनके पास से होकर निकला, अपने हाथ की पुस्तकें भूमि पर गिरा दीं। पाश्चात्य शिष्टता के अनुसार सोमेश्वर ने झट उनकी पुस्तकें भूमि पर से उठा कर उनके हाथों में दे दीं। सरस्वती देवी ने "धन्यवाद!" कह कर पुस्तकें ले लीं। उसी दिन से दोनों का परस्पर परिचय हो गया। क्रमशः दोनों में मित्रता हो गई। अब बहुधा सोमेश्वर कॉलेज से छुट्टी होने के पश्चात् सरस्वती देवी को उनके घर तक पहुँचाने जाता है। निर्मला ने इस बात को बड़े ध्यान से देखा और समझा। इससे उसे अपने लिए ज़रा भी क्लेश न हुआ; परन्तु उसे दोनों की दशा पर कुछ हँसी अवश्य आई।

एक दिन निर्मला ने सरस्वती देवी से बातों ही बातों में कहा—आजकल सोमेश्वर तुम्हारे ईर्द-गिर्द बहुत रहता है—क्या बात है?

"तुम्हें ईर्ष्या होती है क्या?" सरस्वती देवी ने किञ्चित् रुखाई से पूछा।

"ज़रा भी नहीं, वरन् मेरा पिण्ड छूटा।"

"ख़ैर, तब तो तुम्हें लाभ ही पहुँचा।"

"निस्सन्देह! परन्तु तुम्हें उसकी मित्रता से कुछ लाभ पहुँचेगा या नहीं, इसमें मुझे सन्देह है।"

सरस्वती देवी भृकुटी चढ़ा कर बोलीं—इससे तुम्हारा क्या तात्पर्य है? क्या तुम समझती हो कि मैंने अपने किसी व्यक्तिगत लाभ के लिए × × ×।

निर्मला बात पूरी होने के पूर्व ही बोल उठी—नहीं, नहीं, मेरा यह तात्पर्य नहीं है। मेरा मतलब यह है कि वह ऐसा आदमी है जो कभी किसी से वफ़ा नहीं कर सकता।

"जानना चाहती हो?"

"हाँ-हाँ, यदि तुम बताने में कोई हर्ज न समझो।"

"मेरा कोई हर्ज नहीं है; परन्तु यह भय अवश्य है कि कहीं तुम मेरी बात के कुछ अर्थ न लगाओ।"

सरस्वती देवी हँस कर बोलीं—नहीं, जो अर्थ तुम समझाओगी मैं उसे ही मान लूँगी।

"यह तो तुम जानती हो कि सोमेश्वर मुझसे प्रेम करता था?"

"तुम्हीं कहती थीं।"

"ख़ैर, यह तो तुम देखती ही थीं कि वह बहुधा उसी प्रकार मुझ से मिलता-जुलता रहता था जिस प्रकार तुम से आज कल मिलता-जुलता है।"

"हाँ, यह बात तो देखती थी।"

"उसने अपने व्यहार से मुझ पर यह असर डालने की पूरी चेष्टा की थी कि वह मुझसे सच्चे जी से प्रेम करता है। ईश्वर को धन्यवाद है कि मेरे हृदय में उसके प्रति प्रेम की भावना कभी भी उत्पन्न नहीं हुई। यदि हुई होती तो आज क्या परिणाम होता?"

"क्या परिणाम होता?"

"तुम स्वयम् सोच सकती हो। जबकि आज वह मुझसे अलग-अलग रहने की चेष्टा करता है और तुम्हारे साथ रहता है। यदि मैं उससे प्रेम करती होती तो आज

मुझे कितना घोर दुख होता। उसके इस व्यवहार से मेरा हृदय टुकड़े-टुकड़े हो गया होता।"

सरस्वती देवी मौन रहीं, उनके हृदय ने निर्मला की बात का समर्थन किया।

"यदि तुम भी मेरी तरह उससे प्रेम नहीं करतीं तब तो ठीक है—अन्यथा मुझे भय है कि कहीं तुम्हें निराशा न हो। जो व्यक्ति कल तक मुझ से प्रेम करने का ढोंग रचे हुए था, वह आज मेरी ओर देखना भी नहीं चाहता। ऐसे आदमी का क्या विश्वास! सरस्वती, मैं तुम्हें सोमेश्वर की ओर से सचेत करती हूँ।"

सरस्वती ने मुस्करा कर कहा—निर्मला, मैं तुम्हारी इस चेतावनी के लिए तुम्हारी कृतज्ञ हूँ। परन्तु साथ ही तुम्हें विश्वास दिलाती हूँ कि मेरी उसकी केवल साधारण मित्रता है।

"तुम्हारी बातों से उस दिन मुझे यह पता चला था कि तुम अपना पति स्वयम् चुनोगी। यदि ऐसा ही हुआ तो मुझे यह जानकर प्रसन्नता और सन्तोष होगा कि जिसे तुमने अपना पति बनाना तय किया है वह सोमेश्वर नहीं है।"

"निर्मला! मैं अबोध नहीं हूँ, मैं भी ये बातें समझती हूँ।" सरस्वती ने अभिमान पूर्वक कहा।

"यह मैं जानती हूँ और इसी लिए मैंने अभी तक तुमसे इस सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा था। यदि मैं यह समझती कि तुम भावुकता में बह जाओगी तो मैं उसी समय तुम्हें सचेत कर देती।"

इसके पश्चात् थोड़ी देर इधर-उधर की बातें करके निर्मला चली गई। निर्मला के चले जाने पर सरस्वती अपने ही आप मुस्करा कर सिर हिलाते हुए बोली—निर्मला, मैं तुम्हें ख़ूब समझती हूँ। यह मत समझना कि मैं तुम्हारी इस शुभचिन्ता की ओट में छिपे हुए तुम्हारे स्वार्थ को नहीं देख सकी। सोमेश्वर मेरी ओर क्यों आकृष्ट हुआ, इसका कारण तो स्पष्ट है। मैं तुम से अधिक सुन्दर हूँ, तुम से अधिक बुद्धिमान् हूँ, तुम से सब बातों में श्रेष्ठ हूँ। सोमेश्वर बुद्धिमान् है, रत्नपारखी है; इसलिए उसने तुम्हें त्याग कर मेरी ओर चित्त लगाया है—उत्तम वस्तु की ओर आकर्षित होना मनुष्य का स्वभाव है। इसके ये अर्थ निकालना कि सोमेश्वर दग़ाबाज़ है, विश्वासघाती है—या तो निरी मूर्खता है या इसके भीतर कुछ रहस्य है। मैं समझती हूँ, तू इस प्रकार मेरे हृदय में उसके प्रति अश्रद्धा उत्पन्न करा कर मेरा उसका मनोमालिन्य कराना चाहती है, जिससे वह पुनः तेरे अधिकार में हो जाय। परन्तु मैं तुझे विश्वास दिलाती हूँ कि ऐसा कदापि न होने पायगा।

इस प्रकार सरस्वती बड़ी देर बैठी बड़बड़ाती रही तथा अपने ही आप हँसती रही।

३

उपर्युक्त घटना हुए दो वर्ष व्यतीत हो गए। सरस्वती देवी ने बी० ए० पास करने के पश्चात् सोमेश्वरप्रसाद के साथ विवाह कर लिया। सोमेश्वरप्रसाद के साथ विवाह करने में उसे कितनी कठिनाइयाँ पड़ीं, इसका वर्णन करना व्यर्थ है। संक्षेप में इतना ही कहना पर्याप्त है कि इस सम्बन्ध में उसने अपने माता-पिता से खुली बग़ावत की—अन्त में उसने यहाँ तक धमकी दी कि यदि ऐसा नहीं किया जायगा तो वह घर छोड़ देगी। वह अब इस योग्य हो गई है कि अपना उदर-पोषण कर सके, अतएव अब वह केवल इसलिए अपनी अभिलाषाओं की हत्या नहीं कर सकती कि उसके माता-पिता उसका पालन-पोषण करते हैं। ठाकुर रिपुदमन-सिंह ने अपने भाग्य को दोष देते हुए सरस्वती देवी का कहना किया और उसका विवाह सोमेश्वरप्रसाद से कर दिया।

विवाह के पश्चात् दो वर्ष तक तो दम्पति का समय बड़े सुख से कटा। इस बीच में सोमेश्वरप्रसाद ने प्रथम श्रेणी में एम० ए० की परीक्षा पास की। इसके परिणाम-स्वरूप उन्हें रेलवे में ए० टी० एस० का पद मिला। यद्यपि उन्हें डिप्टी-कलेक्टरी भी मिल सकती थी, परन्तु उन्होंने रेलवे की नौकरी अधिक पसन्द की—उनका विचार था कि रेलवे में उन्नति करने का सुअवसर अधिक है।

इस प्रकार कुछ दिन और व्यतीत हुए।

एक दिन सोमेश्वरप्रसाद एक यूरोपियन युवती को साथ लेकर घर आए। पहले उन्होंने उसका परिचय सरस्वती देवी से कराया। बोले—यह मि० नॉर्मन, जो पञ्जाब मेल के गार्ड हैं, उनकी कन्या हैं। सरस्वती देवी को यह बात यद्यपि बुरी लगी, परन्तु शिष्टता के नाते उन्होंने उस समय मिस नॉर्मन का अच्छा आदर-सत्कार किया। उसके विदा हो जाने पर सरस्वती देवी ने सोमे-

श्वर से कहा—क्या तुम समझते हो कि तुम्हारा यह कार्य उचित था ?

सोमेश्वर ने पूछा—कौन सा कार्य ?

"यही, मिस नॉर्मन को यहाँ लाने का।"

"क्यों, क्या हर्ज था ?"

"तुम एक उच्च पदाधिकारी हो। तुम्हारे सामने एक गार्ड की बहुत ही साधारण स्थिति है—तुम उसके अफ़सर हो, वह तुम्हारा मातहत। ऐसी दशा में उसकी कन्या के साथ तुम्हारा यह व्यवहार अच्छा नहीं मालूम होता।"

"सोमेश्वर भृकुटी चढ़ा कर बोले—क्यों नहीं अच्छा मालूम होता ? मिस नॉर्मन बहुत ही शिष्ट तथा सुशिक्षित हैं। ऐसी दशा में उनको यहाँ लाना कौन पाप हो गया ?"

"यहाँ शिक्षा का प्रश्न नहीं है—यहाँ अपनी स्थिति का प्रश्न है। तुम्हें एक साधारण गार्ड की लड़की के साथ इस तरह घूमना-फिरना और उसे घर पर निमन्त्रित करना शोभा नहीं देता। यदि तुम्हारे सहकारी तथा अफ़सर यह देखेंगे तो उनके हृदय में तुम्हारी क्या इज़्ज़त रहेगी ?"

"सहकारियों और अफ़सरों को मेरे प्राइवेट मामलों से क्या सरोकार ? अपने कर्तव्यपालन में मैं कोई त्रुटि करूँ तो वह कह सकते हैं—इस सम्बन्ध में कुछ नहीं कह सकते।"

"यह मैं भी जानती हूँ ; पर अपने मन में तो तुम्हारे इस कार्य को अनुचित × × ×

"समझा करें—इसकी मुझे कोई परवा नहीं।"

"नहीं, इस प्रकार दूसरों के विचारों को ठुकरा देना ठीक नहीं। विशेषतः जबकि तुम्हें उनके साथ रह कर काम करना है। मनुष्य एक ग़ैर आदमी की भावनाओं को, उसके विचारों को, ठुकरा सकता है; परन्तु जिनके साथ वह कार्य करता है, अपने समय का अधिक भाग व्यतीत करता है, उनकी भावनाओं का ख़्याल रखना पड़ता है।"

सोमेश्वर भृकुटी चढ़ा कर बोले—मैं समझता हूँ, यह तुम उन लोगों की भावना की रक्षा के लिए नहीं, वरन् अपनी भावना की रक्षा के लिए कह रही हो।

अब सरस्वती देवी को भी आवेश हो आया। उन्होंने कहा—यदि कहती हूँ तो क्या बुरा करती हूँ। मुझे ऐसा करने का पूरा अधिकार है। मैं एक ए० टी० एस० की पत्नी हूँ, मैं एक साधारण गार्ड की कन्या अथवा पत्नी से कभी मित्रता नहीं जोड़ सकती—चाहे वह यूरोपियन हो, चाहे अमेरिकन।

"ओह ओह—इतना घमण्ड ! वह गार्ड की कन्या है तो क्या बुरा है—गार्ड की कन्या होना कोई पाप नहीं हैं।"

"तो गार्ड की कन्या से घनिष्टता करना भी कोई पुण्य नहीं है।"

"वह चाहे जो कुछ हो, परन्तु वह यूरोपियन है और पढ़ी-लिखी है।"

"तुम इस समय बिलकुल हिन्दुस्तानी, काले आदमी, की सी बातें करते हो, यह बड़ी लज्जा की बात है। तुम समझते हो कि एक यूरोपियन कन्या से मित्रता होना बड़े सौभाग्य की बात है—चाहे वह बावर्चिन ही क्यों न हो। परन्तु यदि तुम अपने सहकारी किसी यूरोपियन से पूछो कि वह एक गार्ड की कन्या से मित्रता करना कैसा समझता है, तो तुम्हें ज्ञात होगा कि गार्ड की कन्या की क्या हैसियत है। मैं दावे के साथ कहती हूँ कि कोई भी यूरोपियन ऑफ़िसर इसे अच्छा न समझेगा।"

"मैं इसे नहीं मानता और न इस पर कोई वाद-विवाद करने के लिए तैयार हूँ।"

"मैं भी इस पर वाद-विवाद नहीं करना चाहती, परन्तु साथ ही मैं तुमसे यह भी कहती हूँ कि भविष्य में तुम उसके साथ कभी न दिखाई पड़ना और न उसे यहाँ लाना।"

"तो क्या तुम मुझे चैलेञ्ज (चुनौती) दे रही हो ?"

"यदि तुम इसे प्रार्थना के रूप में सुनने के लिए तैयार नहीं हो, तो चैलेञ्ज ही समझो।"

"अच्छा, देखा जायगा।"

यह कह कर सोमेश्वरप्रसाद चुप हो गए।

उपर्युक्त घटना के एक सप्ताह पश्चात्, जबकि सन्ध्या समय सरस्वती देवी टहलने के लिए घर के बाहर निकलीं तो उसी समय उन्हें सामने से मि० नॉर्मन आते हुए दिखाई पड़े। मि० नॉर्मन ने सरस्वती देवी को देखते ही अपनी टोपी उतार कर उनका अभिवादन किया।

पास आने पर उसने पूछा—क्या मि० सोमेश्वर मकान पर नहीं हैं ?

सरस्वती देवी ने कहा—"नहीं! वह घूमने गए हैं।"

"वह अभी तो मेरे मकान पर थे—अभी मिस नॉर्मेन के साथ कहीं गए हैं—मैंने समझा था कि कदाचित् यहाँ आए हों। मुझे अपनी लड़की से कुछ आवश्यक कार्य था, इसलिए इधर आया कि शायद यहाँ मिल जायँ।"

इतना सुनते ही सरस्वती देवी की आँखों के सामने अँधेरा छा गया। उन्होंने बड़ी कठिनता से मि० नॉर्मेन को उत्तर दिया—"वह इधर नहीं आए।" इसके पश्चात् वह तुरन्त घर की ओर लौट पड़ीं और आकर कमरे में बैठ गईं।

दो घण्टे पश्चात् सोमेश्वरप्रसाद घर आए। उस समय वह शराब के नशे में थे। उन्हें देखते ही सरस्वती देवी बोलीं—क्यों, मिस नॉर्मेन को कहाँ छोड़ आए, उसे भी लेते आते ?

सोमेश्वर बोले—तुम्हें उसका स्वप्न आया करता है क्या ?

सरस्वती देवी ने उसी प्रकार शान्तभाव से उत्तर दिया—स्वप्न तो नहीं आया, परन्तु उसका पिता उसे ढूँढ़ता हुआ यहाँ आया था।

कुछ क्षणों के लिए सोमेश्वर का चेहरा फ़क़ हो गया। परन्तु अपने को सँभाल कर उन्होंने कहा—वह क्या कहता था ?

"वह कहता था कि मि० सोमेश्वर मिस नॉर्मेन को साथ लेकर कहीं घूमने गए हैं।"

"झूठ बोलता था।"

"वह झूठ नहीं बोलता था, तुम झूठ बोल रहे हो।"

"हैं! तुम्हें यह कहने का साहस कैसे पड़ता है?"

"इसलिए कि मैं तुम्हारी धर्मपत्नी हूँ, और मुझे ऐसा कहने का अधिकार है। तुमने तो लाज-शर्म और मान-मर्याद सब को तिलाञ्जलि दे दी है। परन्तु मैं अभी इतनी पतित नहीं हुई हूँ। याद रक्खो, यदि तुम अपनी ये हरकतें न छोड़ोगे तो तुम्हें पछताना पड़ेगा। मैंने अपने माता-पिता की इच्छा के प्रतिकूल, उनसे लड़-भिड़ कर, तुमसे विवाह किया तो इसलिए नहीं, कि तुम जो चाहे करो, और मैं चुपचाप देखा करूँ।"

"मैं क्या करता हूँ।"

"तुम वह करते हो, जिसमें मेरा अपमान होता है, मेरी तौहीन होती है। जो तुम्हें मिस नॉर्मेन के साथ घूमते देखते होंगे वह क्या समझते होंगे। वह यह समझते होंगे कि मि० सोमेश्वर की पत्नी इस योग्य नहीं है कि वह मि० सोमेश्वर को प्रसन्न रख सके, उनकी एक अच्छी सहचरी बन सके, इसीलिए मि० नॉर्मेन गार्ड की कन्या के साथ घूमते फिरते हैं। यह मेरा अपमान नहीं, तो और क्या है ?"

सोमेश्वरप्रसाद नशे में तो थे ही, उन्हें क्रोध आ गया। उन्होंने कहा—मैं मिस नॉर्मेन के साथ घूमता फिरता हूँ—और बराबर ऐसा करता रहूँगा। तुम्हें जो करना हो, करो।

उनके इस कथन से सरस्वती देवी बहुत ही बिगड़ीं। उन्होंने भी शिष्टता को ताक़ पर रख दिया और जो मुँह में आया, कहने लगीं। नौबत यहाँ तक पहुँची कि सोमेश्वर बेत लेकर उन्हें मारने तक को तैयार हो गए। परन्तु घर के दास-दासियों ने दोनों को अलग कर दिया।

* * *

इसके एक मास पश्चात् निर्मला देवी को एक पत्र मिला—पत्र सरस्वती देवी का था। उसमें लिखा था—

प्रिय बहिन निर्मला !

तुम्हारी बात अक्षरशः सत्य निकली। तुम्हें याद होगा कि मेरे पति—मुझे अब उन्हें पति कहते हुए लज्जा मालूम होती है—के सम्बन्ध में तुमने मुझे चेतावनी दी थी। तुमने कहा था कि सोमेश्वर की ओर से सचेत रहना। परन्तु उस समय मैंने तुम्हारी बात नहीं मानी। मुझ अभागिनी ने समझा कि तुम अपने किसी स्वार्थवश ऐसा कह रही हो। जब मैं आज सोचती हूँ कि उस समय मैंने तुम्हारे सम्बन्ध में ऐसी अनुचित धारणा उत्पन्न करके तुम्हारे साथ कितना बड़ा अन्याय किया, तब मुझे बड़ा ही दुख होता है। तुम्हारे साथ तो मैंने केवल अन्याय ही किया, परन्तु अपने पैर में अपने आप कुल्हाड़ी मारी। सोमेश्वर मनुष्य नहीं, पशु प्रमाणित हुआ। अब मुझे ज्ञात हुआ कि मनुष्य का सौन्दर्य, उसकी विद्वत्ता, योग्यता उस समय तक बिलकुल व्यर्थ है जब तक कि उसमें सदाचार न हो। सदाचार मनुष्य के अन्य अवगुणों को

छिपा देता है—जब कि सदाचार हीनता उसके समस्त गुणों पर पानी फेर देती है।

आह ! क्या ही अच्छा होता, यदि मैं उस समय तुम्हारी चेतावनी पर शुद्ध हृदयता के साथ विचार करती। मैंने तुम्हारी चेतावनी पर ध्यान नहीं दिया, माता-पिता की बात नहीं मानी—उसी के परिणाम-स्वरूप आज मुझे इतना क्लेश भुगतना पड़ा। मेरे हठ और स्वेच्छाचारिता ने मुझे कहीं का न रक्खा।

तुम आश्चर्य करती होगी कि आख़िर सोमेश्वर ने क्या किया। संक्षेप में इस समय मैं इतना ही लिखती हूँ कि सोमेश्वर को अब हिन्दुस्तानी पत्नी पसन्द नहीं—उनका सम्बन्ध एक यूरोपियन कन्या से हो गया है। उसके पीछे वह एक दिन मुझे पीटने तक पर आमादा हो गए थे। मैं ऐसी बातें सहन नहीं कर सकती। मैं अशिक्षित हिन्दू-नारी नहीं हूँ जो प्रत्येक दशा में पति की पूजा किया करती हैं। यद्यपि उन अशिक्षित स्त्रियों के लिए अब मेरे हृदय में बड़ा आदर-भाव उत्पन्न हो गया है। सचमुच वे स्त्रियाँ धन्य हैं जो ऐसा करती हैं। परन्तु मैं तो ऐसा कभी भी नहीं कर सकती। मेरे आँखें हैं, मस्तिष्क है—इसलिए मैं उनका सदुपयोग करूँगी।

मैं आजकल अपने पिता के यहाँ हूँ—पति से अलग हो गई हूँ; और शायद सदैव के लिए। मेरे पिता के यहाँ मेरे गुज़ारे के लिए पर्याप्त सम्पत्ति है—इसके अतिरिक्त मैं ग्रेज्युएट हूँ—अपना पेट आराम के साथ भर सकती हूँ। शेष बातें भेंट होने पर बताऊँगी।

तुम्हारी,
—सरस्वती

निर्मला ने पत्र को लिफ़ाफ़े में रखते हुए अपने ही आप कहा—हाय री स्वेच्छाचारिता, तूने न जाने कितनों का सर्वनाश किया है।

आँसुओं की माला

[रचयिता—कविवर पं० अयोध्यासिंह जी उपाध्याय 'हरिऔध']

चौपदे

(१)

कलेजे मैंने देखे हैं,
टटोले जी मैंने कितने !
काम सबने रस से रक्खा,
मिले मिलने वाले जितने।

(२)

सुनी मीठी-मीठी बातें,
चाव बहुतों में दिखलाया।
मिले सुन्दर मुखड़े वाले,
प्यार सच्चा किस में पाया ?

(३)

सुखों की चाहें हैं सब में,
नहीं मतलब किसको प्यारा ?
आँख में बसने वाले हैं,
कौन है आँखों का तारा ?

(४)

रूप के भूखे दिखलाए,
मिला मुखड़ों का दीवाना।
किसी ने कब सच्चे जी से,
किसी के दुख को दुख माना ?

(५)

इसे मैं किस को पहनाऊँ,
नहीं मिलता है दिल वाला ?
आँसुओं का मोती ले ले,
बनाई क्यों मैंने माला ?

भारत में अङ्गरेज़ी राज्य

[ले० महात्मा सुन्दरलाल जी, भूतपूर्व सम्पादक 'कर्मयोगी' और 'भविष्य']

[शेषांश]

टीपू की मृत्यु के बाद

टीपू की आयु उस समय ५० वर्ष की थी। १७ वर्ष वह अपने पिता के तख़्त पर बैठ चुका था। उसका सबसे बड़ा बेटा फ़तहहैदर सुलतान इस समय क़िले से बाहर कारीघाट पहाड़ी के निकट शत्रु से लड़ रहा था। पिता की मृत्यु का समाचार सुनते ही वह क़िले की ओर लपका। सलाह के लिए उसने तुरन्त अपने वज़ीरों और अमीरों को जमा किया। इनमें एक ओर मलिक जहान ख़ाँ और उसके साथी लड़ाई जारी रखने के पक्ष में थे और दूसरी ओर पूर्निया और उसके साथी फ़ौरन सुलह कर लेने पर ज़ोर दे रहे थे। इतने में जनरल हैरिस ने सुलह की बातचीत करने के बहाने अपने कुछ अफ़सरों सहित आकर फ़तहहैदर सुलतान से भेंट की और अत्यन्त आदर और प्रेम के साथ सबके सामने उससे वादा किया कि यदि आप लड़ाई बन्द कर दें तो अङ्गरेज़ सरकार आपको फिर से आपके पिता के तख़्त पर बैठा देगी। इस साफ़ वादे पर और पूर्निया जैसों के ज़ोर देने पर फ़तहहैदर सुलतान ने शस्त्र रख दिए। जनरल हैरिस ने वहाँ से लौटते ही अपने इस वादे को साफ़ तोड़ डाला। निस्सन्देह उसका यह वादा केवल एक चाल थी। श्रीरङ्गपट्टन के क़िले पर अङ्गरेज़ी सेना का क़ब्ज़ा जारी रहा।

श्रीरङ्गपट्टन के क़िले के बाद अङ्गरेज़ी सेना के लिए नगर में प्रवेश करना बाक़ी था। मार्किस वेलसली के नाम से एक एलान प्रकाशित किया गया कि अङ्गरेज़ी सेना नगर-निवासियों के जान और माल दोनों की रक्षा करेगी और किसी पर किसी तरह का अन्याय न होगा। किन्तु विजयी अङ्गरेज़ी सेना के नगर में घुसते ही "श्रीरङ्गपट्टन की गलियों में एक-एक दीवार और एक-एक दरवाज़े से ख़ून बहने लगा।" इतना ही नहीं, श्रीरङ्गपट्टन के पतन के बाद कई दिन तक कम्पनी के सिपाहियों और विशेषकर गोरे सिपाहियों ने जो अकथनीय अत्याचार नगर-निवासियों पर जारी रक्खे और जिन्हें स्वयं अङ्गरेज़-अफ़सरों ने अपने पत्रों में स्वीकार किया है, उनके सामने किसी भी भारतीय नरेश के काले से काले पाप फीके मालूम होते हैं। मीर हुसेनअली ख़ाँ लिखता है कि क़त्ल, लूट और नगर की स्त्रियों के ऊपर बलात्कार इस ज़ोरों से बढ़ा कि वर्णन करना असम्भव है!

इसके बाद अङ्गरेज़ी सेना शाही महल के अन्दर घुसी। टीपू को अपने बाप के समान शेर पालने का शौक़ था। उसके महल के बाहरी सहन में अगणित शेर खुले फिरते रहते थे। अङ्गरेज़ों को भीतर घुसने से पहले इन शेरों को गोली से उड़ा देना पड़ा। महल के भीतर टीपू का ख़ज़ाना धन और जवाहरात से लबालब था। यह माल, हाथी, ऊँट और तरह-तरह का असबाब कम्पनी और उसके अङ्गरेज़ सिपाहियों के हाथों में आया। टीपू के सुन्दर तख़्त को, जो सोने का बना हुआ था, तोड़ डाला गया और हीरे, जवाहरात, मोतियों की मालाएँ और ज़ेवरों के पिटारे नीलाम किए गए। यहाँ तक कि केवल महल के जवाहरात की लूट का अन्दाज़ा उस समय १,११,४३,२१६ पाउण्ड अर्थात् लगभग १२ करोड़ रुपए का किया गया। टीपू का विशाल पुस्तकालय और अनेक अन्य बहुमूल्य पदार्थ श्रीरङ्गपट्टन से उठा कर विलायत भेज दिए गए।

४ मई, सन् १७९९ को टीपू की मृत्यु हुई। उसी दिन अङ्गरेज़ी सेना ने श्रीरङ्गपट्टन में प्रवेश किया। ५ मई को टीपू की लाश हैदरअली के मक़बरे के पास लाल बाग़ में दफ़न कर दी गई। इसके बाद फ़तहहैदर सुलतान के साथ जनरल हैरिस के वादे को मिट्टी में मिला कर अङ्गरेज़ों ने टीपू के भाई करीमसाहब, टीपू के १२ बेटों और उसकी बेगमों सबको क़ैद करके रायवेलोर के क़िले में भेज दिया।

टीपू की सल्तनत के टुकड़े कर दिए गए। अधिकांश भाग कम्पनी को मिला। एक फाँक निज़ाम के हिस्से में आई। शेष भाग पर मैसूर के पुराने हिन्दू-राजकुल का शासन रहने दिया गया, और उस कुल का एक पाँच वर्ष का बालक राजा बना कर बैठा दिया गया, क्योंकि इस कुल के कुछ लोगों ने भी टीपू के विरुद्ध अङ्गरेज़ों को मदद दी थी। मैसूर के "दैव" का पद भविष्य के लिए उड़ा दिया गया; और विश्वासघातक पूर्निया बालक राजा का वज़ीर और रक्षक नियुक्त हुआ।

टीपू सुलतान

८ जुलाई, सन् १७९९ को मैसूर के नए महाराजा और अङ्गरेज़ कम्पनी के बीच सोलह शर्तों का एक नया सन्धि-पत्र लिखा गया। इन शर्तों का सार यह था कि कम्पनी की सबसीडीयरी सेना मैसूर में रहा करेगी, मैसूर के राजा को इस सेना के ख़र्च के लिए सात लाख पैगोडा अर्थात् लगभग पचीस लाख रुपए सालाना देने होंगे, रियासत के समस्त क़िले और तमाम फ़ौजी शासन अङ्गरेज़ों के हाथों में रहेगा, राज्य के हर महकमे में दख़ल देने का गवरनर-जनरल को पूरा अधिकार रहेगा। गवरनर-जनरल की आज्ञा हर समय और हर हालत में राजा के लिए मान्य होगी, और राजा का एक मात्र अधिकार यह होगा कि रियासत की आमदनी में से फ़ौजी तथा अन्य सब ख़र्च निकाल कर उसे कम से कम एक लाख पैगोदा सालाना अपने निजी ख़र्च के लिए मिलता रहे।

टीपू के जिन सरदारों और अन्य नौकरों ने अपने मालिक के साथ विश्वासघात किया था उनमें से कुछ को इनाम में जागीरें और पेनशनें दी गईं। इङ्गलिस्तान की सरकार ने उन सब अङ्गरेज़ों को इनाम दिए, जिन्होंने इस युद्ध में भाग लिया था। गवरनर-जनरल का नाम पहले 'अर्ल' मॉरनिङ्गटन था, अब रुतबा बढ़ कर उसका नाम 'मार्किस' वेल्सली होगया। जनरल हैरिस आयन्दा के लिए जनरल 'लॉर्ड हैरिस ऑफ़ श्रीरङ्गपट्टन' हो गया।

टीपू के सरदारों में से एक वीर मलिक जहान ख़ाँ ने, जिसे धूँडिया वाघ भी कहा जाता है, अन्त तक विदेशियों की अधीनता स्वीकार न की। केवल एक घोड़ा साथ लेकर श्रीरङ्गपट्टन के पतन के समय वह नगर से निकल गया और थोड़े ही दिनों में उसने लगभग तीस हज़ार सवार और पैदल अपने साथ जमा कर लिए। दो वर्ष तक कृष्णा और तुङ्गभद्रा नदियों के बीच के इलाक़े में वह अङ्गरेज़ों और उनके साथियों को दिक़ करता रहा। अनेक लड़ाइयों में उसने विजय प्राप्त की। उसकी कीर्ति चारों ओर फैल गई। किन्तु इस अरसे में वह कोई बाज़ाब्ता क़िला अथवा केन्द्र अपने लिए न बना सका। अन्त में दो वर्ष तक इस प्रकार मुक़ाबला करने के बाद एक स्थान पर करनल आरथर वेल्सली की सेना के साथ उसका अन्तिम संग्राम हुआ, जिसमें कड़प्पा और करनूल के अफ़ग़ानों ने उसके साथ विश्वासघात करके उसे करनल वेल्सली के हवाले कर दिया। अङ्गरेज़ इतिहास-लेखक स्वाधीनता के इस सच्चे प्रेमी को, जिसने लगातार दो वर्ष तक अनन्त कष्ट सहन करते हुए भी विदेशियों की अधीनता स्वीकार न की, प्रायः उसी प्रकार डाकू बतलाते हैं जिस प्रकार छत्रपति शिवाजी को।

इस प्रकार वीर हैदरअली की नसल में राजसत्ता का अन्त कर दिया गया और निस्सन्देह भारतीय ब्रिटिश

साम्राज्य के मार्ग से एक बहुत ज़बरदस्त बाधा दूर हो गई।

टीपू की मृत्यु का समाचार जब कलकत्ते पहुँचा तो वहाँ के अङ्गरेज़ों ने बड़े-बड़े जलसे किए और ख़ुशियाँ मनाईं, बाक़ायदा जुलूस निकाले गए और गवरनर-जनरल तथा शेष समस्त अफ़सरों ने एक विशेष दिन नियत करके बड़े ठाँट-बाट के साथ कलकत्ते के नए गिरजे में जाकर ख़ुदा का शुक्रिया अदा किया; क्योंकि उस समय के बङ्गाल के अङ्गरेज़ चीफ़ जस्टिस सर जॉन ऐन्सट्रथर के शब्दों में टीपू की ताक़त ही—"उस समय एक मात्र ताक़त थी जो हमारी सेनाओं का मुँह मोड़ने का अपने में बल रखती थी।" और "भारत में हमारा (अङ्गरेज़ी) साम्राज्य अब से स्थायी और सुरक्षित हो गया।"*

टीपू का चरित्र

प्रसिद्ध इतिहास-लेखक जेम्स मिल के अतिरिक्त बहुत कम अङ्गरेज़ लेखक ऐसे हैं, जिन्होंने टीपू के चरित्र के साथ न्याय करने का प्रयत्न किया हो। इनमें से अधिकांश लेखकों ने टीपू को बदनाम करने के भरसक प्रयत्न किए हैं, यहाँ तक कि मुसलमान-लेखकों को धन देकर उनसे फ़ारसी में सुलतान टीपू की कल्पित जीवनियाँ लिखा डाली गई हैं। इन अङ्गरेज़ों तथा अङ्गरेज़ों के धनक्रीत भारतीय लेखकों की पुस्तकों में टीपू के अत्याचारों के अनेक कल्पित क़िस्से भरे हुए हैं। वास्तव में संसार के इतिहास में शायद बहुत कम लोगों के चरित्रों पर इतने अधिक झूठे कलङ्क लगाए गए होंगे जितने कि उन भारतीय वीरों के चरित्र पर, जिन्होंने समय-समय पर इस देश के अन्दर अङ्गरेज़ी राज्य के विस्तार को रोकने का प्रयत्न किया। प्रसिद्ध और प्रामाणिक अङ्गरेज़ इतिहास-लेखक सर जॉन के, जो सन् ५७ के विप्लव के पश्चात् इङ्गलिस्तान के भारत-मन्त्री के दफ़्तर में "राजनैतिक और गुप्त विभाग" का सेक्रेटरी रहा, लिखता है—

"हम लोगों में यह एक प्रथा है कि पहले किसी देशी नरेश का राज्य छीनते हैं और फिर उस पर अथवा उसका उत्तराधिकारी बनने वाले पर झूठे कलङ्क लगा कर उन्हें बदनाम करते हैं।"*

दो तरह के इलज़ाम टीपू सुलतान पर लगाए जाते हैं। एक यह कि अपने अङ्गरेज़ क़ैदियों के साथ उसका व्यवहार अत्यन्त क्रूर था और दूसरा यह कि टीपू एक धर्मान्ध मुसलमान था।
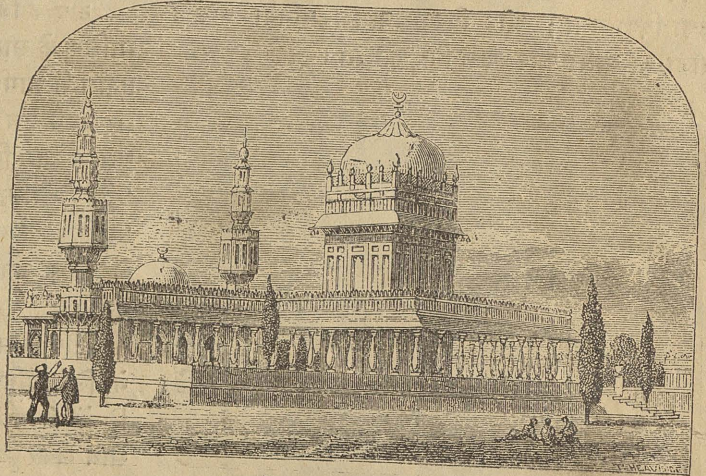
श्रीरंगपट्टन में हैदरअली और टीपू सुलतान की समाधि

पहले इलज़ाम के विषय में हम केवल इतना कहेंगे कि सिवाय कप्तान बेयर्ड जैसे अङ्गरेज़ क़ैदियों के बयानों के और कोई गवाही इस 'क्रूर व्यवहार' की नहीं मिलती, और यह अङ्गरेज़ क़ैदी न निष्पक्ष माने जा सकते हैं और न सर्वथा सत्यवादी। इसके अतिरिक्त यदि बेयर्ड और उसके साथियों के सारे बयान सच मान लिए जाएँ तो भी वे समस्त अत्याचार, जो टीपू ने बेयर्ड और उसके साथी अङ्गरेज़ों पर किए, उन अत्याचारों के मुक़ाबले में सर्वथा फीके मालूम होते हैं जो अङ्गरेज़ों ने इन्हीं मैसूर के युद्धों में अपने हिन्दोस्तानी क़ैदियों और मैसूर की प्रजा के साथ किए।

दूसरा इलज़ाम इस देश में हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य

* Sir John Anstruther to the Governor-General, 17th May, 1799.

* ". . . it is a custom among us 'Odisse quern ceseres'—to take a Native Ruler's Kingdom and then to revile the deposed ruler or his would-be successor."

—*History of the Sepoy War* by Sir John Kaye, Vol. III, pp. 361, 362.

को बढ़ाने का अङ्गरेज़ लेखकों के हाथों में सदा से एक विशेष साधन रहा है। सबसे पहले हम टीपू पर इस कलङ्क के विषय में इतिहास-लेखक जेम्स मिल की सम्मति उद्धृत करते हैं। जेम्स मिल लिखता है—

"टीपू के चरित्र की एक और विशेषता उसकी धार्मिकता थी। उसके मन पर इस धार्मिक भाव का अत्यन्त गहरा प्रभाव पड़ा हुआ था। दिन का अधिकांश समय वह ईश्वर-प्रार्थना में ख़र्च किया करता था। अपनी सल्तनत को वह 'ख़ुदादाद' अर्थात् ईश्वर-प्रदत्त कहा करता था। ईश्वर के अस्तित्व और उसकी पालकता में उसे इतना गहरा विश्वास था कि इस विश्वास का प्रभाव उसके जीवन के समस्त कार्यों पर पड़ता था। वास्तव में जिन चीज़ों ने उसे फँसाने के लिए जाल का काम दिया उनमें से एक उसका ईश्वर की सहायता पर विश्वास था; क्योंकि वह इस ईश्वरीय सहायता पर इतना अधिक भरोसा करता था कि उसके कारण वह अपनी रक्षा के दूसरे उपायों की अवहेलना कर जाता था।"*

यह बयान एक विद्वान् और प्रामाणिक अङ्गरेज़ इतिहास-लेखक का है। निस्सन्देह इस विषय में हैदरअली और टीपू सुल्तान में अन्तर था। हैदरअली सम्राट् अकबर के समान सर्वथा स्वतन्त्र विचार का मनुष्य था। टीपू ईश्वर में विश्वासी और धार्मिक विचार का था। हैदरअली किसी धर्म को भी पूर्ण वा निर्भ्रान्त न समझता था। टीपू इसलाम-धर्म को मानता था। किन्तु जिस प्रकार का ईश्वर-भक्त और विश्वासी मनुष्य टीपू था, उस प्रकार की धार्मिकता एक चीज़ है और धर्मान्धता बिलकुल दूसरी चीज़ है।

तथापि अङ्गरेज़ों और अङ्गरेज़ों के धनक्रीत भारतीय लेखकों की पुस्तकों में टीपू की धर्मान्धता और ग़ैर मुसलमानों के प्रति उसके अनुचित व्यवहार की इतनी कहानियाँ दर्ज हैं कि हमने इस विषय में अपनी अन्तिम राय क़ायम करने से पहले और अधिक खोज की आवश्यकता अनुभव की। हम वर्त्तमान मैसूर राज्य के पुरातत्व-विभाग के विद्वान् डाइरेक्टर डॉक्टर शाम शास्त्री और मैसूर-विश्वविद्यालय के रजिस्ट्रार श्रीयुत श्रीकान्तिया तथा वहाँ के उन अन्य सज्जनों के अनुग्रहीत हैं, जिन्होंने इस खोज में हमें हर तरह सहायता दी।
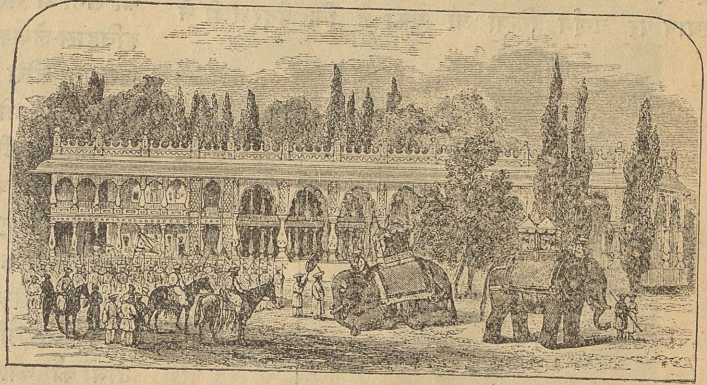
लालबाग़, श्रीरंगपट्टन में टीपू सुलतान के महल का बाहरी दृश्य

इस समस्त छानबीन में हमें केवल दो लेख इस प्रकार के मिल सके जिन्हें किसी प्रकार भी प्रामाणिक कहा जा सके और जिनसे टीपू में धार्मिक सङ्कीर्णता का आभास हो सके। पहला लेख टीपू का उस समय का एक एलान है, जब कि अङ्गरेज़ों और नवाब करनाटक के साथ टीपू का युद्ध जारी था। इस एलान में टीपू ने क़ुरान की आयतों और महाकवि हाफ़िज़ की कुछ पंक्तियों को उद्धृत करते हुए शत्रु के इलाक़े में रहने वाले मुसलमानों से प्रार्थना की है कि आप लोग विदेशियों को सहायता न दें और शत्रु के इलाक़े को छोड़ कर मैसूर राज्य में आ बसें। एलान में दर्शाया गया है कि किसी मुसलमान के लिए हिन्दोस्तान के हित के विरुद्ध विदेशियों की सहायता करना पाप है। टीपू ने इस एलान में करनाटक और बङ्गाल के अन्दर अङ्गरेज़ों के अत्याचारों

* "Another feature in the character of Tipu was his religion, with a sense of which his mind was most deeply impressed. He spent a considerable part of every day in prayer. He gave to his Kingdom, or state, a particular religious title, 'Khudadad' or God-given; and he lived under a peculiarly strong and operative conviction of the Superintendence of a Divine Providence. His confidence in the protection of God was, indeed, one of his snares; for he relied upon it to the neglect of other means of safety."

—*History of India*, By James Mill.

की ओर सङ्केत करते हुए लिखा है—"हिन्द के नरेशों की निर्बलता के कारण वह मदोद्धत जाति (यानी अङ्गरेज़) व्यर्थ यह समझ बैठी है कि सच्चे दीनदार लोग निर्बल, तुच्छ और निकृष्ट हो गए हैं।" एलान में यह भी लिखा है कि हमने अपनी सल्तनत भर में प्रजा और राजकर्मचारियों को यह आज्ञा भेज दी है कि जो लोग शत्रु के इलाक़े से आकर मैसूर राज्य में बसना चाहें उनके जान-माल की पूरी रक्षा की जाय और उनकी जीविका इत्यादि का उचित प्रबन्ध करा दिया जाय इत्यादि।*

दूसरा लेख मैसूर राज्य में रहने वाले हिन्दोस्तानी ईसाइयों से सम्बन्ध रखता है। इस पुस्तक में एक दूसरे स्थान पर वर्णन किया जा चुका है कि हैदरअली ने
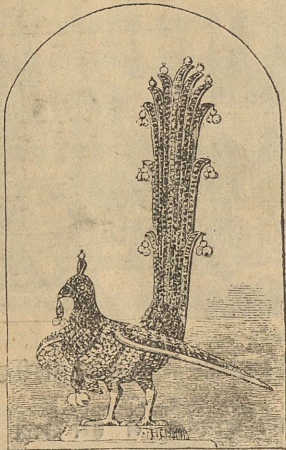
टीपू सुलतान के सिंहासन के शिखर का रत्न-जटित मोर

उदारतावश अपने राज्य में यूरोप के ईसाई पादरियों को अपने मत-प्रचार की इजाज़त दे दी थी और उनकी इच्छानुसार कई तरह की सुविधाएँ कर दी थीं, जिसके कारण विशेषकर समुद्र-तट के कुछ लोगों ने ईसाई-मत स्वीकार कर लिया था। किन्तु कम्पनी और हैदरअली के संग्रामों में इन्हीं यूरोपियन तथा भारतीय ईसाइयों ने हैदरअली के विरुद्ध अङ्गरेज़ों का साथ दिया। अपनी

* *Select Letters of Tipu Sultan to various public functionaries*, arranged and translated by William Kirkpatrick, pp. 293-97.

ईसाई प्रजा की ओर से इसी प्रकार का कटु अनुभव कई बार टीपू सुलतान को भी प्राप्त हुआ। वास्तव में ये भारतीय ईसाई अपने यूरोपियन धर्माचार्यों के हाथों में खेल रहे थे। विवश होकर टीपू को उनके विरुद्ध उपाय करने पड़े। जिस लेख की ओर हम सङ्केत कर रहे हैं, उसमें लिखा है कि एक बार समुद्र-तट के कुछ ईसाइयों की ज़्यादती को सुन कर टीपू ने आज्ञा दी कि तुम लोग अब या तो मैसूर राज्य छोड़ कर चले जाओ और या मुसलमान हो जाओ। एक इतिहास-लेखक लिखता है कि साठ हज़ार ईसाई मर्द, औरत और बच्चे गिरफ़्तार करके सुलतान के सामने पेश किए गए, उन्हें इसलाम-धर्म में ले लिया गया और जीविका के लिए उन्हें राज्य की सेना में भरती कर लिया गया। एक दूसरा अङ्गरेज़ इतिहास-लेखक लिखता है कि इन लोगों की संख्या लगभग तीस हज़ार थी।* सम्भव है कि इस दूसरे अनुमान में भी अत्युक्ति की काफ़ी मात्रा मौजूद हो।

जो हो, टीपू की इन दोनों आज्ञाओं के सम्बन्ध में निम्नलिखित बातें ध्यान देने योग्य हैं।

पहला एलान साफ़ युद्ध से सम्बन्ध रखता था, उससे धार्मिक सङ्कीर्णता का कोई सम्बन्ध नहीं।

दूसरे लेख के विषय में, अपने तथा अपने राज्य के साथ ईसाइयों के विश्वासघात का हैदरअली और टीपू दोनों को काफ़ी कटु अनुभव प्राप्त हो चुका था। यही ईसाई बहुत दिनों तक टीपू के राज्य में सुख और स्वतन्त्रता के साथ रह चुके थे, और जब तक उनके दुष्कृत्य अधिक नहीं बढ़े, उनके साथ कोई छेड़छाड़ नहीं की गई। टीपू की इस दूसरी आज्ञा के सम्बन्ध में ठीक-ठीक संख्या का अथवा उसमें 'ज़बरदस्ती' की मात्रा का अनुमान कर सकना भी कठिन है।

इसके अतिरिक्त ईसाइयों को छोड़ कर मैसूर की शेष समस्त हिन्दू तथा अन्य ग़ैर-मुस्लिम प्रजा के साथ टीपू के अनुचित व्यवहार का इसमें कहीं ज़िक्र नहीं।

मैसूर की अधिकांश जन-संख्या हिन्दू थी और हिन्दुओं के साथ टीपू के किसी प्रकार के अनुचित व्यवहार का हमें एक भी प्रामाणिक उल्लेख नहीं मिलता। इसके विपरीत अपनी हिन्दू-प्रजा के साथ टीपू

* *Historical Sketches of the South India etc.*, by Colonel Mark Wilks, Vol. II, pp. 529, 530.

के उदार तथा प्रेम-पूर्ण व्यवहार के असंख्य उदाहरण उस समय के इतिहास में भरे पड़े हैं।

अन्त समय तक टीपू के दरबार में ऊँची से ऊँची पदवियाँ हिन्दुओं को मिली हुई थीं। उसके दो मुख्य मन्त्री पूर्निया और कृष्णराव ब्राह्मण थे, जिनमें पूर्निया उसका प्रधान मन्त्री था। इन दोनों मन्त्रियों का प्रभाव उस समय अत्यन्त बढ़ा हुआ था। इनके अतिरिक्त असंख्य ब्राह्मण टीपू के दरबार में विशेषकर राजदूतों का काम करने और दरबार में लोगों का परिचय कराने पर नियुक्त थे।

एक बार मलबार तट की नय्यर जाति के कुछ लोगों ने अपने ईसाई मत स्वीकार करने या न करने के विषय में टीपू सुलतान से सलाह माँगी। टीपू ने उत्तर दिया—

"नरेश प्रजा का पिता होता है। इस हैसियत से मेरी आपको यह सलाह है कि आप लोग अपने पूर्व-पुरुषों के मज़हब (अर्थात् हिन्दू मज़हब) पर क़ायम रहें; और यदि आपको अपना मज़हब बदलने की इच्छा है ही तो आप (ईसाई होने के स्थान पर) अपने पिता तुल्य नरेश का मज़हब स्वीकार करें।"

जगद्गुरु श्री० शङ्कराचार्य का श्रृङ्गेरी मठ मैसूर के राज्य में था। टीपू उस समय के श्रृङ्गेरी स्वामी जगद्गुरु शङ्कराचार्य श्री० सच्चिदानन्द भारती का असाधारण आदर करता था। जगद्गुरु के नाम टीपू सुलतान के समय-समय पर भेजे हुए तीस से ऊपर पत्र इस समय मौजूद हैं, जो अत्यन्त मान-सूचक शब्दों में लिखे हुए हैं।

लॉर्ड कॉर्नवालिस टीपू सुलतान के दो बच्चे बतौर बन्धक ले रहा है

मैसूर-राज्य के पुरातत्व-विभाग के डाइरेक्टर ने दो मूल पत्रों के फ़ोटो हमारे पास भेजे हैं, जिनमें से एक को नमूने के तौर पर हम प्रकाशित कर रहे हैं। पत्र कनाड़ी भाषा में है।

पत्र का हिन्दी भाषान्तर इस प्रकार है—

मोहर टीपू सुलतान

"श्रीमत् परमहंसादि यथोक्त बिरुदाङ्कित श्रृङ्गेरी श्री० स्वामी सच्चिदानन्द भारती जी महाराज की सेवा में टीपू सुलतान बादशाह का सलाम।

"श्री० महाराज के लिखकर भेजे हुए पत्र से सकल अभिप्राय विदित हुआ। आप जगद्गुरु हैं, सर्वलोक के क्षेम और सबकी स्वस्थता के हित आप तपस्या करते रहते हैं। ऐसे ही दया कर इस सरकार के क्षेम और उसकी उत्तरोत्तर अभिवृद्धि के लिए तीनों काल में तपस्या करते हुए ईश्वर से प्रार्थना करने की कृपा कीजिए। आप जैसे महापुरुष जिस देश में निवास करते हैं, उस देश में वर्षा अच्छी होती है, कृषि फूलती-फलती है और सदा सुभिक्ष रहता है। आप इतने अधिक दिनों तक परदेश में क्यों रह रहे हैं? जिस उद्देश से श्रीमहाराज वहाँ गए हैं उसे शीघ्र अपने अनुकूल सिद्ध करके अपने स्थान को वापस आने की कृपा कीजिए।

"तारीख़ २६, महीना राजी साल सहर सन् १२२० महम्मदी, तदनुसार परीधावी सम्वतसर माघ कृष्ण चतुर्दशी, लिखा हुआ सुबाऊ मुन्शी हुज़ूर।"

(हस्ताक्षर टीपू सुलतान)

यह पत्र सन् १७९३ ईसवी का उस समय का लिखा हुआ है, जबकि जगद्गुरु किसी कार्यवश कुछ समय के लिए शृङ्गेरी मठ से बाहर पूना की ओर गए हुए थे। पत्र जगद्गुरु के एक पत्र के उत्तर में है। इस पत्र-व्यवहार से स्पष्ट है कि उस समय के जगद्गुरु शङ्कराचार्य में और टीपू सुलतान में किस प्रकार का सम्बन्ध था।

टीपू के महल के अन्दर अनेक हिन्दू-पुरोहित और ज्योतिषी रहा करते थे, और वे टीपू की ओर से यज्ञ, हवन, जप इत्यादि करते रहते थे। मरते दम तक टीपू ने ब्राह्मणों को दान दिए और हिन्दू-ज्योतिषियों के आदेशानुसार यज्ञ-हवन करवाए। भाद्रपद शुक्ला द्वितीया विरोधीकृत सम्वत्सर अर्थात् सन् १७९१ का लिखा हुआ जगद्गुरु के नाम टीपू का एक और पत्र हमारे पास मौजूद है, जिसमें टीपू ने अपने ख़र्च पर जगद्गुरु से 'शतचण्डी सहस्र पाठ' की व्यवस्था कर देने की प्रार्थना की है।

नञ्जनगुड, श्रीरङ्गपट्टन और मेलकोट इत्यादि के अनेक हिन्दू-मन्दिरों को टीपू ने अनेक बार नज़रें और जागीरें प्रदान कीं। इनमें से बङ्गलोर में टीपू के ज़नाने महल के ठीक सामने श्रीवेङ्कटरामन्न स्वामी का मन्दिर, महल से मिला हुआ श्रीनिवास का मन्दिर, श्रीरङ्गपट्टन के महल के पास श्रीरङ्गनाथ स्वामी का मन्दिर तथा श्रीरङ्गपट्टन के अन्य अनेक मन्दिर उस समय से लेकर आज तक टीपू की धार्मिक उदारता के साक्षी मौजूद हैं।

टीपू की धार्मिक उदारता के विषय में इससे अधिक सुबूत देने की आवश्यकता नहीं है। निस्सन्देह इस तरह के नरेश पर अपने तुच्छ स्वार्थ की दृष्टि से झूठे कलङ्क लगाना उसके, उसके देश और उसकी जाति के साथ घोर अन्याय करना है।

टीपू के शेष चरित्र के विषय में, उस समय के समस्त ऐतिहासिक उल्लेखों से साबित है कि टीपू एक अत्यन्त योग्य शासक और अपनी प्रजा का सच्चा हित-चिन्तक था। उसकी समस्त प्रजा उससे अत्यन्त प्रसन्न और सन्तुष्ट थी। किसानों का वह विशेष मित्र था। उसने अपने राज्य-भर में इस बात की कड़ी आज्ञा दे रक्खी थी कि कोई पटेल, आमिलदार वा अन्य सरकारी कर्मचारी प्रजा के किसी मनुष्य से किसी तरह की 'बेगार' न ले, अर्थात् उसकी इच्छा के विरुद्ध कोई कार्य न करावे। लगान की वसूली में किसी प्रकार की भी सख़्ती की इजाज़त न थी।

टीपू का कोई बड़े से बड़ा कर्मचारी भी यदि प्रजा पर किसी तरह का अत्याचार करता था तो टीपू इस तरह के अपराधी को सख़्त से सख़्त सज़ा देता था।

हर गाँव के लोगों को अपने यहाँ के रस्म-रिवाज सम्बन्धी अथवा अन्य इसी प्रकार के आपसी झगड़े स्वयं पञ्चायत द्वारा तय करने का अधिकार था और किसी राजकर्मचारी को उनमें हस्तक्षेप करने की इजाज़त न थी।*

किसानों की बहबूदी के अन्य उपायों की ओर से भी टीपू बेख़बर न था। हाल में मैसूर राज्य के अन्दर खेतों की आबपाशी और अन्य उपयोग के लिए कावेरी नदी के ऊपर एक बहुत बड़ा जलाशय तैयार हुआ है, जो भारत में इस प्रकार का सबसे बड़ा जलाशय बताया जाता है। इस जलाशय के लिए खुदाई होते समय एक पुराना पक्का बाँध दिखाई दिया, जिसकी नींव में से टीपू सुलतान के समय का फ़ारसी अक्षरों में खुदा हुआ एक शिलालेख मिला। शिलालेख

* Tipu Sultan 1749—1799, A. D. by V. Raghevendra Rao, M. A. *The Mysore Scout* for July 1927.

से मालूम होता है कि सबसे पहले सन् १७९७ ई० में टीपू सुलतान ने अपने हाथ से इस विशाल जलाशय की नींव रक्खी थी। यह शिलालेख टीपू सुलतान ही के हाथ का रक्खा हुआ बाँध का बुनियादी पत्थर है। सबसे विचित्र बात इस शिलालेख से यह मालूम होती है कि जबकि आजकल आबपाशी के हर नए प्रबन्ध के साथ-साथ भूमि का लगान बढ़ा दिया जाता है, टीपू सुलतान ने जो 'लखूखा' रुपए इस शुभ कार्य में ख़र्च किए वे लगान बढ़ाया जाय। किन्तु दुर्भाग्यवश बाँध की बुनियाद रक्खे जाने के दो वर्ष के अन्दर ही टीपू की इस आज्ञा का मूल्य केवल एक ऐतिहासिक लेख से अधिक न रह गया!

फ़ारसी शिलालेख का हिन्दी-अनुवाद इस प्रकार है:—

"या फ़त्ताह (ऐ खोलने वाले!)

"उस अल्लाह के नाम से जो रहमान और रहीम है!

"सन् १२२१ शादाब (सौर) जो मोहम्मद साहब—
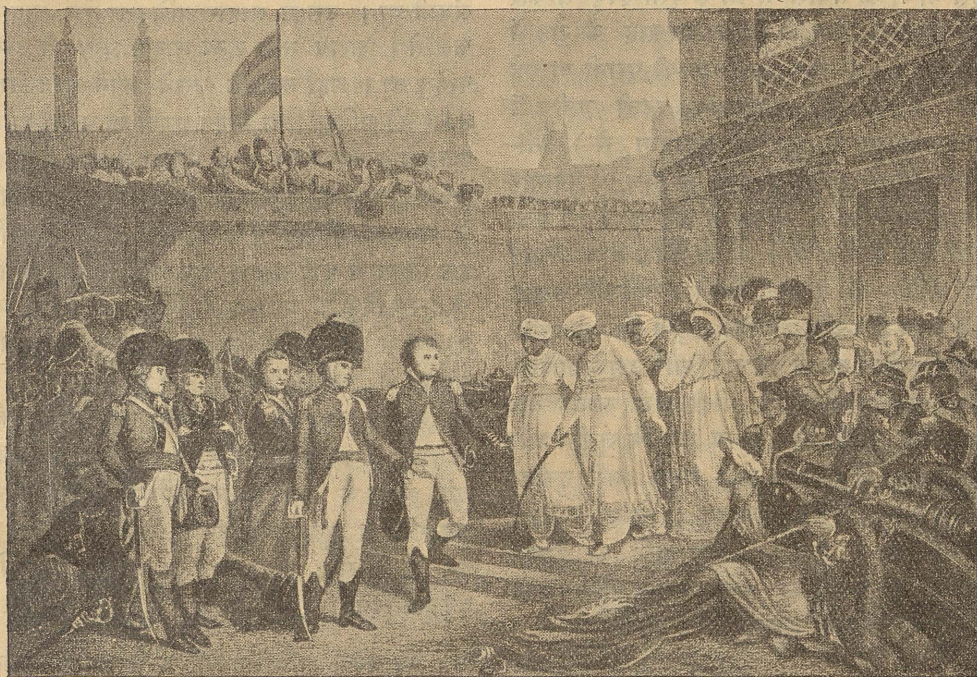
टीपू सुलतान की मृत्यु के बाद उसके दो पुत्रों का आत्म-समर्पण

केवल 'अल्लाह की राह पर' ख़र्च किए गए; यह आज्ञा दे दी गई कि जो किसान इस जलाशय की सहायता से नई ज़मीन में खेती-बाड़ी करेंगे, उन्हें औरों की अपेक्षा अधिक लगान देने के स्थान पर अन्य किसानों से एक चौथाई कम लगान देना होगा, और ये ज़मीनें उन किसानों के कुलों में सदा के लिए पैतृक रहेंगी। इसी लेख में टीपू ने अपने उत्तराधिकारियों तथा भावी शासकों को कड़ी से कड़ी क़समें दी हैं कि कोई इस 'अनन्त धर्मकार्य' में बाधा न डाले, अर्थात् न उन किसानों की सन्तति से कभी ज़मीनें छीनी जायँ और न कभी उनका ईश्वर उनकी आत्मा को शान्ति दे—के जन्म से शुरू हुआ, उसके तक़ी (ज्येष्ठ) महीने की २९ तारीख़ को, तदनुसार शब २७ ज़िलहिज सन् १२१२ हिजरी (चान्द्र) सोमवार के दिन, बहुत सवेरे, सूर्योदय से पहले, वृषभ लग्न और शुक्र घड़ी के प्रारम्भ में, ईश्वर की कृपा और रसूल की सहायता से, ज़मीन और ज़माने के ख़लीफ़ा, चक्रवर्ती शहनशाह, जनाब हज़रत टीपू सुलतान ने—जो साया हैं उस अल्लाह का जो सबका मालिक और सबका दाता है, ईश्वर सदा उनके राज्य और उनकी ख़िलाफ़त को बनाए रक्खे—कावेरी नदी के ऊपर राज-

धानी के पश्चिम में 'मुही' (अर्थात् जान डालने वाला) नामक बाँध की नींव रक्खी। शुरू करना हमारा काम है, पूरा करना अल्लाह के हाथ में है।

"जिस शुभ दिन नींव रक्खी गई उस दिन सूर्य, चन्द्रमा, शुक्र और वृहस्पति, चारों का मेष राशि में एक घर के अन्दर शुभ योग था। अल्लाह ताला की मदद से यह बाँध क़यामत के दिन तक क़ायम और स्थिर तारों के समान अटल रहे।

"इस बाँध की तैयारी में जो लखूखा रुपए सरकार ख़ुदादाद ने ख़र्च किए, वे केवल अल्लाह की राह में ख़र्च किए गए हैं। सिवाय इस समय की पुरानी या नई खेती-बाड़ी के, जो कोई मनुष्य कि पड़ती ज़मीन में (इस नए जलाशय के जल की सहायता से) खेती-बाड़ी करेगा, अपनी ज़मीन के फलों या नाज की पैदावार का जो भाग आमतौर पर नियम के अनुसार दूसरी प्रजा सरकार को देती है, उस भाग का वह केवल तीन चौथाई ख़ुदादाद सरकार को दे और शेष एक चौथाई अल्लाह की राह में माफ़ है। और जो कोई मनुष्य कि नई ज़मीन में खेती-बाड़ी करेगा उसकी औलाद और उसके वारिसों के पास वह ज़मीन पीढ़ी दर पीढ़ी उस समय तक क़ायम व बहाल रहेगी, जिस समय तक कि ज़मीन और आसमान क़ायम हैं। अगर कोई शख़्स इसमें रुकावट डाले या इस अनन्त ख़ैरात में बाधक हो तो वह कमीना, शैतान-ए-मलऊन के समान, मनुष्य-जाति का दुश्मन और किसानों की नसल का बल्कि समस्त प्राणियों की नसल का दुश्मन समझा जायगा।

लिखा सय्यद जाफ़र"

निस्सन्देह इस राजकीय लेख के भावों का आजकल के राजकीय लेखों में मिल सकना असम्भव है!

अपने राज्य के उद्योग-धन्धों और व्यापार को टीपू ने अपूर्व उन्नति दी। विशेषकर मैसूर के अन्दर सूती, ऊनी और रेशमी वस्त्रों के उद्योग ने जितनी उन्नति टीपू के समय में की, उतनी उससे पूर्व अथवा उसके बाद अर्वाचीन समय में कभी नहीं की। उसके लोहे इत्यादि के कारख़ानों में अन्य चीज़ों के अतिरिक्त बढ़िया से बढ़िया तोपें और दोनली तथा तीननली बन्दूक़ें ढलती थीं।

टीपू स्वयं विद्वान् था और विद्या और विद्वानों से उसे बड़ा प्रेम था। विद्वान् पण्डितों तथा मौलवियों दोनों का उसके दरबार में जमघट रहा करता था। उसका विशाल पुस्तकालय असंख्य, अमूल्य और अलभ्य पुस्तकों से भरा हुआ था। उसकी समस्त प्रजा सशस्त्र और सन्नद्ध थी, और उसके राज्य में चारों ओर वह ख़ुशहाली नज़र आती थी जो आस-पास के अङ्गरेज़ी इलाक़े में कहीं देखने को भी न मिलती थी।

टीपू का व्यक्तिगत जीवन अत्यन्त सरल, शुद्ध और संयमी था। उसका आहार अधिकतर दूध, बादाम और फल थे। शराब तथा अन्य मादक द्रव्यों से उसे सख़्त परहेज़ था। यहाँ तक कि उसने अपने राज्य भर में हर प्रकार की मदिरा तथा मादक द्रव्यों का बनना वा बिकना क़तई बन्द कर रक्खा था। स्त्री-जाति के सतीत्व की रक्षा का उसे असाधारण ख़याल रहता था। अपनी लड़ाइयों में वह इसका विशेष विचार रखता था कि उसके सिपाही इस विषय में कोई ग़लती न कर बैठें। यदि कभी किसी से इसके विपरीत आचरण हो जाता था तो टीपू अपराधी को कड़े से कड़ा दण्ड देता था। मराठों के साथ उसके संग्रामों में कम से कम दो बार अनेक मराठा स्त्रियाँ, जिनमें कुछ सरदारों की पत्नियाँ भी थीं, उसकी सेना के हाथों में आ गईं। दोनों बार टीपू ने उन स्त्रियों को बड़े आदर के साथ अलग ख़ेमों में रक्खा और फिर जबकि अभी युद्ध जारी ही था, उन्हें पालकियों में बैठा कर अपनी सेना के संरक्षण में मराठों के ख़ेमों तक पहुँचवा दिया।*

इस सबके अतिरिक्त टीपू अपने बाप के समान वीर, योद्धा और उत्कृष्ट सेनापति था। १७ वर्ष की अल्प आयु से ही उसने संग्राम विजय करने शुरू कर दिए थे। पिता ही के समान वह स्वाधीनता का सच्चा प्रेमी और इस देश के अन्दर विदेशियों की साम्राज्य-पिपासा का पक्का दुश्मन था। अपने समय का वही एकमात्र भारतीय नरेश था, जिसके पास विदेशियों के मुक़ाबले के लिए सुसन्नद्ध और प्रबल जलसेना थी, क्योंकि मराठों की जल-सेना उस समय तक काफ़ी घट चुकी थी। वास्तव में हैदर और टीपू से बढ़ कर शत्रु अङ्गरेज़ों को भारत में

---

* *Tipu Sultan,* By Colonal Mills pp. 75, 81, 95, 96, 201 and 202.

कोई नहीं मिला। टीपू के विरुद्ध अङ्गरेज़ इतिहास-लेखकों के विष उगलने का यही एकमात्र कारण है।

किन्तु टीपू अपने समस्त सामन्तों तथा अनुयायियों को उस तरह की सत्यता और निष्ठा के पाश में बाँध कर न रख सका, जिस तरह के पाश में हैदरअली ने उन्हें बाँध रक्खा था। इसके कई कारण हो सकते हैं। एक इतिहास-लेखक लिखता है कि हैदर अपने जिन विद्रोही मुलाज़िमों को एक बार बरख़ास्त कर देता था, उन्हें दोबारा अपने यहाँ न रखता था। किन्तु टीपू का व्यवहार इसके विपरीत था, वह इस तरह के आदमियों को एक बार सज़ा देकर उन्हें फिर बहाल कर देता था। इस इतिहास-लेखक का अनुमान है कि यह एक त्रुटि ही टीपू के नाश का कारण हुई।

असलीयत यह है कि विश्वासघात का जो पौधा हैदरअली के रहते हुए मैसूर की भूमि में न फल सका, वह धीरे-धीरे टीपू के शत्रुओं के लगातार परिश्रम और सिञ्चन द्वारा टीपू के समय में आकर फल देने लगा। सम्भव है कि देशघातकता के उस महान् पाप से भारतीय आत्मा को मुक्त करने के लिए—जिसने कि वास्तव में वीर टीपू की शक्ति को चारों ओर से घेर कर चकनाचूर कर दिया—भारत का एक बार विदेशी शासन के कठिन अनुभवों में से निकलना आवश्यक था। जो कुछ हो, टीपू वीर, योग्य और अपनी प्रजा का सच्चा हितैषी था। उसके शत्रु भी इस बात से इनकार नहीं कर सकते कि उसने अपने रुधिर के अन्तिम विन्दु से अपने देश की स्वाधीनता की रक्षा का प्रयत्न किया। उसने कभी किसी के साथ दग़ा नहीं की। उसकी मृत्यु एक आदर्श वीर की मृत्यु थी। भारत की स्वाधीनता के रक्षकों में उसका पद अत्यन्त ऊँचा था। और संसार के स्वतन्त्रता के 'शहीदों' में उसका नाम सदा के लिए स्मरणीय रहेगा।

हमें दुख और लज्जा के साथ यह स्वीकार करना पड़ता है कि औरङ्गज़ेब की मृत्यु के समय से सन् ५७ के विप्लव तक अङ्गरेज़ों और भारत के सम्बन्ध के डेड़ सौ वर्ष के राजनैतिक इतिहास में हमें हैदर और टीपू दो, और केवल दो, व्यक्ति ही ऐसे नज़र आते हैं, जिन्होंने कभी किसी अवसर पर भी अपने किसी देशवासी के विरुद्ध विदेशियों के साथ 'समझौता' करना अङ्गीकार नहीं किया। विशेषकर टीपू यदि चाहता तो इस उपाय द्वारा आसानी से अपनी सत्ता के कुछ न कुछ अवशेष और सौ दो सौ वर्ष के लिए छोड़ सकता था। वह मर मिटा, किन्तु मरते-मरते उसने अपने दामन पर यह दाग़ लगने नहीं दिया। ध्यानपूर्वक खोज करने पर भी इन डेढ़ सौ वर्ष के अन्दर हमें कोई और हिन्दू अथवा मुसलमान नरेश अथवा नीतिज्ञ ऐसा नहीं मिलता, जिसका चरित्र इस विषय में सर्वथा निष्कलङ्क रहा हो।

टीपू की मृत्यु के बाद उसकी समाधि के ऊपर एक कवि ने मृत्यु की तारीख़ लिखते हुए कहा है—

चुँ आँ मर्द मैदाँ निहाँ शुद ज़ दुनिया,
यके गुफ़्त तारीख़ शमशीर गुम शुद।

अर्थात्—"जिस समय वह वीर संसार की दृष्टि से अतीत हुआ, किसी ने तारीख़ के लिए ये शब्द कहे—'शमशीर गुम शुद',*—अर्थात् तलवार गुम हो गई।"

मृत्यु के २४ वर्ष बाद उसकी याद में उसके किसी देशवासी ने एक मरसीया लिखा। इस मर्मस्पर्शी मरसीये के प्रत्येक खण्ड के अन्त में एक अनुपद आता है, जिसका अक्षरशः अनुवाद यह है—

"अल्लाह! इस तरह मर जाना अच्छा है,
"जब कि युद्ध के बादल हमारे सरों पर ख़ून बरसा रहे हों,
"बजाय इसके कि कलङ्क की ज़िन्दगी बसर की जावे,
"और सन्ताप और लज्जा के साथ उम्र काटी जावे।"

*इन फ़ारसी शब्दों से टीपू की मृत्यु का सन् निकलता है।

शब्द और अर्थ

[ले० श्री० मथुरालाल जी शर्मा, एम० ए०]

शब्द हृदयगत भावों के प्रायः यथावत् व्यञ्जक नहीं होते। 'साइन पोस्ट' के समान वे किसी स्थान की ओर सङ्केत करते हैं। स्थान पर पहुँचना-न पहुँचना पाठक या श्रोता का काम है। शब्द-सङ्केत पाने के बाद श्रोता को चाहिए कि वक्ता के भावान्तस्तल में प्रवेश करे। इसी का नाम सहृदयता है। वक्ता के हृदय-स्वर को पहचाने बिना उसका भाव-गायन समझ में नहीं आ सकता। शब्द शरीर है और भाव आत्मा। शब्दों के आत्मा से यदि परिचय नहीं हुआ तो श्रोता ठगा गया और वक्ता या तो निराश या दुखी हो गया या अपने शब्द-जाल के प्रयोग में सफल। यदि वक्ता का उद्देश्य है कि श्रोता शब्दों के अगोचर अभिप्राय को समझे और वह अभिप्राय श्रोता की हृदय-हीनता या भावों की असहयोगिता के कारण न समझा गया तो वक्ता को निराशा तथा दुःख होगा। और यदि उद्दिष्ट अभिप्राय से विपरीत आशय समझा गया तो वक्ता के साथ घोर अन्याय हो गया। कभी ऐसा भी होता है कि वक्ता के मन में कुछ और होता है और कहता है कुछ और। यह शब्द-जाल में फँसाने का प्रयास है, जिसका उपयोग राजनैतिक क्षेत्र में या धूर्त्तों के व्यवहार में हुआ करता है। काव्य-साहित्य में यह शब्द-प्रयोग नहीं होता। 'मनसि अन्यत् कर्मणि अन्यत्'—विष का संक्रमण प्रेम-पीयूष तथा साहित्य-सुधा में नहीं हो सकता। इन क्षेत्रों का नियम है 'मनसि एकं वचसि एकं'। इस मन तथा वचन की एकता को अनुभव करने के लिए श्रोता में सहृदयता तथा सहानुभूति होनी चाहिए। तथा इसको पूर्णतया व्यक्त करने के लिए वक्ता में अनुभाव या भाव-सूचक मुखाकृति तथा भावाभिनय होना आवश्यक है। यदि वक्ता में अनुरूप अभिनय तथा श्रोता में सरस सहृदयता नहीं है तो केवल शब्दों द्वारा मन तथा वचन का सुन्दर समन्वय व्यक्त नहीं हो सकता। यही कारण है कि लोग श्रव्य-काव्य की अपेक्षा दृश्य-काव्य में अधिक रुचि रखते हैं। दृश्य-काव्य में शब्दों के अतिरिक्त अनुभावक अभिनय होता है, जिससे श्रोता आसानी से शब्दों के भाव को हृदयङ्गम कर सकते हैं। परन्तु श्रव्य-काव्य में यह बात नहीं है। कवि पाठक के पास नहीं होता, केवल उसके शब्द होते हैं। शब्दों के अन्तर्गत भावों का अनुभव करना पाठक का कार्य रह जाता है।

भावों के सुन्दर सदन तक पहुँचने के लिए शब्दावलि केवल सोपान-पंक्ति है। यदि श्रोता या पाठक सोपान पर खड़ा हुआ ही सदन की प्रशंसा या निन्दा करने लगे तो यह उसकी भारी भूल होगी। शब्दान्तर्गत आशय को हृदयङ्गम करना श्रोता का कर्त्तव्य है और पाठक का नैपुण्य। कवि का भी कर्त्तव्य है कि वह यथाशक्य भावानुरूप शब्दों का प्रयोग करे, परन्तु फिर भी भाव कभी शब्द या इन्द्रियों के विषय नहीं बन सकते। भावों का स्थान है हृदय, न कि वाणी। जिसको हृदय अनुभव करता है उसको वाणी पूर्णतया तद्रूप व्यक्त नहीं कर सकती; क्योंकि "गिरा अहृदय हृदय बिनु वाणी।" अतः शब्दान्तर्हित अभिप्राय को समझने का प्रयास करना अधिकतर श्रोता या पाठक का ही कर्त्तव्य रह जाता है। कवि-हृदय में नैसर्गिक चिन्ता होती है कि यथासम्भव भावों को सुन्दर तथा स्पष्ट-रूप से यथावत् व्यक्त किया जावे। कवि कभी अलङ्कार का आश्रय लेता है और कभी वृत्ति की सहायता। कभी वह उक्ति-वैचित्र्य ग्रहण करता है और कभी सरल शैली। तिस पर भी यदि कोई कवि इस बात की आशा करे कि प्रत्येक पाठक उसके हृदय को समझ जायँगे तो उसको निराशा ही होगी। क्योंकि भाषा पर चाहे जितना अधिकार हो, उक्ति में चाहे जितना सौन्दर्य हो और शैली चाहे जितनी मधुर हो, फिर भी भाव तो भाव ही रहेगा। शब्दों का जामा पहनने से वह शब्द नहीं बन सकता। विदेशी पोशाक उसकी क़ौमियत को नहीं बदल सकती।

कुछ काव्य-मीमांसकों का मत है कि काव्य में भाषा,

वृत्ति या अलङ्कार गौण हैं तथा रस प्रधान। इस मत को स्वीकार करके संस्कृत तथा हिन्दी के अनेक कवियों ने रचना करते समय यह लक्ष्य रक्खा कि रस की प्रचुर पुष्टि की जावे। उन्होंने इसमें प्रशंसनीय सफलता भी प्राप्त की, परन्तु रस को अनुभव करने के लिए भी तो पाठक या श्रोता में हृदय चाहिए। कवि चाहे रस का विकास भली-भाँति कर दे, परन्तु यदि पाठक का हृदय शुष्क और ऊसर है तो रस-वर्षा उसके लिए निष्फल है। ऐसे हृदय वाले मनुष्य को काव्य सुनाने से जो कवि को निराशाजन्य दुःख होता है उसका विचार करके श्री० भर्तृहरि व्यथित होगए थे और कहा था—'अरसिकेषु कवित्व निवेदनम् शिरसि मा लिख मा लिख मा लिख।' जान पड़ता है कि बिहारी को भी ऐसे लोगों से पाला पड़ा था। तभी वह करुण स्वर से चिल्ला उठा था—'रे गन्धी मतिमन्द तू इतर सुँघावत काहि।' प्रत्येक कवि के हृदय में यह प्राकृतिक अभिलाषा होती है कि उसके अभिप्राय को पाठक यथावत् समझें। परन्तु कवि-द्वारा भावों की अभिव्यक्ति तथा पाठक द्वारा उनकी अनुभूति के लिए कवि तथा पाठक के हृदयों में सहयोगिता होनी आवश्यक है। भावुकत्व तथा भोजकत्व दोनों दुर्लभ गुणों का समन्वय हो तभी कवि को सन्तोष होता है और तभी कवि का अभिप्राय सिद्ध।

हम पहले ही बतला चुके हैं कि शब्द भावों के सङ्केत मात्र हैं। वक्ता का आशय उनमें तिरोहित रहता है। उसको जानने के लिए शब्दों के आत्मा में प्रवेश करना चाहिए। शब्दावली को नहीं, बल्कि शब्दावली के हृदय को पढ़ना चाहिए। भावों की अभिव्यक्ति में शब्द केवल सहायक हैं। कभी-कभी तो भावों को समझने के लिए उन पर ध्यान देने की भी आवश्यकता नहीं रहती। सहृदय श्रोता वक्ता के नेत्र तथा अन्य अङ्गाभिनय से ही उसके हृदय की बात जान लेता है। वास्तव में मूक भाषा ही सर्वाधिक मार्मिक होती है। एक जर्मन काव्य-मीमांसक के मतानुकूल यदि शब्द चाँदी हैं तो मौन सोना। वास्तव में शान्त और निस्तब्ध नीरवता महान् काव्य है। सम्पूर्ण सुन्दर भाव इसमें अन्तर्हित हैं। भावातिशयता निःशब्द है। अतिरेकावस्था में न मन्द मुसकान है न आह्लाद-हास्य और न आर्त्त-अश्रु। फिर भी सहृदय दर्शक उस रस में ग़र्क़ हो जाता है। कैलाश-पति के क्रोधानल से कामदेव जब भस्म हो गया तो रति के शोकातिरेक का कालिदास किस ख़ूबी से वर्णन करते हैं! देखिए—

> तीव्राभिषङ्गप्रभवेण वृत्तिं,
> मोहने संस्तम्भयतेन्द्रियाणाम्।
> अज्ञातभर्त्तृव्यसना मूहूर्त्तं,
> कृतोपकारेव रतिर्बभूव॥

अत्यन्त तीव्र शोकावेग ने रति की इन्द्रियों के व्यापार को बन्द कर दिया। वह बेसुध हो गई। उसको पति की मृत्यु का भी पता न रहा। क्षण-भर के लिए मानों उसका बड़ा उपकार हो गया। वियोगानलदग्ध-हृदया एक महिला की ऐसी दशा का वर्णन कवि स्कॉट ने यों किया है कि She must weep or she should die इसका शोक इतना गहरा है कि यदि रोने से इसका हृदय हलका न हुआ तो यह अभी मर जावेगी। कविवर शेक्सपियर भी कहता है कि शोकातिरेक में आँसू नहीं निकल पाते—Intense sorrows too deep for tears. महाकवि भारवि इसकी पूर्ति करते हुए कहता है कि अतिरेक की अभिव्यक्ति नहीं होती—'नार्हत्याभिव्यक्तिमतिरेकः।'

वास्तव में भावातिरेक तथा शब्द-साफल्य में एक अखण्ड अनुपात है। ज्यों-ज्यों भाव अधिकाधिक प्रौढ़ होंगे त्यों-त्यों शब्द उनको व्यक्त करने में असफल होंगे। और ज्यों-ज्यों भाव साधारण होते जायँगे त्यों-त्यों शब्दों का सामर्थ्य बढ़ता जावेगा। यही कारण है कि अत्यन्ता-तिरेकावस्था में भाव मौन द्वारा प्रकट होते हैं और शब्द नितान्त असफल या असमर्थ ही नहीं, बल्कि अना-वश्यक हो जाते हैं। फिर जब अतिरेक कम होने लगता है तो हृदय का उबाल अश्रु, हास्य, मुसकान या लय में व्यक्त होता है। जब पति-परायणा रति को कुछ होश आया तो जान पड़ता था कि विधाता ने उसके वैधव्य-दुख को पुनर्जाग्रत कर दिया। "वसुधा लिङ्गन धूसर-स्तनी" तथा "विकीर्ण मूर्धजा"—रति तब रुदन करने लगी। मानव-हृदय के निपुण निरीक्षक कालिदास तुम धन्य हो, धन्य हो!! शोकातिरेक का ऐसा सुन्दर चित्र यदि तुम नहीं खींचते तो और कौन खींचता? चौदह सौ वर्ष बाद तुम्हारे भावों की प्रतिध्वनि उस्ताद दाग़ के दिल में हुई थी तब उन्होंने फ़रमाया था—'दर्द का हद से गुज़रना है दवा हो जाना।' अस्तु, रोदन, हास्य या मुसकान में शब्दाकृति विभावित नहीं होती। इस

अवस्था में शब्द ध्वन्यात्मक रहते हैं, क्योंकि अतिरेक में पर्याप्त न्यूनता नहीं होती। पाठकों को अनुभव होगा कि रोदन या हास्य अवस्था के भाव मौनावस्था या मूर्च्छावस्था के भावों की भाँति शब्दों की सहायता के बिना भी किस प्रकार समक्ष में आ जाते हैं। जब अतिरेकावस्था निकल जाती है, भाव ठिकाने लग जाते हैं और हृदय-क्षोभ शान्त हो जाता है, तब शब्द सफल होने लगते हैं। अन्त में जब भाव विलीन होकर स्मृतिशेष रह जाते हैं, तब हम कहते हैं "उसको शोक था, उसको हर्ष था, आदि" यहाँ शब्दों का प्रभुत्व है और भावों का अभाव।

अब पाठक समझ गए होंगे कि भावों की अभिव्यक्ति में शब्द या वाणी का क्या स्थान है। कवि कालिदास को वाक् और अर्थ के समन्वय से बढ़ कर और कोई समन्वय नहीं रुचा। वह कहता है कि 'वागर्थाविव संपृक्तौ × × ×।' भारत-कोकिला सरोजिनी भी शब्द और अर्थ के निरन्तर सम्बन्ध पर मुग्ध हैं। वह अनुभव करती हैं कि शब्द और अर्थ यदि अलग हो सकते हों तो प्रेमी के हृदय भी अलग हो सकते हैं, सुनिए—

If I could teach
My meaning to be severed from my speech
Perchance for one vague how I might devise some secret miracle
To be delivered from your poignant spell.

कवि और कोकिला दोनों का ही गान सरस है और सुन्दर है। दोनों के स्वर में सत्य का अंश है। वास्तव में शब्द और अर्थ का सम्बन्ध अखण्ड है और अद्वितीय है। परन्तु फिर भी हम अनुभव करते हैं कि इस प्रत्यक्ष सम्बन्ध के अन्तर्गत घोर दुखदाई पार्थक्य भी घुसा हुआ है। यह बात विचित्र सी सुनाई देती है, पर है यह सत्य और अनुभव-सिद्ध। अर्थ शब्द में संपृक्त भी है और पृथक् थी। उपनिषद्कार ने जो बात ब्रह्म के लिए कही है वह अर्थ या भाव के लिए भी लागू हो सकती है। ब्रह्म की भाँति भाव दूर भी है और निकट भी। तद्दूरे तद्वन्तिके।

शब्दसागर में डुबकी लगाने पर भाव-मुक्ताओं की प्राप्ति होती है। घास की भाँति वे शब्द जल पर नहीं तैरा करते। वे गहन तल में पड़े रहते हैं। उनकी प्राप्ति के लिए हृदय चाहिए। पुष्पों में सुगन्ध, अङ्गों में लावण्य और मुस्कान में विलास की भाँति शब्दों में भाव घुसा रहता है। सरस हृदय उनको शीघ्र अनुभव कर लेता है। उसके लिए वे प्रति शब्द में और प्रति ध्वनि में छलकते रहते हैं। शब्दों की अभिधा, व्यञ्जना और लक्षणा का उसे तत्काल अनुभव हो जाता है। परन्तु यदि हृदय नीरस है और भोजकत्वगुण से शून्य है तो उसके लिए कवि के शब्द केवल शब्द ही हैं। सरस हृदय विहङ्गों के कलरव में और नदियों के कलकल निनाद में भी अद्भुत गायन का अनुभव करता है। परन्तु नीरस हृदय के लिए वे केवल सर पचाने वाले शोर हैं। एक फ़्रेञ्च कवि कहता है कि—"गाने से परे जो गायन है उसको सुनना सीखो।" यही बात प्रत्येक प्रकार की कविता तथा प्रेमियों के पारस्परिक भाषण के सम्बन्ध में कही जा सकती है। "शब्दों से परे जो शब्द है उसको सुनिए" इस गोचर तथा अगोचर के अलौकिक समन्वय के अनुभव का नाम भोजकत्व है। मम्मट के शब्दों में वह व्यक्ति धन्य है, जिसका हृदय इस वाञ्छनीय गुण से अलङ्कृत है।

वास्तव में सहृदयता की जितनी प्रशंसा की जाय उतनी ही कम है। एक प्रकार से सहृदय पाठक का स्थान भी उतना ही ऊँचा है, जितना कवि का। कवि भावों का स्रष्टा है और सहृदय पाठक उनका भोक्ता। कवि अपने लिए रचना नहीं करता, उसका ध्येय होता है दूसरों को आनन्द देना। उसको इसी में आनन्द है कि उसकी रचना से दूसरे आनन्दित होते हैं। जब कविवर वर्ड्सवर्थ को प्रोफ़ेसर रिचार्डसन के पत्र से यह विदित हुआ कि उनकी कविता को भारतीय विद्यार्थी बड़े चाव से पढ़ते हैं, तो कविवर गद्गद् हो गए। कवि और प्रेमी यही चाहते हैं कि उनके भावों को ज्यों का त्यों समझा जाय। कोई भी पुरस्कार उनको इतना सन्तुष्ट नहीं कर सकता, जितना उनके भावों की क़द्रदानी। कवि क्या, कोई भी लेखक या वक्ता अपने शब्दों का अन्तिम ध्येय यही समझता है कि उसके भाव पाठक या श्रोताओं के हृदयगत हों। परन्तु पार्थिव विषयों पर लिखने या बोलने वालों को इस उद्देश्य-प्राप्ति में कठिनता नहीं होती। उनके विषयों का सम्बन्ध हृदय से नहीं, किन्तु दिमाग़ से होता है—जो तर्क द्वारा उक्ति की छानबीन करके सार को ग्रहण कर लेता है। काव्यक्षेत्र में तर्क या विज्ञान की गुज़र नहीं होती। प्रेमी के हृदय का वास्तविक आशय जानने के लिए तथा कवि का अभिप्राय समझने के लिए सरसता तथा

सहृदयता चाहिए। यदि पाठक में ये गुण हैं तो कवि का कार्य सफल है, अन्यथा उसका गायन, कथन या काव्य अरण्य रोदन है!

कवि, प्रेमी और पागल तीनों ही कल्पना के जीव हैं—यह महाकवि शेक्सपियर की उक्ति कितनी सुन्दर, गहन तथा मार्मिक है! कल्पनारूढ़ होकर कवि संसार से स्वर्ग में और कभी स्वर्ग से संसार में पहुँचा करता है। यही बात प्रेमी की है। अतः उनके भावों को समझने के लिए पाठक को भी कल्पना-शक्ति का उपयोग करना चाहिए। तर्क से या बहस से काम लेना कवि के साथ घोर अन्याय करना है। विज्ञान की प्रयोगशाला में या तर्क के युद्ध-क्षेत्र में काव्य या प्रेमालाप की परीक्षा नहीं हो सकती। सुन्दर सुमन के सौरभ का अनुभव करना हो तो उसको वनस्पतिशास्त्र की प्रयोगशाला में ले जाकर उसका विश्लेषण मत कीजिए। फूल के आकार, भार, नाप या तोल का ख़्याल छोड़ कर उसकी सुगन्ध का ध्यान कीजिए। इसी प्रकार शब्दों की निरुक्ति, रचना या पद-व्याख्या की ओर ध्यान देने से कवि के भावों का पता नहीं चलेगा। बहस में भगवान्, कुत्तों की लड़ाई में गान और शब्दों की छानबीन में भाव नहीं मिल सकते। कवि के भावों को समझने के लिए आवश्यक है कि पाठक की हृत्तन्त्री का काव्य के स्पर्श से वही तार झनकार उठे जिसमें से कवि के अभिप्राय का स्वर निकल सकता हो। जब कवि और पाठक, श्रोता और वक्ता की हृत्तन्त्रियों के तार एकस्वर हो जाते हैं, तब काव्य-गान सफल होता है। यही भावुकता और भोजकता का समन्वय है।

काव्य-रस का आस्वादन करने के लिए पाठक में केवल भोजकता गुण होना ही काफ़ी नहीं है, एक अवस्था विशेष की और आवश्यकता होती है। उस अवस्था को भावों की सहयोगिता कह सकते हैं। जो भाव कवि व्यक्त करना चाहता है, उसी भाव को प्राप्त करने के लिए पाठक को तैयार होना चाहिए। सहृदय पाठक भी सब प्रकार के भावों का चाहे जिस समय आनन्दानुभव नहीं कर सकता। यह सम्भव नहीं कि शोक-सन्तप्त पाठक कालिदास के ऋतु-संहार में प्रवेश कर सके या हर्षोल्लसित वाचक अज-विलाप की मार्मिकता को समझ सके। परन्तु यदि कवि और पाठक के भावों में एकता हुई तो पाठक फ़ौरन काव्य-रस में प्लावित हो जायगा। प्रायः सहृदय मनुष्य इस संसार को अपने हृदय-दर्पण में देखा करता है। यही कारण है कि कविवर मधुसूदन दत्त की विरहिणी व्रजाङ्गना को यमुना नदी के कलकल निनाद में करुण स्वर सुनाई पड़ा था और विश्व के प्रति पदार्थ की गति में उसे अपने शोक की प्रतिध्वनि कर्णगोचर होती थी। ज़ेबुन्निसा को कल्पना हुई थी कि उसकी दर्द-भरी आहों से आसमान का रङ्ग नीला हो गया है। पति-वियोग व्याकुला महारानी एलिज़ाबेथ को एक जर्मन शोक-काव्य पढ़ने पर ऐसा प्रतीत हुआ था मानों उसमें उन्हीं की हृदय-व्यथा का वर्णन है। इस प्रकार भावों की अनुकूल जाग्रति हो, तब काव्य के रस का आस्वादन होता है।

रसगङ्गाधर ने ठीक कहा है कि काव्य की आत्मा ध्वनि है। शब्दों की ध्वनि के अन्तर्गत जो भाव हैं वही असली काव्य है। यह मन और वाणी से अगोचर है, यह गूँगे का गुड़ है। "वे चितवन और कछुक जिहि बस भए सुजान।" बिहारी की इस अमर-पंक्ति में जो 'और' शब्द से ध्वनि निकलती है और सहृदय पाठक इसके अन्दर जिन भावों का अनुभव कर सकता है वे अनिर्वचनीय हैं। 'और' शब्द का रस और महत्व बिहारी एक पुस्तक लिख कर भी स्पष्ट नहीं कर सकते थे। यह हृदय की बात है, बहस की नहीं। कविवर वर्ड्सवर्थ के अलौकिक काव्य की समालोचना करते हुए एक विद्वान् लिखते हैं कि—Wordsworth says little but means much; his poetry is not in his words but far beyond them. वर्ड्सवर्थ के शब्द थोड़े होते हैं, किन्तु उनका आशय बहुत बड़ा होता है। कवि का काव्य उसके शब्दों में नहीं है, बल्कि उनसे बहुत परे है। यही बात वर्ड्सवर्थ के काव्य के लिए ही क्या, सब सुकवियों के काव्य के विषय में कही जा सकती है।

हम पहले ही शेक्सपियर की सुन्दर उक्ति उद्धृत कर चुके हैं कि कवि और प्रेमी एक ही श्रेणी के प्राणी हैं। विद्वान् लेखक स्टीवेन्सन ने क्या प्यारी बात कही है कि—"प्रेमी का आशय उसके उच्चरित शब्दों से प्रायः विपरीत होता है।" उसका आशय शब्दों में नहीं रहता, वह उसकी मुखाकृति में तथा आवाज़ में छलकता है। प्रेमी की क्षणिक चितवन से या मन्द मुसकान से जो

भाव एक पल भर में प्रकट हो जाते हैं, वे हज़ार पत्रों द्वारा भी व्यक्त नहीं हो सकते। जब डेल्बेक (Delbeque) ने एलिस (Ellis) से कहा—You, naughty creature कि "तुम उत्पाती जन्तु हो," तो वह उसके प्रेम में विह्वल हो गई। असंख्य सम्मान-पत्रों से भी उसे इतना हर्षातिरेक नहीं हो सकता था, जितना इन अटपटे तीन शब्दों से। वास्तव में कवि और प्रेमी के भावों को वही जानता है, जिसके हृदय में कसक हो।

अनुरोध

[रचयिता—पण्डित रमाशङ्कर जी मिश्र 'श्रीपति']

(१)

अरुणिमा में रवि का सानन्द,
उनीदे नयनों के पट खोल।
खिले जो मृदुल मनोरम मञ्जु,
किसे भाते न कमल वे लोल॥

(२)

प्रस्फुटित नवल कुसुम उद्यान,
ललित लतिकाएँ सुषमा-पुञ्ज।
प्रकृति-सर्वस्व सुगन्धित शुभ्र,
न भाते किसे कहो वे कुञ्ज॥

(३)

सरस भीने सौरभ से पूर्ण,
पड़ी अब तक न प्रणय के जाल।
सुखप्रद है न किसे वह मीत,
कली जो बनी न बिंध कर माल॥

(४)

किसे लगते न सुखद कमनीय,
मनोहर दृश्य अनोखे रङ्ग।
किन्तु हे भावुक! सरस रसज्ञ,
अनोखे अहो तुम्हीं क्या भृङ्ग॥

(५)

मधुप्रिय, निष्ठुर, कुटिल, मदान्ध,
लूटते फिरते हो मकरन्द।
शान्त कर निज मन की तापाग्नि,
गीत गाते फिरते स्वच्छन्द॥

(६)

निछावर करते थे प्रिय प्रान,
त्याग कर जिस पर निज सुख-साज।
मधुप! जिसका लूटा सर्वस्व,
उसी सुन्दर कलिका की आज॥

(७)

न लोगे सुधि क्या? अब रसिकेश!
करोगे प्रियतम! क्या अब मान!
धूलि-धूसरित पड़ी वह हाय!
यही है क्या तेरा सम्मान!!

दोषी कौन है ?

[ले० श्री० केदारनाथ जी अग्रवाल, बी० ए०, एल्-एल्० बी०]

प्रतिमा-पूजन की प्रथा भारतवर्ष में परम्परा से चली आती है। मलमास में कोई मिट्टी के शिव की पार्थी को शिवस्तोत्र सुनाता है तो कोई गोदावरी के तट के नदियों द्वारा विच्छेदित पर्वतों के छोटे-छोटे सुन्दर टुकड़ों को शालिग्राम कहता है। मन्दिरों और शिवालयों का भारतवर्ष में, इस समय, मुसलमान सम्राट् के निर्दयी आघात के पश्चात् भी, इतनी संख्या में वर्त्तमान रहना यही सूचित करता है कि प्रतिमा-पूजन की अभिलाषा हिन्दुओं के हृदय में आर्यसमाजियों और उनके अनुयायियों के जी-तोड़ परिश्रम पर भी अभी वैसी ही लहरा रही है। मुसलमानों के हृदय में भी उस पूजा-स्थान की इतनी इज़्ज़त है कि कलकत्ते के 'नाख़ुदा' के सामने बाजा बजने के लिए चौबीसों घण्टे दफ़ा १४४ का नोटिस जारी रहेगा। प्रति दिवस हिन्दू-पेपर्स चिल्लाते सुनाई पड़ते हैं। इसी प्रतिमा-पूजन के ओट में रोज़ाना गोहार लगाते हैं कि अमुक स्थान में मुसलमानों की ज़्यादती से बलवा हो गया। मुसलमान-अख़बार प्रति दिन इस बात का राग अलापते हैं कि अमुक मस्जिद के सामने नमाज़ के समय बाजा बजा, और इस तरह से हिन्दुओं ने मुसलमानों की प्रार्थना में विघ्न डाला। कोई मनुष्य इस युग में स्वतन्त्र नहीं रह सकता। प्रति घड़ी यही डर लगा रहता है कि कहीं आपस में प्रतिमा की अग्नि न भभक उठे। महात्मा गाँधी, हाथ पर हाथ धरे बैठे, परमात्मा से प्रार्थना कर रहे हैं कि ये धार्मिक झगड़े किसी प्रकार बन्द होते तो हम अपनी बाँसुरी पर अपनी विद्या की निपुणता और असहयोग का गीत गाकर दिखाते। मालवीय जी अलग ही तीन चावलों की खिचड़ी पका रहे हैं। नेता लोग प्रति दिन कान्फ़्रेन्सेज़ और मीटिंग्स करते हैं कि कोई ऐसा समझौता निकल आता जिससे हमारे आपस के द्रोह का अन्त हो जाता। लेकिन यह सब व्यर्थ के बकवास हैं। उनकी आशा कभी फल-वती नहीं हो सकती।

'जॉनबुल' कहता है, मैंने एक अद्भुत 'मैजिक रॉड' इस धार्मिक युद्ध के अन्त करने का निकाला है। कहता है, यदि दोनों की आराध्यदेवी एक हो जायँ तो इन दोनों में झगड़े की तनिक भी आशङ्का न रहे। यदि एक ऐसी प्रतिमा ढूँढ़ निकाली जाय, जिसकी उपासना में लवलीन रहना दोनों ही अपना धर्म समझें, फिर प्रति दिन के कलह का बोरिया-बँधना इस पृथ्वी-मण्डल से उठ जाय। 'जॉनबुल' की राय में दालमण्डी की अप्सराएँ ही ऐसी हैं, जो इस सिंहासन को सुशोभित करके इस महान् कार्य का सञ्चालन भली प्रकार से कर सकती हैं। इन्हीं की नियुक्ति इस पद के योग्य है—यही एक ऐसी देवी हैं जो दोनों को एक ही खूँटे में बाँध सकती हैं। बाल्यकाल में हिन्दू, हिन्दू और मुस्लिम का सङ्गठन, युवावस्था की शोभा, जीर्णावस्था में मुस्लिम, ऐसे गुण और किसमें मिलेंगे। ये गुण ऐसे हैं जिनसे दोनों को इनका पुजारी होने में मोक्ष-लाभ की आशा हो सकती है। इनसे दोनों दिल खोल कर मिलने की उत्कट इच्छा रखते हैं। दोनों इनके पैर की धूलि को बाबा जी की भभूति समझते हैं। विशेष गुण इनमें यह है कि ये प्रायः सभी परम पूजनीय ब्राह्मण के और शूर-वीर क्षत्रियों की वंश-उजागिरा रहती हैं। बाल्यकाल में इनकी शिक्षा हमारे गुरुदेव ब्राह्मणदेव के यहाँ होती है। युवावस्था में माता-पिता या सास-ससुर के अनुचित और कठोर व्यवहार या पड़ोसियों की चञ्चलता उन्हें घर से निकाल कर 'सारिन्दों' की सुपुर्दगी में भेजती है। तो भी हम हिन्दू हैं, ब्रह्म-कुल उत्पन्ना इन श्रीमतियों का चरण हमारे लिए भृगु मुनि के चरण से कम आनन्द-दायक नहीं है। मुसलमान बिना रोक-टोक अपने खाने-पीने तथा और सब प्रकार के धार्मिक व्यवहारों में उनको अपने साथ पाते हैं। यह जाति ऐसी है जो हिन्दू होते हुए भी मुसलमानों को अपने हृदय में स्थान देती है, तो

क्यों न मुसलमानों की भी यह परम पूजनीया हो। इनके उपासक हिन्दू और मुस्लिम दोनों ही हैं। इनकी प्रतिमा-पूजन में दोनों पन्थों को तनिक भी सङ्कोच नहीं हो सकता। इतनी बड़ी देवी, जिसकी उपासना से इस पृथ्वी-मण्डल के सभी धार्मिक झगड़ों की अन्त्येष्टि हो जाय 'जॉनबुल' की राय में इनके अलावा और कोई भी होने योग्य नहीं है।

हिन्दू-शास्त्रज्ञों के मतानुसार प्रति कन्या का विवाह उनके तेरहवें वर्ष में पैर रखने के पूर्व हो जाना ब्रह्मा की लकीर है अथवा लक्ष्मण की रेखा है। ऐसा नहीं होता तो माता-पिता बहुत बड़े दोष के भागी होते हैं। यदि हम अपने तईं शास्त्र को पालन करने के लिए यहीं तक बाध्य समझते तो भी ग़नीमत थी। लेकिन हम उनसे भी सैकड़ों डिग्री आगे बढ़ कर अपनी कन्याओं का तीन और चार ही वर्ष की अवस्था में विवाह कर दिया करते हैं।

कुछ यहीं तक नहीं, बूढ़े अमीर अपने बुढ़ापे में दूसरे जन्म के लिए साठ-साठ वर्ष की अवस्था में दस और बारह वर्ष की कन्याओं के साथ गाँठ जोड़ते फिरते हैं। "बूढ़ा वर प्रहसन" बूढ़ों की खोपड़ी में घुसता ही नहीं। कमल के पत्र पर जल की वर्षा है। बेचारे दरिद्र अपनी सीधी-सादी कन्याओं को दो-दो और चार-चार सौ की चमचमाहट की आड़ में इन भट्टियों में झोंक देते हैं। हम उन्हें प्रति दिन धनोपार्जन के लिए अयोग्य से अयोग्य और बूढ़े से बूढ़े भतारों के सुपुर्द करते रहते हैं। हमें तो अपनी इन्द्रियों को तृप्त करना है। हमें यह सोचने का कहाँ समय है कि हमारे इस गँठबन्धन का प्रभाव लखनऊ के गोल दर्वाज़े पर क्या पड़ता है। इस अनुचित वयस के सम्बन्ध का फल आगे चल कर वही होता है। बारह-बारह वर्ष के बच्चे, बिना अपनी बामाङ्गियों का दर्शन किए ही, दोनों घरानों को रोते-बिलखते छोड़ कर इस पृथ्वी से प्रस्थान कर जाते हैं! बूढ़े बाबा विवाह होने के चार ही पाँच वर्ष के भीतर इन अबलाओं को अपने कामी इष्ट-मित्रों और पड़ोसियों तथा दुराचारी अनुचरों की सोसाइटी का लाभ उठाने के लिए, छोड़ कर टें हो जाते हैं। ये विधवाएँ अकेले पड़ कर माता-पिता और सास-श्वसुर की आँख की किरकिरी हो जाती हैं। उनके भाई-बन्धु उन्हीं की आँखों के सामने अपनी स्त्रियों के सहवास का आनन्द उठाते हैं। उनके घर की और स्त्रियाँ विविध प्रकार के अच्छे से अच्छे वस्त्र पहन सकती हैं, उत्तम से उत्तम अप-टु-डेट नमूने के गहने उनके लिए बनते हैं, बढ़िया से बढ़िया खाना पकता है; लेकिन ये विधवाएँ पति-वियोग में इन सबको छू तक नहीं सकतीं। इनके लिए तो वही जौ की रोटी और दाल!

किसकी प्रकृति ऐसी होगी जो अपने ही घर में दूसरों को इस प्रकार से आनन्द उठाते देखे और स्वयम् उसको सर्प का बिल समझे। इस प्रकार की अबलाओं का होना तो इस युग में सम्भव नहीं, लेकिन तो भी हमें उन्हें पतिव्रता गान्धारी से कम नहीं बनाना है। हम उनका विवाह अयोग्य रूप से बच्चों और बूढ़ों के साथ कर दें, विधवा होने पर वैधव्य-पालन की आज्ञा दें, उन्हीं की आँखों के सामने अपनी इन्द्रियों को तृप्त करने की भिन्न-भिन्न चालें चलें, और तो भी इस बात की आशा करें कि ये मिल कर इलाहाबादी मुट्ठीगञ्ज की नींव मज़बूत न करेंगी—ऐसी आशा पर बलिहारी है!

शिक्षा हम उन्हें इस सम्बन्ध की देते नहीं, जिससे उनके आचरण पर हमारी शिक्षा का थोड़ा-बहुत भी प्रभाव पड़ सके। प्रथम तो हमारे कोड में स्त्री-शिक्षा पाप का मूल है और यदि किसी अभागे ने शिक्षा देने की बात सोची भी, तो अशिक्षित होने के कारण उचित और अनुचित शिक्षा में भेद नहीं जान पाता। शिक्षित भी हुआ, तो दरिद्रता उनकी कन्याओं को स्कूल ही की परिपाटी के अनुसार उन्हें शिक्षा दिलाने को बाध्य करती है। और वहाँ की गति (देहाती निसवाँ स्कूल) जो होती है वह सब पर विदित ही है। 'सारङ्गा सदावृक्ष' 'क़िस्सा तोता-मैना' 'सङ्गीत पूरनमल' वहाँ के पाठ्य हैं। शिक्षा हम उन्हें ऐसी देते हैं और आशा करते हैं कि तुलना में वे सती पार्वती से कम न हों। वैधव्य-पालन में तनिक भी पैर न फिसले। ऐसी शिक्षा के साथ यदि उनके आचरण में विशुद्धता आने पर उन्हीं को दोषी ठहराते हैं, तो हमसे बढ़ कर अन्यायी इस पृथ्वी पर कोई नहीं है।

हमारे अन्याय की सीमा का अन्त यहीं नहीं हो जाता। बहुत से प्रिय बन्धु बहुत सी अबलाओं के उपासक होते हैं। उन्हें एक-नारी-व्रत से सन्तुष्टता नहीं

होती । प्रति दिन ये उदारचित्त प्रेमी जीव नई-नई नायिकाओं पर कृपा-दृष्टि करने का कष्ट उठाते रहते हैं। प्रति दिवस वे अपने उदार भाव का, उन बेचारी अबलाओं के चरित्र में परिवर्त्तन करने हेतु, नया आविष्कार सोचते रहते हैं। एक का उपासक होना उनकी कमज़ोरी का कारण उन्हें दिखलाई पड़ता है। इस प्रकार की उपासना उनकी स्त्री के पवित्र प्रेम में बाधा डालती है। सेठ जी रात-रात भर दूसरे की स्त्रियों के दामन के नीचे बैठ-बैठ कर गप्प लड़ाते हैं तो क्या यह सम्भव है कि सेठानी जी अपनी गोद में किसी और को शरण देने का प्रयत्न न करती हों? हम तो जहाँ चाहें, विचरें, जिस घर की गृहिणी को सुन्दर देखें उसी पर लट्टू होकर उसके सात पुश्त की पवित्र ख्याति को लीप-पोत कर बराबर करने में तत्पर रहें, और हमारी स्त्रियाँ इन सब बातों को समझती हुई भी, चुपचाप घर में बैठ कर राम-नाम जपा करें। इस प्रकार की आशा करना अपनी मूर्खता का ढिंढोरा पीटना है। क्या हमारे इस व्यवहार का प्रभाव हमारे यहाँ की स्त्रियों पर नहीं पड़ता? क्या हम इस बात को नहीं समझते कि हमारी इस उपासना से इन अप्सराओं की संख्या प्रति दिन बढ़ती जायगी?

शहाबुद्दीन गोरी जब भारतवर्ष पर विजयी हुआ था तो उसने क़ुतुबुद्दीन को ग़ुलाम बनाया था। उसकी यह प्रथा भारतवर्ष में दिन प्रति दिन उन्नति करती जा रही है। बहुत से पुरुषों ने अपनी इन्द्रियों के सुख का साधन इन्हीं ग़ुलामों को बनाया है। अपनी चिर-सङ्गिनी का त्याग उन्हें सब प्रकार से सुखमय है। उन बैरागियों ने अपनी स्त्रियों को वैराग्य का अधिकार दे दिया है। बेचारी अशिक्षिता होकर प्रायः रागिणी हो जाती हैं और 'राग' बीबी ही बन कर अपना जन्म सफल करती हैं। उन नीचों को उन्हीं ग़ुलामों की सोसाइटी में आनन्द आता है। उन्हीं की आज्ञाओं का पालन करने से हमारे श्रीमान् को छुट्टी नहीं मिलती, दिन-रात उन्हीं ग़ुलामों को प्रसन्न करने के नए प्रबन्ध सोचते रहते हैं। भला श्रीमती जी की कब हिम्मत पड़ सकती है कि श्रीमान् के इस प्रकार के ध्यानादि व्यवसाय में बाधा डाल सकें? उनकी स्त्रियों की उचित से उचित प्रार्थना भी उनके लिए बेगार है। सीधे मुँह बात तक नहीं निकलती। पुरुष की यह बेरुख़ाई देख कर सास-ससुर कब उन बेचारी अबलाओं की सूरत देखना पसन्द करेंगे। प्रत्येक दुख-सुख की सीमा होती है। जब तक सीमा के अन्दर दुख की डिगरी रहती है, वे सहने का प्रयत्न करती रहती हैं। अन्त में चल कर यही असहनीय हो जाता है और उन बेचारियों को अपने पवित्र पति के आश्रम को छोड़ कर इस नीच व्यवसाय की शरण लेनी पड़ती है!

इसी के साथ यह हमीं तो हैं जो दूसरों के यहाँ की स्त्रियों को भिन्न-भिन्न प्रकार के सुख का लोभ दिखलाते फिरते हैं। उत्तम से उत्तम और बढ़िया से बढ़िया जाल-दार बातें कह-कह कर उनको उनकी पति-सेवा से वञ्चित करने का प्रयत्न करते रहते हैं। किसकी ऐसी प्रकृति है जो चीथड़े-गुदड़े के सामने बढ़िया से बढ़िया मख़मल के गद्दे को ग्रहण करना अनुचित समझेगा? किसका ऐसा चित्त है जो धनाढ्यों का कृपा-पात्र होना पाप समझेगा? कौन ऐसा माई का लाल है जो इन दुष्टों के इन 'मिराज़' को ठुकरा कर अलग कर देगा? यह होते हुए भी बहुत सी सती-साध्वी ऐसी मिलेंगी जिनके ऊपर इन मायावी राक्षसों के प्रलोभन, चिकने घड़े के बूँद होंगे। लेकिन सब तो ऐसी हो नहीं सकतीं। ये दुष्ट उन बेचारियों को अपने सुख की सामग्री बनाने के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार के नए प्रयत्नों का अवलम्ब लिया करते हैं। यदि इनके कारण उनके आचरण में अन्तर आता है तो उस अन्तर का आना, आजकल के प्रवाह पर ध्यान देते हुए, प्रकृति के विरुद्ध नहीं कहा जा सकता। जब होगा, प्रकृति के विरोधियों में हमारी ही गणना होगी। हमीं लोग उनको इस मार्ग में लाने के सिद्धक-साधक गिने जायँगे!

हम लोग बहुत सी स्त्रियों को इस काम में सफलता प्राप्त करने के लिए कुटनी बना-बना कर तैयार करते हैं। उन्हें भिन्न-भिन्न प्रकार की होशियारियों से सुसज्जित करते हैं और उन्हीं की शरण में अपने प्रारब्ध को सौंप देते हैं। हमारा भाग्योदय हमारे इन्हीं एजेण्टों के द्वारा उन्नति कर सकता है। एजेण्ट साहिबा स्त्री होने के कारण बिला रोक-टोक हमारे घरों को अपने चरणों से पवित्रता प्रदान कर सकती हैं। हम यह जानते हैं कि अमुक स्त्री बड़ी कुटिला है, तिस पर भी उन्हें अपने यहाँ आने-जाने देते हैं। प्रति दिन अपनी गृहिणियों को इनके व्याख्यान से शिक्षा ग्रहण करने देते हैं और इस पर यदि हमारे घर की स्त्रियाँ बाहर निकल कर और ही रूप धारण करती हैं,

यदि बेचारी अबलाएँ उनके जाल में फँस कर उनके कथनानुसार धर्म को तिलाञ्जलि दे देती हैं तो कोई भी योग्य पुरुष यह बात कहने को प्रस्तुत न होगा कि दोष स्त्रियों का ही है।

मन्दिरों और मठों की संख्या हमारे देश में इतनी बढ़ गई है कि चार-चार क़दम पर क़तार से स्थापित हैं, तिस पर भी हमारे लिए बिना तीर्थ पर्यटन किए बैकुण्ठ का फाटक नहीं खुल सकता। विधवाओं के लिए तो विशेष रूप से तीर्थ-यात्रा आवश्यक है। प्रायः देखा गया है कि इनमें से बहुत सी काशीवास, प्रयागवास, अयोध्यावास ही किया करती हैं। और वहीं पर उनको इस व्यवसाय की शिक्षा दी जाती है। वहीं इन बेचारियों के कठिन परीक्षा का समय रहता है। अनेक तीर्थस्थान पण्डों, पुजारियों और शोहदों के क्रीड़ास्थल हैं। जिसको देश में कहीं जगह नहीं मिलती, यहीं आकर झोपड़ी डाल लेता है। इन धर्म के ठेकेदारों के पास उनके आचरण को अपवित्र करने और अपने तोंद महाराज की छल-कपट से उन्नति करने के सिवाय और कोई काम नहीं रहता, हम यह जानते हुए भी कि हमारे तीर्थों की दशा कितनी बिगड़ी हुई है, किन-किन प्रकार के दुर्व्यवहार हमारी गृहिणियों के साथ वहाँ किए जाते हैं, उनको वहाँ जाने देते हैं और वह भी प्रायः विधवाओं को तो दूसरों की रक्षा में भेजते हैं, क्योंकि हम उनके लिए विशेष चिन्ता की बात नहीं समझते। प्रति दिन सुनते हैं कि अमुक तीर्थ में इतनी स्त्रियाँ लापता हो गईं। समाचार-पत्र वाले रोज़ यह कह-कह कर कि अमुक मेले में स्त्रियों की बहुत बड़ी संख्या का पता नहीं लगा, हमारे कान गन्दे करते रहते हैं, लेकिन तिस पर भी यदि हम आँख मूँदे वही पुरानी लकीर पीटते हैं तो उसके दोषी हम हैं, न कि अनभिज्ञ बालाएँ?

यदि हममें से कोई तीर्थ-यात्रा के विरोधी भी होते हैं तो इन अशिक्षित स्त्रियों को अपने यहाँ के शिवालयों और मन्दिरों में जाने से तो कभी रुकने को कहते ही नहीं। प्रातःकाल गङ्गा-स्नान, उसके पश्चात् शिवालयों और मन्दिरों में ठाकुर जी के दर्शन, ये नित्य के नियम हैं। बेचारी अबलाएँ घर के भीतर की क़ैदी, क्या समझ सकती हैं कि पुजारियों में कैसे-कैसे गुण भरे हैं? मठाधिकारी कितने बड़े महात्मा हैं, इन दुनिया से अपरिचिता बधुओं को क्या पता हो सकता है? इसके जानने वाले तो हमीं लोग हैं। यदि इस पर भी सूर्य निकलने के पूर्व हम उन्हें इस प्रकार के पूजा-पाठ के उस स्थान में, जहाँ 'सटक सीताराम' जैसे महन्त विराजमान हों, आज्ञा देते हैं तो इसका अर्थ सिवा इसके और क्या हो सकता है कि हम स्वयं दालमण्डी के तिमञ्ज़िला बनवाने की फ़िक्र में हैं। यदि इन विधवाओं के आचरण में परिवर्त्तन लाने के लिए इन सब सुविधाओं को इकट्ठा करने वाले हमीं हैं तो क्यों उनको कलङ्क का टीका लगाया जाता है, कुछ समझ में नहीं आता।

ब्रह्म-पूजा हमारी नस-नस में इतनी कस के ठूँस दी गई है कि उनमें लाख कुकर्म हों, उनके आचरण कितने ही दूषित हों, वे कितने भी व्यभिचारी क्यों न हों, हमें तो पूज्य ही हैं, हमारे घरों में तो पुरोहित जी स्त्रियों के बीच आ ही जा सकते हैं। हम घर के आदमी हैं, हमारे घर की स्त्रियों को हमारे सामने घूँघट डालना ही पड़ेगा, लेकिन पुरोहित जी तो परमात्मा के यहाँ से पूजनीय होकर आए हैं, उनके सामने कैसा परदा? ये पाखण्डी इस प्रकार के आघात हमारी गृहिणियों पर करते हैं कि उनको सूझ तक नहीं पड़ सकता।। उनकी स्त्रियाँ प्रायः दलाली का काम करती हैं और वे उनके कमीशन-एजेण्ट होते हैं। पोथी-पत्रा देख कर बतलाते हैं कि अमुक समय रात्रि में गङ्गा-स्नान से अमुक ग्रह की शान्ति होगी। अमुक वृक्ष के नीचे अमुक प्रकार से पूजा करने से अमुक दुख से निवारण हो सकता है। ये अबलाएँ इन कठिन समस्याओं को न समझ कर इन धूर्त पाखण्डियों के हाथ में जाकर वहाँ फँस जाती हैं। यदि हम उन पुरोहितों की पूँछ काट कर उन्हें देशी बना दें, तो किसमें सामर्थ्य है कि हमारी गृहिणियों पर इस प्रकार जाल का फन्दा फेंक सके। पण्डित जी अपने यजमान की ख्याति का जनाज़ा निकालने को तो प्रस्तुत रहते हैं, लेकिन अपनी नाक की फ़िक्र नहीं करते।

कुछ इन्हीं तक नहीं, हमारे अधिकांश गुरुद्वारे भी इसी प्रकार के लोगों से भरे पड़े हैं। हमारे गुरुद्वारों की दशा प्रति दिन शोचनीय होती जाती है। गुरुमन्त्र देना उन्हें ख़ूब सिखाया गया है। पुरुष-जाति के तारक तो आप होते ही थे, हमारी गृहिणियों को भी अब आपने अपना लिया है। हमें क्या, हमें तो वही पुरानी प्रथा प्रिय है। यदि एक

बार किसी गुरुद्वारे के शिष्य हमारे बाप-दादे हो गए तो हमारा वंश उनकी पुश्तैनी जायदाद हो गई। हमारे वंश में जितने होंगे, सबकी हजामत वहीं बनेगी। हमारी देवियाँ इन गुरुदेवों को ब्रह्मदेव से कम नहीं समझतीं, क्योंकि आप फ़ारसी ज़बान में उनके 'उस्ताद जी' ही ठहरे! आर्यसमाजिस्ट हमें लाख समझाएँ, हमारी समझ में तो आ नहीं सकता—हम तो उन्हें धर्म का स्टॉक ही समझेंगे!

गुरुदेव के साथ प्रायः मन्दिरों के पुछल्ले भी लगे रहते हैं! उन्हें मन्दिरों में उत्सव मनाने की बड़ी उत्सुकता रहती है; क्योंकि इस योनि की समझ में परमात्मा के लिए इससे बढ़ कर रोचक पदार्थ का निर्माण ही नहीं हुआ। उत्सव पर हमारे घर की यही पतिता स्त्रियाँ इन मन्दिरों में गीत का राग अलापती हैं। या वही नाटक-मण्डलियाँ, जिनमें कि सभी शुद्ध आचरण के आदर्श होते हैं, अपने पवित्र राग से परमात्मा के कानों को सुधा-रस पिलाती हैं। क्या हमारे घर की गृहिणियाँ इन उत्सवों पर, झूलों में, जन्माष्टमी में नहीं जातीं और हम उन्हें उसी भीड़ में धक्के दे-देकर पीस नहीं डालते? क्या हम उनके साथ वहाँ अनुचित से अनुचित व्यवहार करने को तैयार नहीं रहते। क्या इस बात से कोई इनकार कर सकता है कि इन छोटी-छोटी नाटक और नौटङ्की की मण्डली के लड़के अपनी इन्द्रियों को इन गृहस्थों के ही घरों से तृप्त करने के प्रयत्न नहीं सोचते रहते हैं? क्या कोई कह सकता है कि इन मण्डलियों का प्रभाव हमारी गृहिणियों के चरित्र के बिगाड़ने पर नहीं पड़ता? हम सभी जानते हैं कि मण्डली के लड़के प्रायः व्यभिचारी होते हैं, तिस पर भी हमारा शौक़ नौटङ्की और नाटक में इतना बढ़ा-चढ़ा है कि इन छोटी-छोटी बातों का हमें ख़्याल भी नहीं हो सकता!

उपरोक्त बातों पर यदि हम ज़रा सा भी ग़ौर करें तो हमें स्वयं—बिना किसी की सहायता के—विदित हो जायगा कि इन सबकी संख्या ऊँची करने की नींव हमारे ही आचरण और दुर्व्यवहार हैं। हमीं इसके ज़िम्मेदार हैं। यदि हम अपने इन सब अनुचित व्यवहारों को त्यागने का कष्ट उठा सकें तो इनका नाश होना कोई असम्भव बात नहीं। यदि पुरुष-जाति उनके गृहों को दूषित न करे, यदि उनके बायकॉट का मन्त्र जपना हम आरम्भ कर दें तो वे इस व्यवसाय में आकर ही क्या करेंगी। यदि हम इनके नाश करने की प्रतिज्ञा दिल में ठान लें तो इन कलियुगी अप्सराओं का बीजारोपण ही लुप्त हो जाय। लेकिन हम तो यह चाहते ही नहीं हैं! हमारे तो दिल में कुछ और है, भीतर कुछ और। हम तो ऊपर से चिल्लाना जानते हैं, भीतर से तो हम उनकी दिनोंदिन उन्नति ही चाहेंगे। हम तो यह चाहते हैं कि हमारी इन्द्रियाँ भी तृप्त होती रहें और हमें कोई यह कहने वाला भी न हो कि हम जी-जान से इनके नाश करने की कोशिश में नहीं हैं। रोज़ाना म्यूनिसिपैलिटियों में हम गोहार लगाएँगे कि हम इनकी परछाईं अपने म्यूनिसिपल-एरिया के अन्दर न पड़ने देंगे। हममें से हर 'सिटी फ़ादर' अपना फ़र्ज़ समझेगा कि इन दुराचारिणियों को इस भूमण्डल पर रहने तक का स्थान न मिले। किसी युग में शिव जी ने 'रम्भा' को भस्म करके उसके नाश करने की कोशिश की थी। अब ये म्यूनिसिपल-कमिश्नर्स और सोशल रिफ़ॉर्मर्स पैदा हुए हैं। ऐसा मालूम होता है कि परमात्मा ने पृथ्वी-मण्डल का यह भारी बोझ हटाने के लिए इन्हें ढाला है। ऊपर से ये सभी फटफटाते हैं, लेकिन दिल में इनके भी वही पाप की अग्नि जल रही है। और ठीक ही है, जॉनबुल के इतने उपकारक पदार्थ का क्योंकर नाश किया जा सकता है?

"धैर्य से मनुष्य सब कुछ कर सकता है।"

"क्या धैर्य से छलनी में पानी रक्खा जा सकता है?"

"हाँ, यदि पानी के जम जाने तक धैर्य रक्खा जावे।"

"रामलाल का पहला उपन्यास प्रकाशित हो रहा है।"

"उपन्यास का नायक कौन है?"

"जहाँ तक मेरा अनुमान है नायक प्रकाशक ही होगा।"

मास्टर आत्माराम

[ले० श्री० 'सुदर्शन']

यंसेवक ने कहा—"वह तो हमारे मास्टर साहब हैं।"

मैं चौंक पड़ा। मुझे कभी सन्देह भी न हुआ था कि वह मास्टर हो सकता है। मैं समझता था, कोई नौकर होगा। शायद किसी वकील का चपरासी हो। इससे ज़्यादा मैंने उसे कभी कुछ ख़्याल नहीं किया। कितने आश्चर्य की बात है कि जो व्यक्ति रात के बारह-बारह बजे तक मेरी और दूसरे उपदेशकों की सेवा करता रहता था, जिसे जूते साफ़ करने, बिस्तर झाड़ने, और मैले कपड़े धोने में भी सङ्कोच न था, वह स्कूल का मास्टर निकला। मुझे बड़ा अभिमान है कि मैं आदमी को उसका चेहरा देख कर पहचान सकता हूँ। मगर मुलतान के उस उदास, निराश, चुपचाप रहने वाले अद्भुत आदमी के सामने मेरी यह शक्ति बिलकुल बेकार सिद्ध हुई। परन्तु मुझे अब भी सन्देह था कि सम्भव है, स्वयंसेवक किसी दूसरे व्यक्ति का ज़िक्र कर रहा हो। मैंने पूछा—तुम किस आदमी के विषय में कह रहे हो? मेरा इशारा उस आदमी की तरफ़ है, जो रात को हमें दूध देने आया था।

स्वयंसेवक—जी हाँ! मैं भी उन्हीं की बाबत कह रहा हूँ।

मैं—तुम मेरे रात के व्याख्यान में थे?

"हाँ थे।"

"व्याख्यान के शुरू होने पर जिस आदमी ने मेज़ पर लैम्प रक्खा था, मैं उस शख़्स का ज़िक्र कर रहा हूँ।"

स्वयंसेवक—वही मास्टर साहब हैं।

मैं—तुम ज़रूर ग़लती कर रहे हो। मैं ऐसा मूर्ख नहीं कि एक साधारण नौकर और स्कूल-मास्टर को भी न पहचान सकूँ। (थोड़ी देर के बाद) अच्छा, उनका नाम क्या है?

स्वयंसेवक—लाला आत्माराम, बी० ए०, बी० टी०। हमारे ही स्कूल में सेकेण्ड मास्टर हैं।

मैं—मगर शक्ल-सूरत से तो मालूम नहीं होता कि वह ग्रेजुएट होंगे। अगर वह मुझसे स्वयं कहते कि मैं ग्रेजुएट हूँ, मैं तब भी न मानता। समझता, झूठ बोल रहे हैं। और मुझे तो अभी तक विश्वास नहीं आता।

स्वयंसेवक—और किसी को भी विश्वास नहीं आता कि यह महात्मा ग्रेजुएट होंगे।

मैं—कपड़े कैसे मैले पहनते हैं, जैसे कुली हों। बल्कि मेरा तो ख़्याल है, कुलियों के कपड़े भी इनसे अच्छे होते हैं।

स्वयंसेवक—घर में इससे भी बुरे पहनते हैं। हाँ, जब इन्सपेक्टर आने वाला हो, उस दिन कपड़े बदल आते हैं।

मैं—और बहुत उदास रहते हैं। मैंने उनकी आँखों में कभी ज्योति नहीं देखी। यों काम को हर समय तैयार रहते हैं। ऐसा मालूम होता है, जैसे दिल ही दिल में कुढ़ते रहते हैं।

स्वयंसेवक—मगर किसी को कुछ बताते नहीं हैं। हेडमास्टर साहब ने कई बार अनुरोध किया, लेकिन कुछ न बताया। केवल इतना ही कहा—मैंने पाप किया है, यह उसका प्रायश्चित्त है।

मैं—अद्भुत प्रकृति का मनुष्य है।

स्वयंसेवक—मगर आदमी शरीफ़ हैं। आपको कोई काम हो, रात के २ बजे बुला भेजिए—दौड़ते हुए चले आएँगे। एक बार भी 'नहीं' न कहेंगे। और फिर जनाब पुरुषार्थी ऐसे हैं कि सारी रात काम कराते रहिए, आँख भी न झपकेंगी, न थकेंगे।

मेरी हैरानगी और भी बढ़ गई। स्वयंसेवक के चले

जाने पर बार-बार सोचता था, इसकी तह में ज़रूर कोई अद्भुत रहस्य है, कोई छिपी हुई घटना। परन्तु वह क्या है? इस आदमी ने ऐसा कौन सा पाप किया है, जिसका प्रायश्चित्त करने के लिए अपने आपको लोगों की दृष्टि में गिरा रहा है। सन्ध्या का समय था, मेरा व्याख्यान शुरू होने में केवल एक घण्टा बाक़ी था। पण्डाल में लोग अभी से एकत्रित हो रहे थे। उनके चिल्लाने की आवाज़ें मेरे कानों तक पहुँच रही थीं। मगर मुझे व्याख्यान की ज़रा भी चिन्ता न थी, मैं ज़रा भी न सोचता था कि आज क्या कहूँगा। मेरे सामने इस समय एक ही प्रश्न था—यह मास्टर साहब कौन हैं? इनका गुप्त इतिहास क्या है? मैं इसे जानने के लिए अधीर हो रहा था।

सहसा दरवाज़ा खुला और एक आदमी अन्दर आया। मैं उछल पड़ा—यह मास्टर आत्माराम थे। इससे पहली रात को भी मेरा व्याख्यान था। भीड़ के अधिक होने के कारण मेरा गला बैठ गया था। डॉक्टर दत्त ने मेरे लिए गले की टिकियाँ भेजी थीं, ताकि व्याख्यान देते समय आवाज़ साफ़ रहे। मास्टर आत्माराम वही टिकियाँ लेकर आए थे। उन्होंने शीशी मेज़ पर रख दी, और धीरे से पूछा—आप भोजन कब करेंगे? इस समय या व्याख्यान के बाद? यदि इस समय खाना चाहें तो ले आऊँ?

मैंने इस प्रश्न का उत्तर न दिया, और उठ कर उनका हाथ थाम लिया। वह कुछ घबरा गए। शायद उनको मुझसे ऐसे सुकोमल व्यवहार की आशा न थी। मगर मैंने इसका ज़रा भी ख़्याल न किया, और कहा—मास्टर साहब! मुझे आप से शिकायत है कि आपने मुझे धोखा दिया, वरना मुझसे ऐसी गुस्ताख़ी कभी न होती।

मास्टर साहब ने मेरी ओर आश्चर्य से देखा और कहा—आप क्या कह रहे हैं? मैं आपका अभिप्राय नहीं समझा।

मैं उनको घसीट कर अपनी चारपाई के निकट ले गया, और उन्हें अपने साथ बैठा कर बोला—मैं अभी समझाए देता हूँ।

मगर वह उठने के लिए छटपटाने लगे, जैसे उनको दण्ड दिया जा रहा था। वह उठने का भरसक प्रयत्न करते हुए बोले—मुझे छोड़ दीजिए। मैं फ़र्श पर बैठूँगा।

मैं—(हँसकर) चुपचाप बैठे रहिए, नहीं तो मैं ज़बरदस्ती करूँगा।

मास्टर साहब—(मिन्नतें करते हुए) पण्डित जी! परमात्मा के लिए मुझे छोड़ दीजिए। मैं यहाँ बैठने योग्य नहीं, आपके चरणों में बैठूँगा।

मैं—चरणों में बहुत बैठ चुके, अब सिर पर बैठना होगा।

मास्टर साहब ने मेरी तरफ़ ऐसी दृष्टि से देखा, जो पत्थरों में भी सूराख़ कर देती। उनकी आँखें हृदय-वेदना से सजल होगईं। दीन-भाव से बोले—मुझे मजबूर न करें मैं आपके साथ कभी नहीं बैठूँगा।

मैं—मगर क्यों? साथ बैठने में आख़िर हर्ज क्या है? आप सभ्य हैं, शिक्षित हैं, एक हाईस्कूल के सेकेण्ड मास्टर हैं। फिर भी × × ×

आत्माराम—मैं इस सम्मान का अधिकारी नहीं हूँ—मैं नराधम हूँ। मैंने उनका हाथ छोड़ दिया। वह जल्दी से फ़र्श पर बैठ गए। अब उनका चेहरा फिर शान्त था, जैसे मछली को पानी मिल जाय। थोड़ा सा हँस कर बोले—मेरा स्थान यही है।

मैंने उनके कन्धे पर प्यार से हाथ रक्खा, और अपनी आँखें उनकी आँखों में डाल कर कहा—अपनी कहानी सुनाओ। मैं उसे सुने बिना यहाँ से न उठूँगा।

मास्टर आत्माराम ने एक ठण्ढी साँस भरी, और दो गर्म आँसू टपका कर कहा—मुझसे एक पाप हो गया है, अब प्रायश्चित्त कर रहा हूँ। बस यही मेरी कहानी है।

मैं—नहीं; मैं सारी घटना सुनना चाहता हूँ। और (एक-एक शब्द पर ज़ोर देकर) मैं यह सम्पूर्ण कहानी सुने बिना अन्न ग्रहण नहीं करूँगा। बोलो, क्या कहते हो?

आत्माराम—(विवशता से) इससे कुछ प्राप्ति न होगी, उल्टा आप भी दुखी हो जायँगे।

मैं—आपका दिल तो हलका हो जायगा।

आत्माराम—मैंने यह घटना आज तक किसी से भी नहीं कही।

मैं—शायद ऐसी सहानुभूति से और ऐसे आग्रह से किसी ने पूछा भी न हो।

आत्माराम—आप क्षमा नहीं कर सकते।

मैं—मैं प्रतिज्ञा कर चुका।

आत्माराम—(सिर झुका कर) तो फिर किसी समय

कह सुनाऊँगा। अब तो आपके व्याख्यान का समय है। आप सुनते हैं, कितना शोर मच रहा है? पाँच हज़ार से कम आदमी न होंगे। मेरी दुख-भरी कहानी सुन कर आपका दिल भर आया, तो व्याख्यान ख़राब हो जायगा।

मैं—मास्टर जी! मुझे इस समय व्याख्यान की ज़रा भी चिन्ता नहीं। आप इनकार करते हैं, मेरा शौक़ और भी बढ़ता जाता है। जब तक सुन न लूँगा, चैन न आएगा।

आत्माराम मेरे मुँह की तरफ़ देखने लगे।

मैंने झुक कर उनके कन्धों पर दोनों हाथ रख दिए, और कहा—अब तो आपको कहना ही पड़ेगा। देर करना निष्फल है।

आत्माराम ने आकाश की तरफ़ देख कर ठण्डी साँस भरी, और इसके बाद धीरे-धीरे यों कहना शुरू किया:—

* * *

"पण्डित जी! मैं जालन्धर का रहने वाला हूँ। मेरे पिता जी वहाँ कपड़े की दूकान करते थे। वह बहुत अमीर न थे, पर ग़रीब भी न थे। उनकी गणना शहर के सुप्रसिद्ध लोगों में होती थी। उनकी बात टालने का किसी में साहस न था। शहर के गुण्डे भी उनके सम्मुख सिर न उठाते थे। उनकी सचाई और निर्भयता के दृष्टान्त जालन्धर में आज भी आपको सुनाई देंगे। परन्तु मेरा दुर्भाग्य देखिए; मेरे भाग्य में उनकी स्नेह-छाया न लिखी थी। मैं अभी दो ही वर्ष का था कि उनका देहान्त हो गया। मुझे उनकी शक्ल-सूरत भी स्मरण नहीं। भगवान् जाने, कैसे थे, कैसे नहीं थे।

मेरा पालन-पोषण मेरी विधवा माँ ने किया। उसकी एक सहेली शिवा होशियारपुर की रहने वाली थी। वह भी विधवा थी। इन दोनों में बहुत प्रेम था। उनका प्रेम देख कर सन्देह होता था कि वह सगी बहिनें हैं, सखियाँ नहीं। जब कभी मिलने का अवसर मिलता, सारी-सारी रात बातें करती रहतीं। रात समाप्त हो जाती, उनकी बातें समाप्त न होतीं। वह प्यार, वह स्नेह, वह विशुद्ध भाव आज भी याद आते हैं, तो दिल से धुआँ सा उठने लगता है। उसकी एक लड़की थी कमला, मुझसे तीन-चार वर्ष छोटी होगी। दोनों सखियों ने मिल कर हमारी सगाई कर दी।

उस ज़माने में मैं कॉलेज में दाख़िल हुआ ही था। सगाई होने पर मुझे हार्दिक आनन्द हुआ। मैंने कमला को केवल एकाध बार देखा था; वह भी बाल्यावस्था में। मुझे उसकी शक्ल-सूरत, रङ्ग-रूप कुछ भी स्मरण न था। मगर इस पर भी मुझे प्रसन्नता हुई। जब एकान्त में बैठता, कमला की काल्पनिक मूर्त्ति आँखों के सामने आकर खड़ी हो जाती। मुझे ऐसा मालूम होता था, जैसे एक हँसमुख, भोली-भाली सुन्दरी बाला लज्जा से सिर झुकाए मेरी तरफ़ प्रेम-पूर्ण दृष्टि से देख रही है। कभी-कभी ऐसा मालूम होता था, जैसे वह मुझसे बातें कर रही है। धीरे-धीरे मुझे कल्पना-जगत् की इस कल्पित मोहनी मूर्त्ति से प्रेम बढ़ने लगा। मैंने इस माया को जीती-जागती सुन्दरी लड़की समझ लिया, जिसे विधाता ने मेरे ही लिए उत्पन्न किया है। मगर भाग्य ने मेरे लिए कुछ और ही सोच रक्खा था। जब मैं ट्रेनिङ्ग कॉलेज में भर्ती हुआ, तो एक दिन पता नहीं, किस तरह मेरे दिल में विचार उत्पन्न हुआ कि यदि वह मेरे आदर्श पर पूरी न उतरी, तो क्या होगा? जीवन नष्ट हो जायगा, समस्त आशाएँ, सकल अभिलाषाएँ मिट्टी में मिल जाएँगी। यह आशङ्का न थी, मेरी तबाही का श्रीगणेश था। कदाचित् यह घड़ी मेरे जीवन से निकल जाती; काश मैं उस समय सो जाता, अचेत हो जाता, किसी दुर्घटना से ज़ख़्मी हो जाता, तो आज मेरा जीवन ऐसा भयानक, ऐसा निराशापूर्ण, ऐसा शोकमय न होता। उस अशुभ दिन के बाद मेरे मन को सच्चा आनन्द कभी प्राप्त नहीं हुआ। मैंने इस सन्देह को, इस वहम को दिल से दूर करने का बहुत प्रयत्न किया, परन्तु यह सन्देह दूर न हुआ; जैसे खनखजूरे की विष-भरी टाँगें एक बार मांस में चुभ कर फिर यत्न करने पर भी बाहर नहीं निकलतीं और अन्दर धँसती ही जाती हैं। कुछ ही दिनों के बाद मैंने स्थिर कर लिया कि कमला से ब्याह न करूँगा, किसी और लड़की से देख कर करूँगा; पर आज सोचता हूँ, उस समय मुझे क्या हो गया था। शायद मैं पागल हो गया था। न कुछ देखा, न सुना; और निश्चय कर लिया। आदमी समझते-सोचते हुए भी कैसा अन्धा हो जाता है, यह आज समझता हूँ, उस समय ज़रा भी ख़्याल न था।

गर्मी की छुट्टियों में घर गया, तो एक दिन माँ ने

कहा—क्यों बेटा ! अब ब्याह कब करेगा ? शिवा आई थी, कहती थी, लड़की जवान हो गई है।

मैं खाना खा रहा था, चुपचाप खाता रहा।

माँ ने थोड़ी देर मेरे उत्तर की प्रतीक्षा की और फिर बोली—समय बड़ा विकट है। लड़कियों को कुँवारी बैठा रखना आसान नहीं।

मैं अब के भी चुप रहा।

माँ—मैं भी उस दिन के लिए तड़प रही हूँ, जब तू सेहरा बाँध कर घोड़ी पर सवार होगा।

मैंने फिर भी उत्तर न दिया।

माँ—(मेरे थाल में भाजी डालते हुए) "तो इस बैसाख में ब्याह हो जाए ?" अब चुप रहना कठिन था। मैंने धीरे से कहा—"मैं अभी ब्याह न करूँगा।"

माँ ने स्नेहपूर्ण दृष्टि से मेरी तरफ़ देखा, और बोली—तो क्या तू बुड्ढा होकर ब्याह करेगा ? ज़रा इस लड़के की बातें सुनो। कहता है, अभी ब्याह न करूँगा। पण्डित गोकुलचन्द का लड़का मायाधारी तुझसे तीन महीने छोटा है, उसका ब्याह हुए दो वर्ष बीत गए। लाला कर्त्ताकिशन का लड़का चूनीलाल × ×

मैं—(बात काट कर) मुझे औरों से क्या मतलब। मैं अभी ब्याह न करूँगा।

माँ—अच्छा यह भी न सही। जानता है, तेरे बाप का ब्याह कब हुआ था ? १३ वर्ष की उमर में। उस समय मैं आठ वर्ष की थी।

यह कहते-कहते उसकी आँखें सजल हो गईं। उसकी आवाज़ गले में फँस गई। उससे और न बोला गया। वह चुपचाप दीवार की तरफ़ देखने लगी। मेरा भी दिल भर आया, हाथ का ग्रास हाथ ही में रह गया।

थोड़ी देर बाद उसने फिर ठण्डी साँस ली और बोली—आज अगर तेरा बाप जीता होता, तो क्या तू फिर भी आज तक कुँवारा ही बैठा रहता। न बाबा ! मैं अब तेरी एक न सुनूँगी। तू तो पागल है। पढ़-लिख गया तो इससे क्या ? मगर है तो वही पागल का पागल, ज़रा भी फ़र्क़ नहीं पड़ा।

मैंने हँस कर जवाब दिया—पागल हूँ, तो पागलख़ाने भेजो, ब्याह क्यों करती हो। इससे तो यह मालूम होता है कि तुम भी पागल हो गई हो।

अब माँ को भी हँसी आ गई ; ठोड़ी पर उँगली रख कर बोली—बाबा पता नहीं, यह तूने इतनी बातें कहाँ से सीख लीं। पर एक बात कहे देती हूँ, तुझे अब ब्याह करना ही पड़ेगा।

मैंने खाने का थाल परे हटा दिया, और गम्भीरता से कहा—माँ ! मैंने एक बार कह दिया है, ब्याह न करूँगा। यह मेरा अन्तिम निश्चय है।

शायद माँ को अब तक यही ख़्याल था कि यह इन्कार जीभ का है, हृदय का नहीं। लड़के माँ-बाप के सामने ऐसा ही कहा करते हैं। परन्तु मेरी दृढ़ता देख कर माँ का चित्त उदास हो गया। बोली—तो क्या जवाब दूँ, लड़की जवान हो गई है।

मैं—कहो, कहीं और ब्याह दे। हिन्दोस्तान में मेरे सिवाय और भी बहुत लड़के हैं।

मेरी इस बात से माँ के कलेजे में तीर-सा लगा। स्नेह की मूर्त्ति ने क्रोध का रूप धारण कर लिया। उसकी आँखों से आग की चिनगारियाँ निकलने लगीं, जैसे चन्दन को भी रगड़ा जाय तो उससे आग निकलती है। वह कड़क कर बोली—क्या कॉलेज में तू ने यही निर्लज्जता की बातें सीखी हैं। अगर मर्द होता तो मर जाता, पर यह बात मुँह से न निकालता। अपनी स्त्री का ब्याह दूसरे पुरुष से होते देखेगा, और फिर भी जीता रहेगा।

माँ का यह रूप देख कर मेरे देवता कूच कर गए। मेरे मुँह से एक भी शब्द न निकला। मुँह में ज़बान थी, ज़बान में बोलने की शक्ति न थी। मैं चाहता था, माँ एक बार फिर उसी तरह प्यार से अपना अधिकार जता कर कह दे, तुझे ब्याह करना होगा, तो मैं सिर झुका कर स्वीकार कर लूँ, चूँ भी न करूँ। परन्तु माँ ने यह शब्द न कहे, और उठ कर चारपाई पर जा लेटीं। मैं भी बाहर चला आया। अब मैं फिर वही ज़िद्दी, वही महामूर्ख, वही वहमी आत्माराम था, जिसने न कुछ देखा, न सुना, और समझ बैठा कि कमला से ब्याह करके मेरा जीवन अन्धकारमय हो जायगा। पहले-पहल यह सन्देह कोमल पौधा था, जिसे उखाड़ना ज़रा भी कठिन नहीं होता, आदमी चाहे तो पैर से भी उखाड़ ले। मगर अब वही पौधा वृक्ष का रूप धारण कर चुका था, जिसे हाथी हिलाना चाहे, तो वह भी न हिला सके। परमात्मा ही जानता है, संसार में मेरे जैसे अभागे कितने हैं, जो

अपने ही निर्मूल सन्देह के जगत में भटक-भटक कर नष्ट हो जाते हैं।

कुछ दिनों बाद होशियारपुर से पत्र आया कि जल्दी स्वीकृति भेजो, तो तैयारियाँ शुरू करूँ। मुझे तो शहर में मुँह दिखाना भी मुश्किल हो गया है। पत्र पढ़ कर मैं सोचने लगा, माँ को दिखाऊँ या न दिखाऊँ। फिर सिर पर सवार हो जायगी, फिर वही गालियाँ मिलेंगी, और क्या पता, ज़बरदस्ती ब्याह कर दे। मैं घबरा गया। दो दिन सोचता रहा, तीसरे दिन मार्ग मिल गया। मैंने माँ की तरफ़ से पत्र लिख दिया। उस पत्र का आशय यह था:—

"बहिन! क्या कहूँ, कहते हुए भी लज्जा आती है। जी चाहता है, कहीं डूब मरूँ। तुम्हें कभी मुँह न दिखाऊँ। मगर मेरा इसमें ज़रा भी दोष नहीं। आत्माराम की ही बुद्धि पर पत्थर पड़ गए हैं, कहता है, मैं ब्याह न करूँगा। क्या-क्या आशाएँ थीं—सब पर पानी फिर गया। कमला को अपनी बहू बना कर मुझे कैसा स्वर्गीय आनन्द प्राप्त होता। अफ़सोस !!

"मुझे आत्माराम से अब ज़रा भी आशा नहीं। मैं समझा-समझा कर थक गई, परन्तु उस पर असर नहीं होता। कैसे लिखवाऊँ कि कमला को कहीं और ब्याह दो। पर विवश हूँ।

तुम्हारी दुखी बहिन,

—रामदेवी"

पण्डित जी! यह पत्र लिख कर मैं ऐसा ख़ुश हुआ, जैसे सिर से कोई भार उतर जाय, जैसे कोई भयानक रोग टल जाय। मगर यह रोग न टला था, मैंने अपने जीवन की सबसे बड़ी बाज़ी हार दी थी। मैं कितना पतित, कितना पापी, कितना हृदयहीन हूँ। उस समय मुझे ख़्याल भी न आया कि मैं क्या कर रहा हूँ। माँ को मालूम भी न हुआ, और वह पत्र होशियारपुर जा पहुँचा। मेरा पत्र पाकर शिवा को कितना दुख हुआ होगा, यह मुझसे छिपा न था। इसी से उसने पत्र लिखना भी बन्द कर दिया। प्रेम जब क्रोध में आता है, तो चुप हो जाता है, बोलता नहीं है। मगर यह बात ज़्यादा दिन छिपने वाली न थी, एक दिन प्रकट हो गई।

बैसाख की एक सन्ध्या थी। मैं सैर करके घर लौटा तो माँ चुपचाप बैठी थी। उसकी आँखें रो-रोकर सूज गई थीं। मुझे देखते ही उसकी आँखों से फिर आँसू बहने लगे, जैसे घाव पर चोट लग जाय। रोते-रोते बोली—पुत्र! तूने बुरा किया। यह तुझे उचित न था। ग़रीब लड़की का दिल टूट गया है। जब से तेरा पत्र गया है, दिन-रात रोती रहती है। उसके मामा ने एक वर ठीक किया है, मगर वह कहती है, मेरा ब्याह हो चुका। हिन्दू की लड़की हूँ, दूसरा ब्याह तो न करूँगी। परन्तु उसका मामा ब्याह करने पर तुला हुआ है। भगवान् जाने, क्या हो, क्या न हो। मगर तूने बुरा किया। अब भी कुछ हो सके, तो कर ले, वरना मैं कुछ खा मरूँगी। हाय बेटा, तूने इतना भी न सोचा कि यह मेरी माँ है।

यह कह कर वह फूट-फूट कर रोने लगी। वह रात जिस तरह मैंने गुज़ारी है, यह मैं ही जानता हूँ। दूसरे दिन मैं होशियारपुर की गाड़ी में बैठ गया। मैंने दृढ़ सङ्कल्प कर लिया कि जाते ही शिवा के पाँव पकड़ लूँगा। कहूँगा तू मेरी माँ है, मुझे माफ़ कर, या सज़ा दे। परन्तु यहाँ पहुँचा, तो द्वार पर ब्याह के चिन्ह दिखाई दिए। मेरा कलेजा सन् से हो गया! पर मैंने फिर भी हिम्मत न हारी, और भागता हुआ अन्दर चला गया। उस समय मुझे जो कोई देखता, वह यही समझता कि यह पागल है। और मैं वास्तव में पागल ही था। मेरी विचार-शक्ति नष्ट हो चुकी थी। मुझे इतना भी मालूम न था कि मैं क्या कर रहा हूँ। आँगन में पहुँचा तो शिवा सामने से आती दिखाई दी। मगर इस दशा में उसके चेहरे पर हवाइयाँ उड़ रही थीं। मुझे देखा, तो उसकी आँखों से आग की ज्वाला निकलने लगी, जैसे किसी ने सिंहनी के बच्चे को छेड़ दिया हो। दाँत पीसती हुई बोली—अब तू यहाँ क्यों आया है? क्या मेरी बेटी की हत्या करके भी तुझे सन्तोष नहीं हुआ?

यह कह कर वह तो वापस चली गई; मुझे जैसे किसी ने काठ मार दिया, जैसे किसी दैवी शाप से मेरे पाँव ज़मीन में जम गए। घर में मुहल्ले भर की स्त्रियाँ जमा थीं, शिवा की आवाज़ सुन कर उनमें से कुछ बाहर चली आईं। एक-दो मुझे पहचानती थीं। एक बोली—अरे बेटा! तूने तो अनर्थ किया। यह लड़की न

अखिल भारतवर्षीय महिला-शिक्षा-कॉन्फ्रेन्स की प्रधाना तथा कार्यकारिणी समिति का ग्रूप

बैठी हुईं—(१) श्रीमती रामेश्वरी नेहरू (२) मिसेज़ पी० के सेन [मन्त्रिणी स्वागत-समिति] (३) श्रीमती सरला देवी चौधरानी (४) मिसेज़ मज़रुलहक़ [प्रधाना स्वागतकारिणी सभा] (५) श्रीमती महारानी साहिबा मण्डी [प्रधाना] (६) मिसेज़ फ़रदून जी (७) मिसेज़ हुदिकोपर (८) मिसेज़ एस० सी० मुकर्जी (९) मिसेज़ बैरामजी

खड़ी हुईं—(१०) मिसेज़ शुक्ला (११) मिसेज़ भास्करम्मा (१२) मिस नीलकण्ठ। (१३) मिसेज़ माईल्स ईर्विङ्ग (१४) मिस बहादुरजी (१५) मिस लज़ारस (१६) मिसेज़ मायादास (१७) श्रीमती कमला देवी चट्टोपाध्याय [नियोजक] (१८) मिस कोपलैण्ड (१९) मिस खेमचन्द (२०) मिसेज़ मुकर्जी (२१) मिसेज़ हेरलेकर ।

The Fine Art Printing Cottage, Allahabad.

थी, हीरा थी। इसे ठुकरा कर तेरा भी भला न होगा। ग़रीब ने विष खा लिया।

मैंने कलेजा थाम लिया। मुझे ऐसा मालूम हुआ, मानों यह जागृति नहीं है, स्वप्न है। सोचता था, अभी आँख खुल जायगी। अभी यह हार्दिक वेदना समाप्त हो जायगी। इतने में दूसरी स्त्री बोली—वह तो सती थी, सती। रात को ब्याह था, पहले ही विष खा लिया।

तीसरी—शायद बच जाए।

मुझे कुछ आशा हो गई।

दूसरी—(सिर हिला कर) अब क्या बचेगी। डॉक्टर भी जवाब दे गया।

मेरा दिल फिर बैठ गया।

तीसरी—डॉक्टर कोई परमेश्वर थोड़ा ही है। परमेश्वर चाहे तो अब भी बचा ले। वह चाहे तो मुर्दा जी उठे।

चौथी—इसमें क्या सन्देह है। वह सब कुछ कर सकता है। परमात्मा करे, बच ही जाय। ग़रीब ने दुनिया का देखा ही क्या है?

पाँचवीं—(रोकर) कल मैं पास बैठी रही, मुझसे ज़िक्र भी नहीं किया, हाँ चुप थी। अब मालूम हुआ, उसके मन में मौत बस चुकी थी।

दूसरी—उदास तो उसी दिन से थी, जिस दिन से (मेरी तरफ़ घृणा से इशारा करके) इसका ख़त आया था। उस दिन के बाद उसके मुँह पर किसी ने रौनक़ नहीं देखी।

तीसरी—क्यों बेटा! इसमें क्या कीड़े पड़े थे जो तूने मँगनी तुड़ा ली। ऐसी लड़की तो सारे शहर में न होगी।

चौथी—(घृणा से मुँह फेर कर) बहिन! तुम भी किससे बातें करती हो। ऐसे आदमी को तो मुँह न लगाना चाहिए। आदमी काहे को है, राक्षस है।

पहली—(ठण्डी साँस भर कर) वाह बहिन कमला! तू भी गई। अरी अभी तेरी उमर ही क्या थी?

मैं अवाक् खड़ा था। क्या कहता, क्या न कहता। अपने आपको धिक्कार रहा था। इतने में एक लड़की अन्दर से दौड़ती हुई आई, और मुझसे बोली—जल्दी चलो तुम्हें बुला रहे हैं।

मैं भागता हुआ अन्दर चला गया। वह ज़मीन पर पड़ी तड़प रही थी। इस समय भी वह कैसी सुन्दरी, कैसी मोहनी थी। ऐसा मालूम होता था, जैसे किसी निर्दयी ने एक फूल को तोड़ कर भूमि पर पटक दिया है। उसने मेरी तरफ़ देखा, और फिर आँखें बन्द कर लीं। उस अन्तिम दृष्टि में कितना प्यार, कितना अभिमान, कितना दुख तथा उलहना भरा था, इसे आज तक नहीं भूल सका।

उसकी माँ ने रोकर कहा—बेटी कमला! (घबड़ा कर जल्दी से) अरी बेटी कमला!

मगर कमला कहाँ थी?

स्त्रियों ने जल्दी से उसके हाथ पर आटे का दीपक रख दिया। तो क्या सचमुच उसकी जीवन-लीला समाप्त हो गई? इतनी जल्दी! इतनी छोटी आयु में! उसकी माँ का हृदय-बेधक विलाप वायु-मण्डल में गूँजने लगा, स्त्रियाँ फूट-फूट कर रोने लगीं।

जब मैं बाहर निकला, तो आसमान चक्कर खा रहा था, ज़मीन घूम रही थी। मेरे पाँव तले भूमि न थी। हृदय के अन्दर आग लगी हुई थी। इस घटना को पाँच वर्ष बीत चुके हैं, वह आग उसी तरह सुलग रही है। न दिन को चैन आता है, न रात को आराम मिलता है। रात को ऐसा मालूम होता है, मानो कोई कन्धा पकड़ कर हिला रहा है। जागता हूँ, तो कोई कमरे में सिसकियाँ भरता हुआ मालूम होता है। सोता हूँ, तो स्वप्न में भयानक शक्लें देख कर चौंक उठता हूँ। उस समय मैं अपने आपे में नहीं रहता। मेरी गगन-भेदी चीख़ों से सारे मुहल्ले के लोगों की नींद हराम हो जाती है। अब मुझे कोई किराए पर मकान भी नहीं देता। कहते हैं, कौन मुहल्ले भर से लड़ाई मोल ले? तुम पर तो रात को भूत सवार हो जाता है। बड़े यत्नों से शहर से बाहर एक मकान मिला है। उसी में अपनी भग्न-हृदया माता के साथ अपने दुखमय अश्रुपूर्ण जीवन के दिन काट रहा हूँ। परन्तु आह! वह उसकी अन्तिम प्रेम-पूर्ण दृष्टि, वह उसकी जवानी और सुन्दरता की मौत एक पल के लिए भी नहीं भूलती। कैसी आन वाली थी। उसने मुझे देखा नहीं था, मुझसे बातचीत नहीं की थी और न उसका मुझसे पत्र-व्यवहार था। केवल नाम का सम्बन्ध था; उसी पर निछावर हो गई। वह इस

स्वार्थमय संसार की लड़की न थी, कोई प्राचीन समय की सती थी। आज भी उसके अल्प-जीवन के अन्तिम क्षण मेरी आँखों के सामने फिर रहे हैं; वही मकान, वही आँगन, वही स्त्रियों से भरा हुआ कमरा, और वही उसमें लेटी हुई स्वर्ग की देवी, जो मुझे देखे बिना मरना भी न चाहती थी। हाय शोक! मैंने क्या कर दिया? आज पूरे पाँच साल से उसे स्मरण कर-करके रो रहा हूँ। मगर न वह भूलती है, न मौत ही आती है, जो इस जीवन का अन्त हो। इसीलिए मैले कपड़े पहनता हूँ, गन्दा खाना खाता हूँ, अपने आपको अपनी और दूसरों की आँखों में गिराता हूँ कि शायद इसी तरह मेरे पाप का प्रायश्चित्त हो जाय।"

यह कहते-कहते उनकी आँखों से आँसू बहने लगे। मेरी ज़बान से एक शब्द भी न निकला; हाँ, हृदय में आग सी लग गई। थोड़ी देर बाद वह उठ कर मेरा जूता ले आए, और मेरे सामने रख कर बोले—चलिए! व्याख्यान का समय हो गया।

वृक्ष

[रचयिता—श्री० चन्द्रशेखर जी ओझा]

(१)

सेवामय है सभी तुम्हारा,
जीवन, निधन, कलेवर, वेष!
प्रभु-गृह से आए तुम जग को—
देने सेवा का सन्देश!!

(२)

फल-भारानत शाखा-भुज से—
बुला-बुला करके सादर!
फल-स्वरूप में सबको देते,
वह ईश्वर-सन्देश प्रवर!!

(३)

इसमें भी वे शठ करते हैं—
तुम पर अगणित उपल प्रहार!
धन्य सरलता! सब सह कर भी,
तुम करते उनका उपकार!!

(४)

क्रूर-स्वार्थ-रत-विश्व-मध्य तुम,
फैलाए भुज-डाल विशाल!
विकल सरलता का, सेवा का—
देते अभय-दान सब काल!!

(५)

पल्लव-पल्लव पुलकित रहता,
करने को सेवा प्रति क्षण!
केवल अनिल समझ सकता है,
उसके वे सब भाव गहन!!

(६)

उन्नत-मुख उत्सुक सुनते क्या—
तुम अनन्त का नीरव गान!
सेवा-योगिन्! भरा उसी में—
क्या इन सब योगों का ज्ञान!!

(७)

चिर-मधु-विरही दुखित छोड़ते,
अहो! तुम्हीं पतझड़ उच्छ्वास!
चिर-मधु-सङ्गम-मुदित तुम्हीं हो,
लेते मलयानिल-निश्वास!!
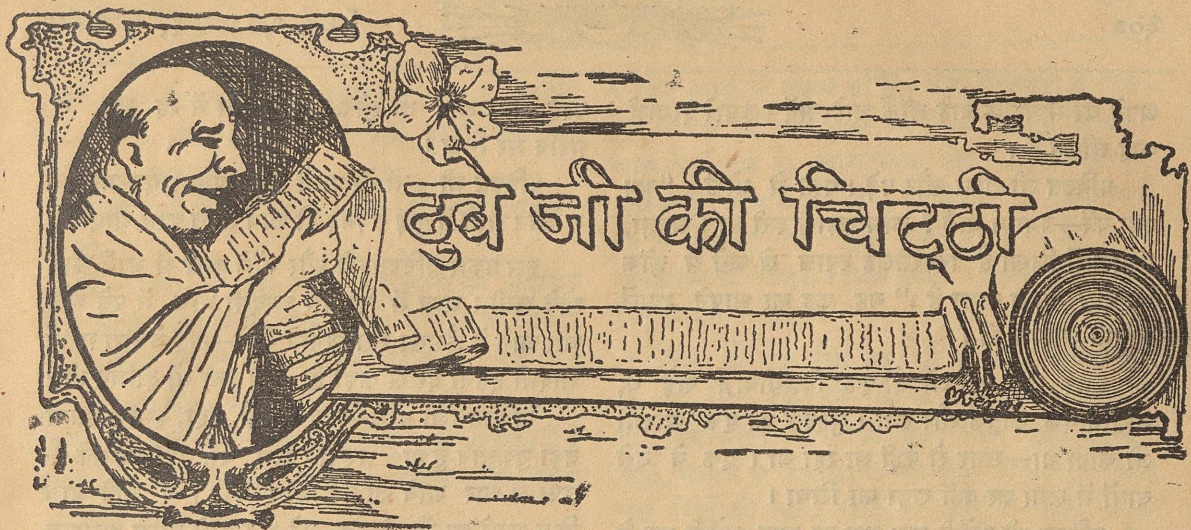
अजी सम्पादक जी महराज,

जय राम जी की!

आप अपने मन में कहेंगे कि दुबेजी महाराज प्रत्येक मास एक न एक नया स्वाँग लाते हैं। परन्तु सम्पादक जी, मैं क्या करूँ? जब लोगों को हिमाक़त की बातें करते देखता हूँ तो जी नहीं मानता। हमारे मुहल्ले में एक महाशय रहते हैं, (वह वृद्ध सज्जन नहीं, जिनके सम्बन्ध में मैं अपनी पिछली चिट्ठियों में लिख चुका हूँ) यह महाशय परले सिरे के दुर्बल-विश्वासी हैं। एक दिन का ज़िक्र सुनिए! आप कहीं बाहर जा रहे थे। असबाब ताँगे पर लद चुका था। घर से टीका लगवा कर और दही-लड्डू खाकर बाहर निकले और ज्योंही ताँगे पर पैर रक्खा त्योंही किसी ने तड़ से छींका। बस फिर क्या था, तुरन्त लौट पड़े और घर के अन्दर घुस गए।

पत्नी ने कहा—जूता बदल कर पहन लो।

वह झल्ला कर बोले—यह देशी जूता थोड़ा ही है जो बदल लूँ, यह शू है शू, यह बदल कर नहीं पहना जा सकता।

पत्नी ने कहा—अच्छा एक गिलास पानी पी लो।

अतएव वह बिना प्यास के एक गिलास ठण्ढा पानी पीकर पुनः निकले। द्वार पर आए ही थे कि घर की बिल्ली आगे से रास्ता काट कर निकल गई। अब क्या था—बहुत ही बिगड़े, बोले—इसी लिए मैं मना करता था कि बिल्ली न पालो। यह ऐसा पाजी जानवर है कि जब कहीं बाहर जाओ तो रास्ता अवश्य काटेगा। ऐसे मनहूस जानवर का पालना किस काम का। यह कहते हुए फिर दरबे के अन्दर हो गए।

पत्नी ने कहा—"सौ दफ़े राम का नाम जप लो; बिल्ली के रास्ते काटने का प्रभाव जाता रहेगा।" अतएव आप राम-नाम जपने लगे। उधर बाहर ताँगे वाला चिल्लाया—"बाबू जी, चलिए! ताँगा कब तक खड़ा रहे।"

बाबू जी ने उत्तर दिया—"आते हैं।" परन्तु इन दो शब्दों के कहने में यह भूल गए कि राम-नाम कितने बार जपा। पत्नी से बोले—"इस ससुरे ताँगे वाले ने भुला दिया—न जाने कितने बार जपा था। अब फिर से जपना पड़ा।" अतएव आपने फिर एक से शुरू किया। ख़ैर, किसी न किसी प्रकार सौ की गिनती समाप्त करके उठे और "श्रीगणेश जी सदा सहाय" कह कर फिर बाहर निकले। इधर पण्डित जी की यह दशा देख कर यार लोगों को दिल्लगी सूझी। ज्योंही उन्होंने दहलीज़ के बाहर पैर रक्खा, त्योंही एक ने "आक् छीं" के साथ दोनली का फ़ायर किया। बस, फिर क्या था—पण्डित जी आग ही तो हो गए, कड़क कर बोले—"अब मुहल्ले भर को आज ही ज़ुकाम होगा—आज ही सब मरेंगे। यहाँ खड़े क्या देखते हो, कोई नाच हो रहा है। देख रहे हो कि एक आदमी बाहर परदेस जा रहा है, फिर भी सामने खड़े होकर ऐन नाक के सामने छींकते हो। अच्छा, अब नहीं जायँगे, चाहे जो हो। तुम लोग आज ख़ूब जी भर के छींक लो।"

इधर पण्डित जी बक रहे थे, उधर भीतर पण्डिताइन कह रही थीं—राम करे छींकने वाले की नाक में कोढ़ टपके। दूसरे का असगुन मनाते हैं। वाह! अच्छे आए।

अपने घर में बैठ के चाहे छींकैं चाहे पादैं। हमारे दरवाज़े काहे छींकते हैं।

पण्डित जी फिर लौट पड़े। पत्नी से बोले—"अब क्या करें—क्या न जायँ? काम बड़ा ज़रूरी था। अच्छा, "शास्त्र में लिखा है कि सोलह श्वास ले लेने से छींक का दोष जाता रहता है।" यह कह कर आपने श्वासें गिननी आरम्भ कीं।

इधर द्वार पर जो दो-एक दिल्लगीबाज़ खड़े थे, उन्होंने एक कौतुक और रचा। मुहल्ले का एक आदमी जो काना था—उधर से कहीं जा रहा था। एक ने उसे बातों में लगा कर वहीं खड़ा कर लिया।

पण्डित जी ज्योंही पुनः द्वार पर आए, त्योंही एक ने उस काने से कहा—"पण्डित जी आगए, अभी तुम्हें पूछ रहे थे।" यह कह कर वह तो हट कर दूर जा खड़ा हुआ। वह काना पण्डित जी के सामने पहुँच कर बोला—क्या हुकुम है पण्डित जी!

पण्डित जी ने जो उनकी सूरत देखी तो हाथ-पैर ढीले हो गए। पहले तो कुछ क्षणों तक हक्का-बक्का होकर उसका मुँह ताकते रहे, तत्पश्चात् एकदम से मुख लाल हो गया। दाँत पीस कर बोले—क्यों बे हरामज़ादे, तुझे भी इसी समय आना था? जी चाहता है कि दूसरी भी फोड़ दूँ—झगड़ा मिटे।

काना बोला—पण्डित जी, मुझसे एक आदमी ने कहा कि पण्डित जी तुम्हें पूछ रहे थे।

पण्डित जी बोले—हाँ, तुम बड़े ख़ूबसूरत हो न, जो तुम्हें पूछ रहा था। और मुहल्ले वाले तो हैं बदमाश, लुच्चे, उन्हें किसी के हानि-लाभ से क्या मतलब? दिल्लगीबाज़ी में पड़े हैं। अच्छी बात है—अब मैं यह मुहल्ला ही छोड़ दूँगा, बस! ताँगे वाले, उतार दे असबाब अब नहीं जाएँगे!

ताँगे वाला बोला—तो मेरी मजूरी तो लाइए।

पण्डित जी—मजूरी? मजूरी कैसी?

ताँगे वाला—इतनी देर से खड़ा हूँ—इतनी देर में तो मैं एक रुपया पैदा करता। वाह, अच्छे आए—कोस भर से बुला के लाए, घण्टा भर खड़ा रक्खा, अब कहते हैं असबाब उतार दो। मुझे क्या, आप चाहे जाइए चाहे न जाइए, मेरी मजूरी दे दीजिए!

पण्डित जी—तो क्या मुफ़्त की मजूरी लेगा?

ताँगे वाला—घण्टा भर से खड़ा नहीं हूँ—मुफ़्त की काहे को। आप तो छींक-पाद के फेर में रह गए, मैं ग़रीब मर मिटा।

पण्डित जी—तो तेरे वास्ते हम अपना सगुन-असगुन न देखें। रास्ते में कुछ गड़बड़ हो जाय तो तू काम आएगा।

इस प्रकार पण्डित जी और ताँगे वाले में झायँ-झायँ होने लगी। अन्त में दो-चार आदमी बीच में पड़े और चार आने में फ़ैसला करा दिया। बोले—यह बेचारा ग़रीब आदमी इतनी देर से खड़ा है—इसे कुछ तो दीजिए ही।

पण्डित जी बोले—यह अच्छी रही, हमारा इतना बड़ा नुक़सान हुआ—ज़रूरी काम था, नहीं जा सके—ऊपर से चार आने की यह चपत पड़ी। न जाने आज किस ससुरे का मुँह देख कर उठे थे। ताँगे वाला असबाब उतार कर और चार आने लेकर चल दिया।

पण्डित जी ने उस दिन क्रोध के मारे भोजन नहीं किया। मुझसे दूसरे दिन भेंट हुई, मैंने पूछा—यह कल क्या मामला हुआ?

पण्डित जी बोले—मामला जो कुछ हुआ अच्छा हुआ—मैं यह मुहल्ला ही छोड़े दे रहा हूँ।

मैंने कहा—आप इतने दुर्बल-विश्वासी हैं, यह मुझे नहीं मालूम था।

पण्डित जी बोले—क्यों? शास्त्र के अनुसार कार्य करना दुर्बल-विश्वास है? आप तो हैं नास्तिक, कुछ मानते-वानते नहीं। हम सनातनधर्मी और कर्मकाण्डी ब्राह्मण ठहरे, हमें तो मानना पड़ता है।

मैंने पूछा—यदि आप कल चले जाते तो क्या होता?

पण्डित जी—होता कुछ ज़रूर, चाहे जो होता। सम्भव है, रेल ही लड़ जाती।

मैं—रेल तो कहीं लड़ी नहीं।

पण्डित जी—मैं नहीं गया, इससे नहीं लड़ी। रेल न लड़ती तो और कुछ उपद्रव हो जाता—होता कुछ जरूर! कुछ ठिकाना है—चार-चार अपशकुन—दो दफ़े छींक हुई, एक दफ़े बिल्ली रास्ता काट गई। ख़ैर, यह सब हुआ था—कोई चिन्ता नहीं, हमने उसका उपचार कर लिया। परन्तु अन्त समय वह साला काना सामने आ खड़ा हुआ, इसका कोई उपचार तो शास्त्र में है नहीं, क्या करता, नहीं गया!

काना विप्र मिलै मग माँही।
प्राण जायँ कछु संशय नाहीं॥

मैं—तब तो आपने बड़ा पुण्य कमाया। यदि आप जाते तो रेल तो लड़ती केवल आपकी हत्या करने को, अन्य लोग मुफ़्त में मरते।

पण्डित जी सिर हिलाकर बोले—हाँ, बात तो ऐसी ही थी।

मैं—शास्त्र भी क्या चीज़ है—शास्त्र की बदौलत आप स्वयम् भी बच गए और दूसरों को भी बचा लिया। यदि शास्त्र न जानते होते तो काहे को बचते—क्यों न?

पण्डित जी—अब आप राह पर आए। शास्त्र की बड़ी महिमा है। ज्योतिषी लोग दैवज्ञ क्यों कहलाते हैं? इसी लिए कि उन्हें भूत, वर्त्तमान, भविष्य तीनों कालों का ज्ञान रहता है।

मैं—तो आपको भी तीनों काल का ज्ञान रहता होगा?

पण्डित—हाँ, रहता क्यों नहीं—रहे न तो काम कैसे चले? ज्ञान न होता तो कल चले न जाते? यदि कल चले जाते तो बस × × ×।

मैं—सब समाप्त हो जाता?

पण्डित—और क्या! इन सब बातों का विचार रखना चाहिए। पहले हम दो-तीन बरस × × × मुहल्ले में रहे। वहाँ की दशा क्या बताऊँ। उस मुहल्ले में पाँच-छः काने हैं। घर से किसी समय निकलो, एक न एक काना सामने खड़ा है। नाक में दम हो गया। क्या कहें दुबे जी, जब कभी कहीं आवश्यक कार्य से जाना हो तो पहले दो आदमी दोनों नाकों पर खड़े कर देते थे कि कोई काना हो तो उसे युक्ति से हटा दें। फिर भी अधिकतर मिल ही जाते थे। अन्त में जब बहुत तङ्ग हो गए तो वह मुहल्ला छोड़ दिया।

मैं—ओफ़ ओह! तब तो इन कानों का एक अलग मुहल्ला बसाना चाहिए।

पण्डित—हाँ, है तो ऐसा ही।

मैंने पण्डित जी से अधिक वाद-विवाद करना उचित न समझा; क्योंकि वह ठहरे कुत्ते की दुम, जो कभी सीधी होती ही नहीं। सो सम्पादक जी, यह दशा है। जिस जाति में ऐसे लोग हों, उससे क्या आशा रक्खी जा सकती है?

ऐसे-ऐसे लोग हैं जो घर से बाहर जाते समय ऐसा रूप बनाते हैं कि मानो कालेपानी जा रहे हों। तीन-तीन, चार-चार दिन पहले से सायत-मुहूर्त्त देखा जाता है। ऐसों के लिए सप्ताह में एकाध ही दिन ऐसा निकलता है जिस दिन श्रीमान् कहीं परदेश की यात्रा कर सकते हैं, अन्यथा आज दिशा-शूल है, आज नक्षत्र ठीक नहीं, आज बाएँ चन्द्रमा है, आज भद्रा है, इसी फेर में रहते हैं। जिस समय घर से निकलते हैं तो ऐसा प्रबन्ध रहता है कि मानों वायसराय की सवारी निकल रही है। कोई आदमी नङ्गे सिर सामने न आए।

किसी को नङ्गे सिर देखा तो ललकारा, हटो सामने से, या सिर ढक लो—जानते नहीं, फलाने जा रहे हैं? यह औरत जो ख़ाली डोल लिए खड़ी है, इसे कहो, सामने से हट जाय—या डोल में पानी भर ले। इस बिल्ली को मारो, रास्ते में खड़ी है—ऐसा न हो कि रास्ता काट जाय। यदि घटनावश किसी ने टोक दिया—"कहिए महाराज, कहाँ चले?" ऐ है! बस ग़ज़ब हो गया। बरस पड़े—"आप भी अजीब आदमी हैं, इतने बड़े हो गए, पर तमीज़ न आई। सरासर देख रहे हो कि काम से जा रहे हैं, फिर भी टोक दिया! वाह साहब, वाह।" जो किसी ने इस पर प्रश्न कर दिया कि—"क्यों जनाब, टोकने से क्या हो गया?" तो और भी बिगड़े। बोले—"आप तो अङ्गरेज़ी पढ़ कर नास्तिक हो गए, आप इन बातों को क्या समझ सकते हैं।"

नास्तिक की परिभाषा भी कितनी बढ़िया है। जो छींक और टोकने में कोई हानि न समझे, वह नास्तिक। ख़ुदा हाफ़िज़ है इन अक़्ल के दुश्मनों का!

प्रातःकाल उठ कर यदि कहीं हाथी और बन्दर का नाम ले लीजिए तो आफ़त हो जाय। ये दोनों ऐसे प्राणी ईश्वर ने उत्पन्न किए हैं कि प्रातःकाल उठ कर इनका नाम ले लिया जाय तो कोई न कोई अनिष्ट होने की सम्भावना रहती है!

सम्पादक जी, ऐसी-ऐसी मूर्खताएँ हम लोगों में भरी पड़ी हैं कि उनका वर्णन करते हुए लज्जा मालूम होती है।

ईश्वर हम लोगों को इतनी बुद्धि दे कि हम लोग इन मूर्खताओं से अपनी रक्षा करें।

भवदीय,

—विजयानन्द (दुबे जी)

भौजाई

[ले० श्री० लाला बाबूराम जी श्रीवास्तव]
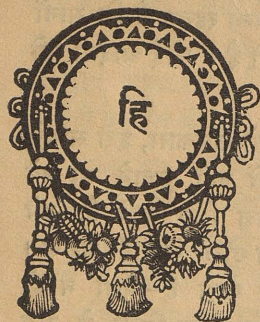
हिन्दू-समाज में भौजाई का नाता भी एक विलक्षण नाता है। वर्त्तमान युग में इस नाते का निभाना स्त्री-जाति के लिए अत्यन्त संयम का काम है। जिस प्रकार नारी-जाति की सच्चरित्रता पर अन्य सामाजिक कुरीतियों द्वारा कुठाराघात किया गया है, उसी प्रकार पुरुषों ने अपनी कुटिल स्वार्थ-सिद्धि के साधन में इस नाते द्वारा भी स्त्री-जाति पर घोर अत्याचार किया है। इसकी ओट में नारी-जाति के प्रति ऐसे वीभत्स एवं कलुषित उद्गारों का समावेश किया गया है कि शिष्ट-समाज इस अन्याय की तरफ़ उँगली उठाए बिना नहीं रह सकता। स्त्रियों की अशिक्षा ने तथा परदा-प्रथा की विषम वायु में पले हुए उनके अनुभव-हीन जीवन ने और इनके परिणाम-स्वरूप उनकी मानसिक दुर्बलता ने इस नाते के सञ्चालन की बागडोर पुरुषों के हाथों में और भी दृढ़ कर दी है। स्त्री-जाति कर भी क्या सकती है? शक्तिहीन स्त्री-समाज को अभी पुरुषों के ही अधीन रहना पड़ रहा है। स्त्रियों की ऐसी दीन-हीन अवस्था में इस भौजाई के नाते ने बिना किसी रोक-टोक के स्त्री-समाज पर अपना पूरा आधिपत्य जमा लिया है।

नव-बधू के पति-गृह में पदार्पण करते ही देवर-भौजाई की छेड़-छाड़ शुरू हो जाती है। प्रायः देवर-भौजाई एक ही अवस्था के होते हैं। पति के छोटे-छोटे भाई-बहिन भी इस छेड़-छाड़ में बिना किसी सङ्कोच के भाग लेते हैं। कोई नव-बधू के वस्तु उतारता है, कोई घूँघट-पट खींचता है और कोई उसे सर्वाङ्ग नग्न करना चाहता है। बालकों की इस अपरिपक्व अवस्था में, जबकि उनके चरित्र-सङ्गठन पर विशेष ध्यान देना चाहिए, और उनके चरित्र-प्रवाह को ब्रह्मचर्य की तरफ़ मोड़ना चाहिए, उनको ऐसी-ऐसी कुत्सित क्रीड़ाओं में डाल कर, उनके कोमल हृदय में विषय-वासनाओं का बीजारोपण किया जाता है और उनके व्यक्तिगत समस्त जीवन को तथा उनके द्वारा सामाजिक जीवन को विषम बना दिया जाता है; यह कैसे खेद की बात है।

नारी-जाति स्वभाव से ही लज्जाशील होती है। पति-गृह में नव-बधुओं की लज्जावश जो करुण दशा होती है वह हिन्दू-समाज भली-भाँति जानता और समझता भी है। कहाँ तो परदा-प्रथा में जकड़ी हुई नारी-जाति का शुष्क हृदय और नीरस जीवन, और कहाँ देवर-भौजाई का निस्सङ्कोच व्यवहार? नव-बधू की ऐसी मानसिक दुर्बलता में प्रायः देवर अपनी स्वार्थ-सिद्धि में सफल हो जाते हैं। कामोन्मत्त अपनी अन्ध-वासना के वशीभूत होकर क्या नहीं कर सकता? क्या प्यासा सरोवर के तट पर बैठ कर अपनी प्यास बुझाने में सङ्कोच करता है? क्या पूर्णिमा का चन्द्र देख कर जल-सिन्धु स्वभावतः नहीं उमड़ता? फिर देवर-भौजाई के तो पारस्परिक व्यवहार में कोई बाधा भी उपस्थित नहीं होती। घर के बड़े-बूढ़ों के 'बुढ़ापे का सुख' भला इससे अधिक और क्या हो सकता है। प्रायः ननद-भौजाई में भी हँसी-मज़ाक़ का आम रिवाज है। ननद चाहे विवाहिता हो या कुमारी, उसे अपनी भौजाई के साथ हँसी-दिल्लगी करने का पूर्ण अधिकार होता है। नव-बधू को भी अपने नए घर में कोई न कोई साथी अपनी पति-सेवा के उपरान्त समय काटने के लिए चाहिए ही। मनुष्य अकेला नहीं बैठ सकता, और फिर यह उम्र तो अकेले बैठने की होती ही नहीं। इसमें आमोद-प्रमोद की सामग्री कुछ न कुछ अवश्य होनी चाहिए। ऐसी दशा में नव-बधू अपनी ननद से और ननद द्वारा उसकी अन्य सखी-सहेलियों में अपना शेष समय व्यतीत करती है। स्त्री-शिक्षा के अभाव से उनके मस्तिष्क में कुछ ऐसे आदर्श विचारों का कोष नहीं होता, जिसके द्वारा उनके परस्पर दैनिक व्यवहार से उनकी तथा सामाजिक उन्नति की आशा की जा सके। पति-गृह में

नव-वधुओं पर दाम्पत्य क्रीड़ाओं का नवीन प्रभाव पड़ता है और वह अपनी सखियों से निस्सङ्कोच उसी विषय पर बातचीत करती रहती हैं। इस प्रकार हँसी-मज़ाक़ करते-करते उनका आपस में दिल खुल जाता है और प्रायः सारा दिन इन्हीं रसीली बातों में कट जाता है। कुमारियों के हृदय पर इन बातों का पूरा प्रभाव पड़ना अवश्यम्भावी है। मेरा यह तात्पर्य नहीं है कि आमोद-प्रमोद को जीवन में स्थान ही न देना चाहिए, परन्तु पात्र और समय का विचार रखना आवश्यक है। देवर अथवा ननद-भौजाई के आमोद-प्रमोद का जो वर्त्तमान रूप है वह अत्यन्त घृणित है। बाल अथवा प्रौढ़ विधवाओं के हृदय पर इस आमोद-प्रमोद का भला क्या प्रभाव पड़ता होगा, यह सोचने की बात है।

होली के अवसर पर देवर और भौजाई की होली मुख्यतः विख्यात है। कपोल और अधरों का स्पर्श, अबीर और गुलाल के बहाने मनमाना ऊधम करने को मिल ही जाता है। रङ्ग-पाशी के समय पकड़-धकड़ में भी ख़ूब मज़ा आता है। गुप्तेन्द्रियों तक लुके-छिपे 'मदाख़लत बेजा' आजकल माफ़ समझी जाती है। इस क्रीड़ा का जो प्रभाव नवयुवतियों और नवयुवकों के कोमल हृदय पर पड़ता है, वह जीवन में गहरा परिवर्त्तन कर देता है। किसी चर्म-रोग की चिकित्सा की जा सकती है, परन्तु हृदय का रोग असाध्य है। काम-विद्युत् का जो आघात मनुष्य के हृदय पर पड़ता है वह जीवन-भर उसे तड़पाता रहता है। क्या जाने कितनी अबलाएँ अपने दुर्बल हृदय पर इस आघात को न सह सकने के कारण पथभ्रष्ट हो जाती हैं। निस्सन्देह उनका चित्त सतीत्व के स्थान से डिग जाता है। धर्म का स्थान मन है। शरीर मन का केवल कर्म-यन्त्र है। यदि मनुष्य शरीर द्वारा कर्म न भी करे और उसका मन विचलित हो जाय तो वह धर्मच्युति है। तुलसीदास जी ने बिलकुल ठीक कहा है—

बिनु अवसर भय ते रहि जोई।
जानेहु अधम नारि जग सोई॥

अर्थात्—जिस स्त्री का मन विचलित हो जाता है, वह यद्यपि किसी ज्ञात अथवा अज्ञात भय से पातिव्रत्य का पालन करती है, तथापि वह अधम और पतिता है। आज भौजाई के नाते कितनी रमणियों के मन विचलित नहीं होते? कितने युवक काम-वेदना से पीड़ित नहीं होते? इस महान् अत्याचार का उत्तरदायित्व किस पर है? हिन्दू-समाज की कुरीतियों पर! क्या हमने कभी अपना प्राचीन इतिहास पढ़ा है और उस पर विचार किया है? वेदों और धर्मशास्त्रों को जाने दीजिए, वे विशाल और दुरूह हैं, पर यदि हमने रामायण के सदुपदेशों पर ही ध्यान दिया होता तो आज पति और पातिव्रत्य-धर्म की यह दुर्दशा न होती। पातिव्रत्य-धर्म का जैसा सुन्दर आदर्श तुलसीदास जी ने संसार के सामने उपस्थित किया है वैसा आज तक न तो किसी समाज के पुरुष ने और न किसी जाति के साहित्य ने ही किया है। वे श्रीरामचन्द्र जी के मुख से एक स्थान पर कहलवाते हैं—

मोहि अतिशय प्रतीत मन केरी।
जेहि सपनेहु पर नारि न हेरी॥

इसके बाद वे अनुसूया जी के मुख से निम्नलिखित अमूल्य पंक्तियाँ कहलवाते हैं—

उत्तम के अस बस मन माहीं।
सपनेहु आन पुरुष जग नाहीं॥

तुलसीदास जी के इन उपदेशों में कितना आध्यात्मिक आदर्श भरा पड़ा है। प्रेम की एकता, जो ईश्वर का साक्षात् स्वरूप है, इस आदर्श में पत्नी और पतिव्रत्य-धर्म द्वारा कितनी सुन्दरता से केन्द्रित किया गया है! इसी आधार पर वे आगे चल कर लिखते हैं—

बिन श्रम नारि परम गति लहई।
पति-व्रत धर्म छाँड़ छल गहई॥

क्या हिन्दू-समाज ने इस ओर कभी ध्यान दिया? क्या उसने अपनी गृह-लक्ष्मियों को इस पदवी के योग्य बनाने का कभी प्रयत्न किया है? उसने कहीं साली का और कहीं भौजाई का नाता आरोप कर स्त्रियों के सतीत्व को भ्रष्ट करने में कैसी सहायता दी है, यह बतलाने की आवश्यकता नहीं। भौजाई का नाता पहले कैसा पवित्र माना जाता था, इसका एक उदाहरण रामायण में लक्ष्मण और सीता के चरित्र में मिलता है। लक्ष्मण जी की माता सुमित्रा का कैसा सुन्दर उपदेश है—

तात तुम्हार मात बैदेही।
पिता राम सब भाँति सनेही॥

यह माताओं का सदुपदेश आज अपनी सन्तान के प्रति कहाँ है ? श्रीलक्ष्मण जी ने इस सदुपदेश को कहाँ तक पालन किया था, इसका एक और उदाहरण लीजिए। सुग्रीव से भेंट होने पर जब सीता जी के वस्त्राभूषण, जो वे सुग्रीव के आश्रम में छोड़ गई थीं, श्रीरामचन्द्र जी ने लक्ष्मण को दिखलाए और पूछा कि क्या तुम इन्हें पहचानते हो ? तब लक्ष्मण जी कहते हैं—

कुण्डलं नैव जानामि नैव जानामि भूषणम्।
नूपुर एव जानामि नित्यं पादामि वन्दनात्॥

अर्थात्—मैं कुण्डल कङ्कणादि आभूषण और वस्त्रों को नहीं पहचानता, मैं केवल नूपुरों को पहचानता हूँ, क्योंकि मैं नित्य उनके चरणों की ही वन्दना करता था।

यह था आदर्श देवर-भौजाई का। इन्हीं श्रेष्ठ आर्य-वीरों की सन्तान आज किस अधोगति को पहुँच गई है ! हमारा साहित्य सदुपदेशों से भरा पड़ा है, परन्तु स्वार्थ-लोलुपता से अन्धा हिन्दू-समाज इस ओर आँख उठा कर भी नहीं देखता।

आजकल स्त्री-समाज में धीरे-धीरे जाग्रति पैदा हो रही है। वह अब अपने पैरों पर खड़ा होना चाहता है। क्या पुरुषों का कर्त्तव्य नहीं है कि वे इस पुण्य कार्य में उनकी सहायता करें और अपना दाम्पत्य जीवन सुखमय बनावें ? फिर ऐसी कुरीतियों को उखाड़ फेंकने में क्यों इतना विलम्ब किया जाता है ? स्त्री-समाज स्वयं इन कुरीतियों को मिटा देगा, परन्तु समय की आवश्यकता है। यदि पुरुष-समाज अब भी आँखें खोल कर स्त्रियों के सुधार की तरफ़ ध्यान दे, तो शीघ्र ही इस नारकीय काण्ड का अन्त किया जा सकता है।

कौन ?

[रचयिता—श्री० नृसिंह पाठक 'अमर' विशारद]

(१)

कौन सुप्त मम हृतन्त्री को,
आकर देता छेड़ अजान ?
कौन प्रसुप्त भाव को सन्तत—
जगा, बनाता विकल महान ?

(२)

दिव्य-मिलन की बातें मेरे,
कानों में कह जाता कौन ?
कौन अपूर्व रहस्य बताता,
'उसकी याद' दिलाता कौन ?

(३)

भूतकाल का सुखमय जीवन,
वर्त्तमान का दुखमय चित्र ?
भावी के फिर सुखद मिलन को,
कौन दिखाता सखी ! विचित्र ?

[ले० श्री० शीतलासहाय जी, बी० ए०]

हिन्दू-त्योहार इतने महत्वपूर्ण होते हुए भी, लोग इनकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में कुछ नहीं जानते ! स्त्रियाँ जो विशेष रूप से इन्हें मानती हैं, वे भी अपने त्योहारों की वास्तविक उत्पत्ति से बिलकुल अनभिज्ञ हैं । कारण यही है कि हिन्दी-संसार में अब तक एक भी ऐसी पुस्तक प्रकाशित नहीं हुई है । वर्त्तमान पुस्तक के सुयोग्य लेखक ने छः मास कठिन परिश्रम करने के बाद यह पुस्तक तैयार कर पाई है । शास्त्र-पुराणों की खोज कर त्योहारों की उत्पत्ति लिखी गई है । इन त्योहारों के सम्बन्ध में जो कथाएँ प्रसिद्ध हैं, वे वास्तव में बड़ी रोचक हैं । ऐसी कथाओं का भी सविस्तार वर्णन किया गया है । प्रत्येक त्योहार के सम्बन्ध में जितनी अधिक खोज से लिखा जा सकता था, लिखा गया है । पुस्तक सजिल्द है, ऊपर आर्ट-पेपर का प्रोटेक्टिङ्ग कवर (Protecting Cover) भी दिया गया है, जिस पर देवी सावित्री का तिरङ्गा चित्र है । काग़ज़ ३१ पाउण्ड ऐण्टिक; मूल्य केवल १।); स्थायी ग्राहकों से १=) मात्र ! पुस्तक का तीसरा संशोधित संस्करण अभी-अभी प्रकाशित हुआ है । १,००० पुस्तकें हाथोंहाथ बिक चुकी हैं !

[ले० श्री० जी० एस० पथिक, बी० ए०, बी० कॉम०]

इस पुस्तक में भारतीय स्त्री-समाज का इतिहास बड़ी रोचक भाषा में लिखा गया है। इसके साथ स्त्री-जाति के महत्व, उससे होने वाले उपकार, जाग्रति एवं सुधार को बड़ी उत्तमता और विद्वत्ता से प्रदर्शित किया गया है । पुस्तक में वर्णित स्त्री-जाति की पहली अवस्था, उन्नति एवं जाग्रति को देख कर हृदय छटपटा उठता है और उस काल को देखने के लिए लालायित हो जाता है । साथ ही साथ वर्त्तमान स्त्री-समाज की करुणा-जनक स्थिति का सच्चा और नग्न चित्र चित्रित किया गया है। मूल्य केवल २।); स्थायी ग्राहकों से १।।।=) मात्र !

व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय, इलाहाबाद

[लेखक—'एक निर्वासित मेजुएट']

नायक और नायिका के पत्रों के रूप में यह एक दुःखान्त कहानी है। प्रणय-पथ में निराशा के मार्मिक प्रतिघातों से उत्पन्न मानव-हृदय में जो-जो कल्पनाएँ उठती हैं और उठ-उठकर चिन्ता-लोक के अस्फुट साम्राज्य में विलीन हो जाती हैं, वे इस पुस्तक में भली-भाँति व्यक्त की गई हैं। हृदय के अन्तःप्रदेश में प्रणय का उद्भव, उसका विकाश और उसकी अविरत आराधना की अनन्त तथा अविच्छिन्न साधना में मनुष्य कहाँ तक अपने जीवन के सारे सुखों की आहुति कर सकता है, ये बातें इस पुस्तक में एक अत्यन्त रोचक और चित्ताकर्षक रूप से वर्णन की गई हैं। जीवन-संग्राम की जटिल समस्याओं में मानवी उत्कण्ठाएँ किस प्रकार विधि के कठोर विधान से एक अनन्त अन्धकार में अन्तर्हित हो जाती हैं एवं चित्त की सारी सञ्चित आशाएँ किस प्रकार निराशा के भयानक गह्वर में पतित हो जाती हैं—इसका जो हृदय-विदारक वर्णन इस पुस्तक में किया गया है, वह सर्वथा मौलिक एवं नवीन है। आशा-निराशा, सुख-दुख, साधन-उत्सर्ग एवं उच्चतम आराधना का सात्विक चित्र पुस्तक पढ़ते ही कल्पना की सजीव प्रतिमा में चारों ओर दीख पड़ने लगता है। इस पुस्तक में व्यक्त वाणी की अनुपम विलीनता एवं अव्यक्त स्वरों के उच्चतम सङ्गीत का एक हृदयग्राही मिश्रण है। छपाई-सफ़ाई दर्शनीय हुई है। तिरङ्गा आर्ट पेपर का Protecting cover भी दिया गया है। सुन्दर सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल ३) स्थायी ग्राहकों से २।)

व्यवस्थापिक 'चाँद' कार्यालय, इलाहाबाद

शान्ता

इस पुस्तक में देश-भक्ति और समाज-सेवा का सजीव वर्णन किया गया है। देश की वर्त्तमान अवस्था में हमें कौन-कौन सामाजिक सुधार करने की परमावश्यकता है; और वे सुधार किस प्रकार किए जा सकते हैं, आदि आवश्यक एवं उपयोगी विषयों का लेखक ने बड़ी योग्यता के साथ दिग्दर्शन कराया है। शान्ता और गङ्गाराम का शुद्ध और आदर्श-प्रेम देखकर हृदय गद्गद हो जाता है। साथ ही साथ हिन्दू-समाज के अत्याचार और षड्यन्त्र से शान्ता का उद्धार देखकर उसके साहस, धैर्य और स्वार्थ-त्याग की प्रशंसा करते ही बनती है। मूल्य केवल लागत-मात्र ॥।) बारह आने है; स्थायी ग्राहकों के लिए ॥-); पुस्तक दूसरी बार छपकर तैयार है।

घरेलू चिकित्सा

[ले० अनेक सुविख्यात डॉक्टर, वैद्य और हकीम]

'चाँद' के प्रत्येक अङ्क में बड़े-बड़े नामी डॉक्टरों, वैद्यों और अनुभवी बड़े-बूढ़ों द्वारा लिखे गए हज़ारों अनमोल नुस्ख़े प्रकाशित हुए हैं, जिनसे सर्व-साधारण का बहुत-कुछ मङ्गल हुआ है, और जनता ने इन नुस्ख़ों की सचाई तथा इनके प्रयोग से होने वाले लाभ की मुक्त-कण्ठ से प्रशंसा की है। इनके द्वारा आए-दिन डॉक्टरों की भेंट किए जाने वाले सैकड़ों रुपए बचाए जा सकते हैं। इस महत्वपूर्ण पुस्तक की एक प्रति प्रत्येक सद्गृहस्थ को अपने यहाँ रखनी चाहिए। छपाई-सफ़ाई अत्युत्तम और सुन्दर। मोटे चिकने काग़ज़ पर छपी हुई पुस्तक का मूल्य केवल ॥।) रक्खा गया है। स्थायी ग्राहकों से ॥-) मात्र!

स्थायी ग्राहकों को हमारे यहाँ की प्रकाशित सभी पुस्तकें, केवल प्रचार की दृष्टि से, पौने मूल्य में ही दी जाती हैं, इसे स्मरण रखिए!

उमासुन्दरी

[ले० श्रीमती शैलकुमारी देवी]

इस पुस्तक में पुरुष-समाज की विषय-वासना, अन्याय तथा भारतीय रमणियों के स्वार्थ-त्याग और पातिव्रत्य का ऐसा सुन्दर और मनोहर वर्णन किया गया है कि पढ़ते ही बनता है। सुन्दरी सुशीला का अपने पति सतीश पर अगाध प्रेम एवं विश्वास, उसके विपरीत सतीश बाबू का उमासुन्दरी नामक युवती पर मुग्ध हो जाना, उमासुन्दरी का अनुचित सम्बन्ध होते हुए भी सतीश को कुमार्ग से बचाना और उपदेश देकर उसे सन्मार्ग पर लाना आदि सुन्दर और शिक्षाप्रद घटनाओं को पढ़कर हृदय उमड़ पड़ता है। इतना ही नहीं, इसमें हिन्दू-समाज की स्वार्थपरता, काम-लोलुपता, विषय-वासना तथा अनेक कुरीतियों का हृदय-विदारक वर्णन किया गया है। छपाई-सफ़ाई सब सुन्दर है। मूल्य केवल ॥।) आने है; स्थायी ग्राहकों के लिए ॥-); दूसरी बार पुस्तक छपकर तैयार है।

गौरी-शङ्कर

आदर्श-भावों से भरा हुआ यह सामाजिक उपन्यास है। शङ्कर के प्रति गौरी का आदर्श-प्रेम सर्वथा प्रशंसनीय है। बालिका गौरी को धूर्तों ने किस प्रकार तङ्ग किया, बेचारी बालिका ने किस प्रकार कष्टों को चीरकर अपना मार्ग साफ़ किया, अन्त में चन्द्रकला नाम की एक वेश्या ने उसकी कैसी सच्ची सहायता की और उसका विवाह अन्त में शङ्कर के साथ कराया। यह सब बातें ऐसी हैं, जिनसे भारतीय स्त्री-समाज का मुखोज्ज्वल होता है। यह उपन्यास निश्चय ही समाज में एक आदर्श उपस्थित करेगा। छपाई-सफ़ाई सभी बहुत साफ़ और सुन्दर है। एक बार अवश्य पढ़िए। पुस्तक दूसरी बार छपकर तैयार है। मूल्य केवल ॥।); स्थायी ग्राहकों से ॥-) मात्र!

व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय, इलाहाबाद

डॉक्टर केशवदेव शास्त्री, एम० डी०

[ले० श्री० जगदीशचन्द्र जी शास्त्री, काव्यतीर्थ]

डॉक्टर शास्त्री का नाम दिल्ली के बच्चे-बच्चे की ज़बान पर था। पचास साल में भी पूरा जवान था, शरीर में यौवन, मुख पर तेज और आँखों में ज्योति थी। शोक, वह रोबीली आकृति आज नहीं है। दिल्ली उसके बिना सूनी है, क्या काँङ्ग्रेस, क्या आर्यसमाज, क्या हिन्दू-सभा—सब उसके वियोग में रोते हैं, नवयुवक उसके बिना तड़पते हैं। दिल्ली में वह सिंहनाद कौन करेगा? बड़ी-बड़ी उलझनों को कौन सुलझाएगा? निराश नवयुवकों को मार्ग कौन दिखाएगा? बस यही समस्या है, जब वह था तब यह प्रश्न नहीं उठे। अब वह नहीं है, हम रोते हैं, हमारी आँखें रोती हैं—एक नहीं, अनेक झमेलों का सामना है। हम नहीं जानते, अपने को आश्वासन दिलाएँ, पतिपरायणा अमेरिकन देवी के आगे श्रद्धा की झोली बिखेर दें या उसकी आत्मा की सद्गति के लिए प्रार्थना करें। उस आत्मा को शान्ति देने के लिए करना बहुत-कुछ चाहिए, पर हमारी सामर्थ्य से बाहर है, यही बहुत है उनकी गाथा दूसरों को सुना दें, संसार को उनकी महत्ता और लोकप्रियता का परिचय मिले।

डॉ० शास्त्री का जन्म मॉण्टगुमरी के कमालिया क़स्बे में हुआ था। वंश अरोड़ा था और पिता एक अच्छे सम्पन्न व्यक्ति थे। ये तीन भाई थे और पिता जी उनके लायक़ अच्छी ज़मींदारी छोड़ कर मरे थे। पहले गाँव में और पीछे कुछ दिन लाहौर के डी० ए० वी० कॉलेज में भी पढ़े। बस, यहीं से इन्होंने सैनिक का जीवन धारण किया। बड़े भाई वकील हैं, वही ख़र्च देते थे। उन्होंने कहा, विवाह कर लो, पर वह नहीं माने। पहला मोर्चा घर वालों से ही पड़ा, बस क्या था, ख़र्च बन्द हो गया, एफ़० ए० की पढ़ाई पूरी ही नहीं हो सकी। फ़ोटोग्राफ़ी जानते थे, करने लगे, जो मिलता उसी पर सन्तोष था। इसी चक्कर में घूमते-फिरते अजमेर पहुँचे। फ़ोटोग्राफ़ी छोड़ी, प्रेस के फेर में पड़े। पहले छोटे से छोटा काम करना पड़ा, पर एक दिन ऐसा भी आया कि प्रसिद्ध 'वैदिक प्रेस' के अध्यक्ष हुए। तत्पश्चात् 'सद्धर्म प्रचारक' प्रेस जब जालन्धर से हरिद्वार आया, तो उसमें पहुँचे। वहाँ के भी प्रबन्धक बने। लेकिन यही उनके जीवन की समाप्ति नहीं थी। इन दिनों वे आर्यसमाज में अच्छा काम करने लगे थे। परन्तु संस्कृत जानने की आवश्यकता इन्हें प्रतीत हुई। बस, ऐसे प्रतिभा-सम्पन्न के लिए यह विचार ही काफ़ी था। प्रेस की मैनेजरी भी छोड़ी और रावलपिण्डी जा पहुँचे। पं० सीताराम जी शास्त्री को गुरु बनाया और कुछ दिनों में पञ्जाब-यूनिवर्सिटी से शास्त्री की उपाधि प्राप्त की। अभी और भी बड़े-बड़े मनसूबे थे, उनको पूरा करना खेल नहीं था, उनके लिए कोई स्वतन्त्र वृत्ति की आवश्यकता थी। इसी से वह कलकत्ते पहुँचे और महामहोपाध्याय कविराज पं० द्वारिकानाथ जी के शिष्य बने। गुरु की असीम कृपा और अपने परिश्रम से आयुर्वेद का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया और थोड़े ही दिनों में भिषगाचार्य की उपाधि प्राप्त की।

उनकी देश-सेवा का श्रीगणेश यहीं से होता है। अध्ययन समाप्त हुआ और यह प्रश्न उठा कि कार्य-क्षेत्र कहाँ बनाया जाय। सम्भवतः वह १९०७ या ८ का ज़माना था। काशी दक़ियानूसी पण्डितों का गढ़ था, नए-पुराने पण्डित मात्र सब एक ओर थे, आर्यसमाज के नाम पर गालियों की बौछार होती थी, नगर-कीर्त्तनों पर पत्थर बरसते थे। डॉ० शास्त्री वीर योद्धा थे, इन बातों ने उन्हें इतना उकसाया कि काशी में उन्होंने आसन जमाया। उस समय तक आर्यसमाज को पाला मारा हुआ था, डॉ० शास्त्री ने जाते ही जान-सी डाल दी। एक साधारण शाखा ने बड़े-बड़े धुरन्धर पण्डितों से लोहा लेने की ठानी। वेदविद्यालय, दयानन्द-स्कूल और रात्रि-पाठशालाएँ खोल डालीं। धीरे-धीरे आर्यसमाज का मार्ग साफ़ होगया। काशी से 'नवजीवन' नामक पत्र निकला और ख़ूब चला, गली-गली पढ़ा जाने लगा।

समाज-सुधार के आन्दोलनों में भाग लेने के लिए डॉ० शास्त्री ने बहुत पहले पैर बढ़ाया। स्वर्गीय पं० तुलसीराम जैसे विद्वान् और महात्मा हंसराज जैसे नेता उस समय खान-पान से बहुत घबड़ाते थे। सन् १६१० में 'नवजीवन' में इस विषय पर ख़ूब विवाद छिड़ा, परन्तु शास्त्री जी अपने सिद्धान्त पर अचल रहे, प्रमाणों की झड़ी-सी लगा दी। यही नहीं, जब मर्दुमशुमारी की रिपोर्ट में अछूतों

स्वर्गीय डॉक्टर केशवदेव जी शास्त्री, एम० डी०

(अमेरिका में लिया हुआ चित्र)

को हिन्दुओं में गिनने न गिनने का प्रश्न उठा, डॉ० शास्त्री ने उसमें पर्याप्त भाग लिया। एक सभा का प्रबन्ध कर पं० शिवकुमार शास्त्री जैसे कट्टर पण्डित को सभापति के आसन पर ला बैठाया।

देशाटन का उन्हें बड़ा शौक़ था। हर महीने कहीं न कहीं प्रचार करते ही रहते थे। पञ्जाब और संयुक्त-प्रान्त में तो प्रसिद्ध थे ही, पर बङ्गाल और बरमा तक दौरा कर आए थे और वहाँ उनका अच्छा सम्मान हुआ था।

अमेरिका जाने का तो उनका पक्का इरादा था। इसके लिए पर्याप्त धन की ज़रूरत थी। बहुत दिनों से वह अवसर की ताक में थे। इसी बीच अमेरिका में World's Purity Federation का उत्सव तय हुआ। बस, शास्त्री जी ने वहाँ के कार्यकर्त्ताओं से पत्र-व्यवहार शुरू किया। अन्त में उनको निमन्त्रण मिला और २८ जुलाई, १६१३ को अमेरिका के लिए चल पड़े। उसका दृश्य काशी-वासियों के सामने अब भी नाच रहा होगा। बनारस छावनी का स्टेशन कितने ही आर्यसमाजियों, सैकड़ों प्रतिष्ठित रईसों और सहस्रों कॉलेज और स्कूल के विद्यार्थियों से खचाखच भरा था, शास्त्री जी का गला फूल की मालाओं से भर गया था, एक से एक उत्तम उपहार मित्रों की ओर से दिए जा रहे थे। इस दृश्य में एक देवी का प्रेम विस्मरण नहीं किया जा सकता। यह एक आशीर्वाद था। एक रूमाल पर लिखा था:—

'God helps those who help themselves.

शास्त्री जी जैसे उद्योगी और Self-made मनुष्य के लिए इससे बढ़िया उपहार हो ही क्या सकता था? गाड़ी चल पड़ी और एक साथ सहस्रों कण्ठ से ध्वनि निकली 'नमस्ते'! जब तक गाड़ी स्टेशन को पार नहीं कर गई, नमस्ते की ध्वनि से स्टेशन गूँजता रहा। अजमेर और बम्बई होते हुए १ली अगस्त, १६१३ की शाम को 'विक्टोरियाडक' से रवाना हुए, चारों ओर से फूलों की वृष्टि और मालाओं की बौछार हो रही थी।

जब शास्त्री जी ने अमेरिका में पदार्पण किया तो समाचार-पत्रों के सम्वाददाताओं का ताँता लग गया। 'ट्रिब्यून' के सम्वाददाता ने ईसाई-मिशनरियों के प्रचार के सम्बन्ध में अनेक प्रश्न किए। जिनके उत्तर में उन्होंने मिशनरियों के कार्यों की पर्यालोचना करते हुए यह भी कह दिया—"ईसाई लोग शहर के बाहर बङ्गलों में रहते हैं; वे हिन्दुस्तानियों से मेल-जोल करना पसन्द नहीं

करते। मेरी समझ में तो यह आशा करना कि भारत-वासियों की एक बहुत बड़ी संख्या ईसाई-धर्म ग्रहण करेगी, व्यर्थ है। शिक्षित हिन्दू तो अपने धर्म, अपने यहाँ की तत्वविद्या और अध्यात्मविद्या को आदर की दृष्टि से देखते हैं और ईसाई-धर्म को वे ऐसे विश्वासों का समूह समझते हैं जो तर्क से खण्डित और विज्ञान के विरुद्ध है। अब रहे नीच आदमी, सो उनके विषय में यह कहना ठीक होगा कि मिश्नरी लोग उन्हें रोटी के लिए आर्थिक सहायता देकर अपने धर्म में मिला लेते हैं।"

इन खरी और स्पष्ट बातों से पादरियों में खलबली मच गई। इस घोर पाप का प्रायश्चित्त करने को डॉक्टर साहब को कहा गया। यही नहीं, वह सर्व-धर्म-सम्मेलन जिसने उन्हें आमन्त्रित किया था, इनके व्याख्यान का प्रोग्राम हटाने की व्यवस्था करने चला। शास्त्री जी दब्बू नहीं थे, उन्होंने परवा तक न की, पादरी लाख सिर पटक कर रह गए, बनारस का विद्वान् अपने वचनों पर दृढ़ रहा, न उसने सम्बाददाता को झूठा ठहराया, न शब्दों को वापस लिया, वह अपने एक-एक अक्षर को सिद्ध करने को तैयार था। कॉनफ्रेन्स में कई दिन हलचल रही, निदान शास्त्री जी का बयान (Statement) भी लिया गया। बहुत से लोग क्रुद्ध होकर चले गए, जो बचे उनमें वोटें ली गईं और पक्ष में १४ और विपक्ष में १० वोटें आईं और शास्त्री जी का भाषण हुआ। शास्त्री जी का भाषण कैसा हुआ, इस सम्बन्ध में हम स्वयं कुछ नहीं कहना चाहते। मिनिया पोलिस के Daily News ने लिखा था :—

"Using the English language almost perfectly Dr. Shastri delivered an address that was most masterly in its thought and construction. Besides it, none of the addresses of the session so far have mounted higher in psychological effect or in interest than this speech of the Hindu physiacian and editor."

आगे चल कर उसने लिखा है कि—"संसार के सभी भागों के प्रसिद्ध-प्रसिद्ध व्याख्यानदाता यहाँ विद्यमान थे और इनमें लोगों का ध्यान डॉ० शास्त्री (केशवदेव शास्त्री) से अधिक किसी दूसरे व्याख्यानदाता की ओर आकर्षित नहीं हुआ।"

१६१५ में पनामा की नहर निकली और पनामा में प्रदर्शिनी होने वाली थी, उसी उपलक्ष में उसमें चीन, जापान और कनाडा सभी बड़े-बड़े देश अपने लिए केला-भवन तैयार करा रहे थे। डॉ० शास्त्री को यह बात असह्य थी कि इतनी बड़ी प्रदर्शिनी हो जाय और भारतवर्ष हाथ पर हाथ धरे बैठा रहे। उन्होंने तथा वी० वाई० शेवादे और वसन्तकुमार राय ने मिल कर एक चिट्ठी भारतीय समाचार-पत्रों को भेजी और १५ हज़ार रुपए इस कार्य के लिए माँगे। पता नहीं, इस उद्योग में उन्हें कहाँ तक सफलता मिली, हाँ, हमने समाचार-पत्रों में ज़रूर पढ़ा कि भारतवर्ष की नाक रह गई। भारतवर्ष का भी एक कमरा था, जो भारतीय वस्तुओं से भरा पड़ा था और बीसों हिन्दू-युवक वहाँ काम करते थे। इसका श्रेय किसको था? बस केवल डॉ० केशवदेव शास्त्री को।

इन कार्यों के बाद डॉ० शास्त्री की विद्वत्ता की धाक बैठ गई। आश्चर्य तो यह है कि केवल इन्ट्रेन्स पास व्यक्ति अमेरिकनों में इतना श्रद्धा और भक्ति का पात्र कैसे बन गया। उनकी अङ्गरेज़ी की शुद्धता और धाराप्रवाह बोलने की तारीफ़ हज़ारों कण्ठ करते रहे हैं। 'सानडायगा यूनियन' ने तो यहाँ तक लिखा था :—

"Dr. Shastri speaks English fluently with a vocabulary that would put most educated Americans to shame."

यानी वे धाराप्रवाह अङ्गरेज़ी बोलते हैं और उनका शब्द-भण्डार इतना बड़ा है कि बहुत से शिक्षित अमेरिकन लोगों को उसको सुन कर शर्म आ जायगी।

जिस देश में जाकर बड़े-बड़े विद्वान् भी मांस और अण्डे के फेर में पड़ जाते हैं, चाय, क़हवा और शराब तमाकू तो उनकी रोज़ की ग़िज़ा हो जाती है, ऐसे देश में भी डॉ० शास्त्री ने केवल आलू और डबल रोटियों पर ६ साल काट दिए। जिन हिन्दुओं के लिए वहाँ इतनी घृणा है, बहुविवाह के नाम पर हिन्दुस्तान पर लाखों दोष मढ़े जाते हैं, उसी देश के डॉ० शास्त्री के लिए एक अमेरिकन पत्र लिखता है :—

"Here is a model man and he is yet unmarried. Dr. K. D. Shastri Hindu scholar, author, reformer and editor arrived here yesterday. The doctor is a unique character for the

things he does not do. He does not drink nor smoke. He does not drink tea nor coffee. He does not eat meat. He is a becholar in a land where polygamy is not a crime"

यह श्रद्धाञ्जलियाँ हैं, जो अमेरिकन पत्रों ने शास्त्री जी पर चढ़ाई हैं। ऐसे एक नहीं, अनेक दृष्टान्त मिलेंगे। इसी विद्वत्ता का परिणाम यह हुआ कि शास्त्री जी Congress of Religious Philosophies के सभापति हुए। इस कॉङ्ग्रेस की ६ बैठकें हुईं, जिनमें तीन दिन क्रमशः ईसाई, पूर्वी देशवासियों और हिन्दुओं के लिए रक्खा गया। अन्तिम अधिवेशन का नाम रक्खा गया था Hindu day अर्थात् हिन्दू-दिवस। उस दिन शास्त्री जी का व्याख्यान वैदिक फ़िलॉसफ़ी पर हुआ, ब्रह्म-समाज, पारसी-धर्म और सिक्ख-धर्म पर भी विद्वत्तापूर्ण लेख पढ़े गए। पादरी शङ्का-समाधान से बहुत घबड़ाते हैं, लेकिन उस दिन इसके लिए ख़ूब समय दिया गया।

शास्त्री जी की अमेरिकन धर्मपत्नी श्रीमती मिनी जेनर न
(Mrs. Minnie Jensen) (अब श्रीमती सुवीरा देवी)

एक सज्जन ने पूछा—"क्या वेदों की फ़िलॉसफ़ी भारतीय स्त्रियों की अधोगति के लिए उत्तरदाता है ?" डॉ० शास्त्री ने उत्तर दिया—"वैदिक फ़िलॉसफ़ी के अनुसार स्त्रियाँ पुरुषों की अर्द्धाङ्गिनी हैं, और भारतीय स्त्रियों की अधोगति शिक्षा के अभाव तथा अर्थ-सम्बन्धी कारणों से हुई है। डेली न्यूज़ ने लिखा था—"ईसाई-दिवस में जितने प्रतिष्ठित अमेरिकन स्त्री-पुरुष सम्मिलित हुए उससे कहीं अधिक हिन्दू-दिवस में हुए।"

यह सब कुछ था, लेकिन शास्त्री जी विद्या में निरन्तर वृद्धि चाहते रहते थे। इसी बीच वह Chicago College of Medicine and Surgery में प्रविष्ट हो गए और दो वर्ष तक लगे रहे, बिजली का विशेष कार्य भी सीखा और प्रति दिन १८ घण्टे लगातार परिश्रम करके M. D. का डिप्लोमा प्राप्त किया। लब्धाङ्क ८० फ़ी सदी थे और सारे कॉलेज में वे चतुर्थ रहे। एक सार्वजनिक मनुष्य के लिए यह कोई कम नहीं है।

डॉ० शास्त्री का अमेरिकन-महिला से प्रेम प्रकट ही है। उस देवी का बलिदान बड़ा है, प्रेम के लिए उसने क्या नहीं छोड़ा ? फिर भी यह वज्र गिर ही पड़ा। सुवीरा देवी से जिनका एक बार भी परिचय है वह उनके प्रेममय व्यवहार को कदापि नहीं भूल सकते। अतिथि-सत्कार का तो कहना ही क्या ? इन पंक्तियों का लेखक राजपुर में कई दिन लगातार उनका अतिथि रहा है, उनके स्नेहमय अत्याचारों का ऋणी है। श्रीमती शास्त्री आजकल दिल्ली में ही हैं, सामान बिखरा पड़ा है, कोठी सुनसान है, देवी जी काले वस्त्रों को पहने दिन भर आँसू बहाती हैं, ऐसे समय में यह लेख लिखा जा रहा है, डॉ० शास्त्री की प्रशंसा और उनका गुण-गान ही उनके जीवन का आधार है। हमने समाचार-पत्रों की कतरनों के ढेर उनके पास देखे हैं, बस उसी के उलट-फेर में दिन कट जाता है। और उनकी

बहिन ? उनका त्याग तो और भी महान् है, वह कहती हैं मेरे माता-पिता, भाई-बन्धु सब चल बसे।

अस्तु, शास्त्री जी ६ वर्ष बाद अमेरिका से लौटे और दिल्ली को अपना केन्द्र बनाया। गर्मी में राजपुरा और सर्दी में दिल्ली। दिल्ली आने पर शास्त्री जी में बड़ा अन्तर आ गया। पहले सैनिक थे, अब सेना-सञ्चालन का कार्य करने लगे। नवयुवकों पर तो उनकी विशेष दया थी। पहले उन्होंने भारतवर्षीय आर्यकुमार-परिषद् को जन्म दिया था, अब साधु बास्वानी के सहयोग से 'युवकसङ्घ' को जन्म दिया। परिषद् के सभापति तो वह दो बार हो चुके थे, पर इस वर्ष मद्रास 'युवकसङ्घ' के भी प्रधान थे।

इसके अतिरिक्त वह आर्यसमाज और हिन्दी-प्रचारिणी सभा के प्रधान, हिन्दू-सभा और कॉङ्ग्रेस के उप-प्रधान तथा आर्य सार्वदेशिक सभा के प्रधान मन्त्री थे। इतने काम के अतिरिक्त अनेक सभाओं में सभापति होना, एक से एक बढ़िया भाषण देना उन्हीं का काम था। बहुत दिन तक 'आर्यकुमार' के सम्पादक रहे, फिर 'सार्वदेशिक' के सम्पादक बने। हिन्दी की सेवा केवल सम्पादक होकर ही नहीं, कई पुस्तकें लिख कर भी उन्होंने की है। उनमें सर्वोत्तम अमर जीवन, धर्म-शिक्षा और प्राणायाम-विधि आदि हैं। अङ्गरेज़ी के सैकड़ों ट्रैक्ट और कई अच्छी पुस्तकें लिखी हैं, जो अमेरिका में ही छपीं और बिकीं। इसके अतिरिक्त वह कई विदेशी भाषाओं के अच्छे जानकार भी थे।

योग्यता के अतिरिक्त वे बड़े मिलनसार थे। बड़े आदमियों को छोटे से छोटे से, सीधे मुँह बात करते कम देखा जाता है। दूसरे वह बड़े लोक-प्रिय थे। किसी को उनसे द्वेष नहीं था। २७ अक्तूबर को भुवाली सेनिटोरियम में तपेदिक़ से वही आत्मा हमें छोड़ चली। दिल्ली डॉ० शास्त्री को खोजती है, उसका कोई रत्न खो गया है, पर यह निश्चय है वह मिलेगा नहीं, फिर रोना-धोना किस लिए ? बस श्रेय इसी में है कि हम डॉ० शास्त्री जैसे साहसी बनें, उनके एक-एक गुण का अनुकरण करने में मर मिटें।

☾ ☾ ☽

"क्यों जी, तुम्हें उपन्यास से कितने रुपए मिले ?"

"जी हाँ, मिल गए। इतने मिले कि उसके कारण मेरे ऊपर जो मानहानि का मुक़दमा चला था उसे लड़ने के लिए यथेष्ट थे।"

"क्यों जी, इस समय क्या बजा होगा ?"

"बारह बजे हैं।"

"बारह ! नहीं, ज़्यादा बजे होंगे।"

"बारह से ज़्यादा तो कभी बजते ही नहीं।"
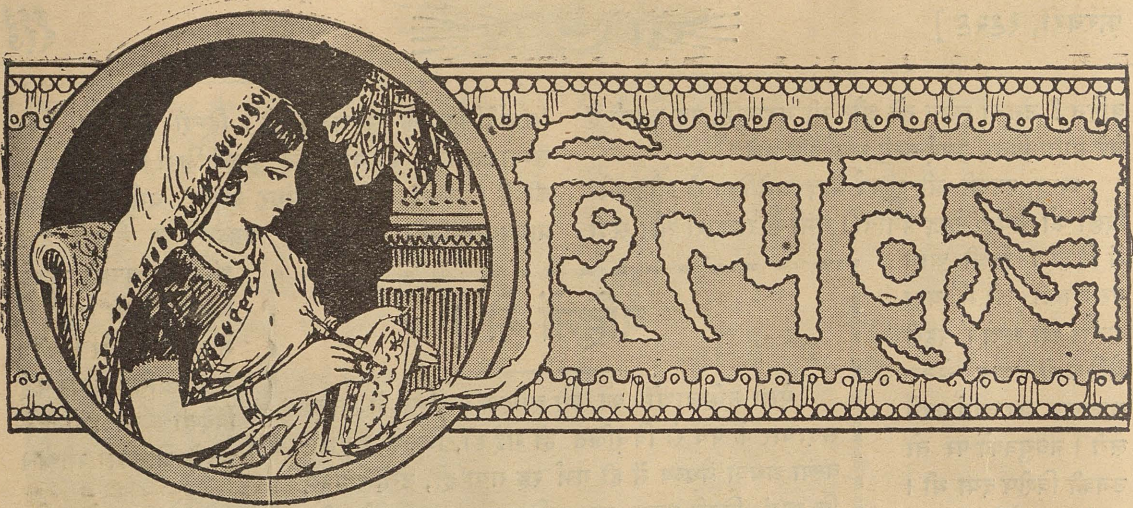
मोर

[ले० श्रीमती शकुन्तलादेवी गुप्ता 'हिन्दी-प्रभाकर']

यह मोर का नमूना कई प्रकार से बन सकता है। अर्थात् इसके फन्दों को गिन कर क्रोशिए से और काँटे से, जैसा कि 'चाँद' की पाठिकाओं को पहले बताया जा चुका है, इसको लट्ठे के रूमाल के बीच में लगाते हैं। परन्तु यदि काँटे का बनाया जाय तो लट्ठे पर ही बन सकता है।
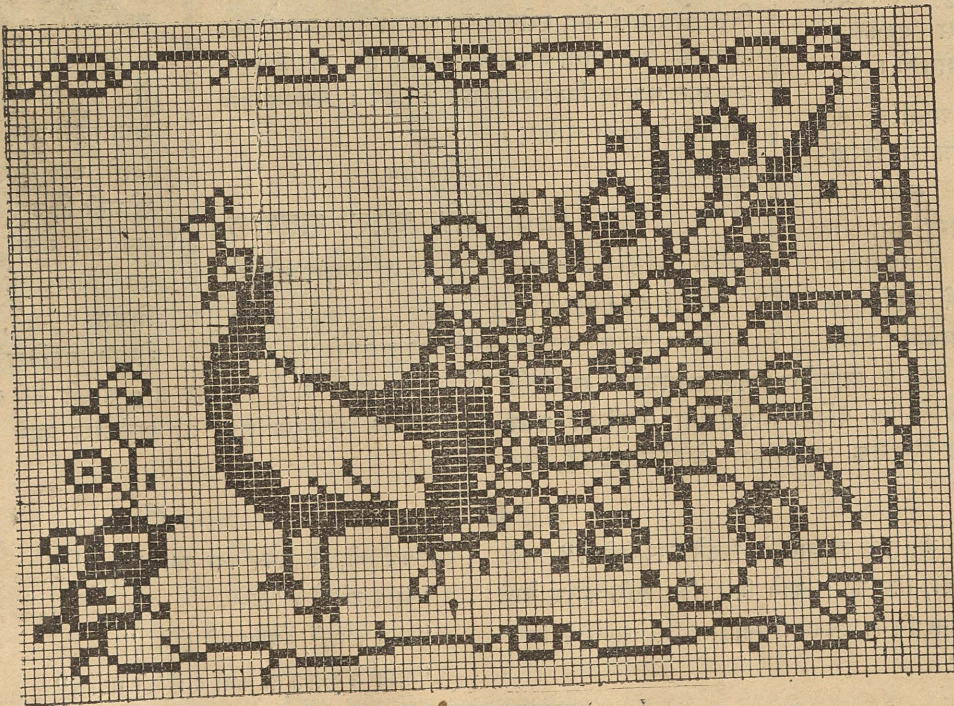
मोर का नमूना

द्वारिकापुरी

[ले० श्री० शीतलासहाय जी, बी० ए०]

पुराणों में तीर्थ-यात्रा करने के अनेक धार्मिक लाभ बताए गए हैं, किन्तु जो लोग कि तीर्थयात्रा इस दृष्टि से नहीं करना चाहते उनके लिए अन्य अनेक दृष्टि-कोण हैं जिनसे तीर्थ-यात्रा करना आवश्यक है। जिसके हृदय में श्रद्धा है, जो प्राचीन ऋषियों-मुनियों के अवतारों के तथा महान् पुरुषों के कार्यक्षेत्र, जन्मस्थान, मूर्त्ति आदि देख कर अपने हृदय पर उनके गुणों और आदेशों को अङ्कित कर सकता है, वह अयोध्या में जाकर श्रीरामचन्द्र के अनुपम और आदर्श-चरित्र और कार्यों का स्मरण करके अपने मन की कलुषता को कम कर सकता है, वह मथुरा और वृन्दावन में जाकर श्रीकृष्णचन्द्र के आदर्श आदेशों का स्मरण करके अपनी आत्मा को शुद्ध बना सकता है; किन्तु जिसका उद्देश इस प्रकार का नहीं है, उसके सम्बन्ध में यह प्रश्न उठता है कि वह क्यों किसी तीर्थ-यात्रा को जाय?

हमारा कथन यह है कि तीर्थ-यात्राओं के लिए जाना राष्ट्रीय दृष्टि से भी बहुत आवश्यक है। जिस समय हिन्दुस्तान के नवयुवकों में वीरता और साहस के अङ्कुर जाग्रत होंगे तो आप देखेंगे कि नवयुवकगण कभी कैलाश की चोटी पर जाते हुए दिखाई देंगे और कभी रामेश्वरम् को पैदल सफ़र करते हुए नज़र आएँगे। अभाग्यवश हमारे देश के नवयुवकों का जीवन आजकल कुछ ऐसा परिमित और सङ्कुचित-सा हो रहा है कि इस प्रकार के साहसपूर्ण कार्यों के करने में ये विशेष दिलचस्पी ही नहीं लेते। कॉलेज के ज़माने में अपने माता-पिता के भेजे हुए रुपए को स्वादिष्ट भोजन, सुन्दर वस्त्र और शृङ्गार में लगा कर अपनी कक्षा में उत्तीर्ण हो जाने को ही भारतीय नवयुवक काफ़ी समझता है। सौभाग्य की बात है कि अब भारतीय नवयुवकों में किसी क़दर साहसपूर्ण कार्य करने की प्रेरणा दीख रही है और मालूम होता है कि थोड़े ही अर्से में तीर्थ-यात्राओं को जाना नवयुवकों के लिए आजकल की तरह एक असाधारण सी बात न होगी।

आजकल तीर्थ-यात्राओं के लिए जाने में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। पहली बात तो यह होती है कि जिस स्थान पर जाया जाय उसके सम्बन्ध में ऐतिहासिक साहित्य का भारी अभाव है। उदाहरण के तौर पर अगर आप द्वारिका जायँ तो आपको किसी पुस्तक द्वारा या किसी अन्य तरीक़े से भी पता नहीं चल सकता कि यह नगर श्रीकृष्णचन्द्र जी ने कैसे बसाया, उनके रहने का कौन सा स्थान था, उनकी रानियाँ कहाँ रहती थीं, इत्यादि। उनके बाद कौन-कौन राजे वहाँ पर हुए और काल के चक्र में पड़ कर द्वारिका इस वर्त्तमान दशा में कैसे पहुँची? मन्दिरों को आप देखते हैं, घाटों पर आप टहलते हैं, किन्तु आपको यह पता नहीं चलता कि ये मन्दिर अथवा घाट किसने बनवाए। अगर प्रत्येक स्थान के लिए एक-एक पुस्तक ऐसी मौजूद हो जोकि ऐतिहासिक दृष्टि और पौराणिक तथा धार्मिक दृष्टि से भी उस स्थान के महत्व का वर्णन करे, तो तीर्थ-यात्रा बहुत ही लाभदायक हो सकती है।

थोड़े ही दिन हुए, लेखक को द्वारिका जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। पाठकों की सूचना के लिए लेखक यहाँ अपना अनुभव कुछ पंक्तियों में बयान कर देना चाहता है, जिससे यदि आवश्यकता हो तो वे लाभ उठा सकें।

द्वारिका-यात्रा के लिए कोई समय निश्चित नहीं है। इसलिए यात्रिगण अक्सर हरेक महीने में वहाँ जाया-आया करते हैं। आजकल अहमदाबाद से रात्रि के समय रेलगाड़ी मिलती है। आधी रात के क़रीब वीरमगाम स्टेशन पर यात्रियों को उतरना पड़ता है। थोड़ी ही देर के बाद वीरमगाम से राजकोट के लिए सीधी गाड़ी मिल जाती है। राजकोट में यह गाड़ी ६ बजे सुबह पहुँच जाती है। उसके बाद फ़ौरन ही द्वारिका के लिए एक गाड़ी मिलती है। १० बजे राजकोट से चल कर क़रीब ८ बजे रात को द्वारिका पहुँच सकते हैं। द्वारिका का थर्ड क्लास का किराया अहमदाबाद से ६-७ रुपयों के क़रीब है।

द्वारिका बड़ोदा-नरेश के राज्य में है। यहाँ की भाषा

कच्छी है, किन्तु हिन्दी आसानी से समझी जाती है। प्रसन्नता की एक बात यह है कि यहाँ के लोगों को तुलसीदास और सूरदास के भजन विशेष रूप से प्रिय हैं,
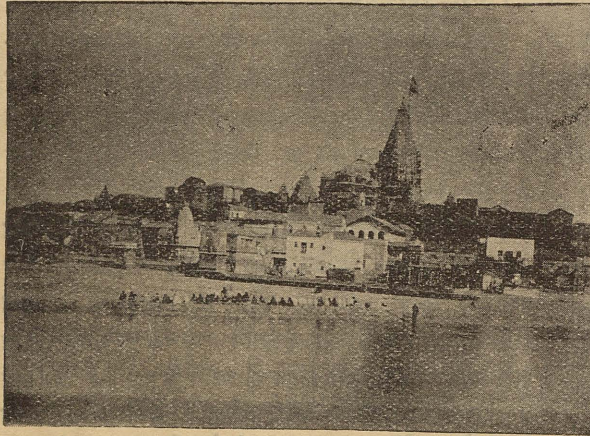
गोमती-द्वारिका का दृश्य

और ये लोग इन भजनों के सार को बहुत अच्छी तरह समझते हैं। हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने में तुलसीदास और सूरदास के भजन जितनी सहायता दे रहे हैं, शायद राष्ट्रभाषा-सेवी नहीं जानते। जब कोई महाराष्ट्र देश का यात्री किसी गुजराती से बातें करने लगता है और वह अङ्गरेज़ी का प्रयोग नहीं कर सकता तब उसके लिए एक अनिवार्य-साधन हिन्दी-भाषा हो जाती है।

यहाँ की स्त्रियों में परदा नहीं है। लेखक का विचार है कि यहाँ के स्त्री-पुरुष, विशेषकर स्त्रियाँ, अपने सौन्दर्य में भारतवर्ष की तमाम जातियों में प्रथम नहीं, तो किसी से कम भी हरगिज़ नहीं हैं। गोरा चेहरा, लम्बी नाक, बड़ी आँखें, काली भौंहें यहाँ के स्त्री-पुरुषों के साधारण आकृति हैं।

द्वारिकापुरी में स्टेशन से दो मिनट के मार्ग पर किसी मारवाड़ी सज्जन की एक विशाल धर्मशाला है। इसमें यात्रियों के ठहरने के लिए पूरा प्रबन्ध है। खाने-पीने के लिए यहाँ पर पूड़ियों का रिवाज नहीं, लेकिन कहने पर हलवाई लोग रुपए के बराबर की पूड़ियाँ बना देते हैं। चाय पीने का रिवाज इस देश में बहुत ज़्यादा है। हर एक किसान, हर एक कुली, दिन में २-३ मरतबा दो-दो पैसे प्याले की चाय तो दूकान से लेकर ज़रूर ही पीता है। चाय पीने का रिवाज यहाँ देख कर यह आश्चर्य होता है कि यह पश्चिमी चीज़ कच्छियों और गुजरातियों में किस तरह से इतनी जल्दी फैल गई। द्वारिका की तरफ़ का पेड़ा भी मशहूर है, किन्तु चिवड़ा, बझिया, पकौड़ी इत्यादि विशेष रूप से लोगों को प्रिय हैं। और इसलिए जो यात्री संयुक्त-प्रान्त से जायँगे उन्हें खाने-पीने में किसी क़दर कठिनाई होती है, अगर वह अपने हाथ से खाना नहीं बना लेते।

द्वारिका का नगर दूर से बहुत ही सुन्दर मालूम देता है। रणछोड़ जी के मन्दिर की लहराती हुई पताका और सुन्दर उज्ज्वल गुम्बज दूर से ही यात्री का स्वागत करते हैं।

असल में द्वारिका दो हैं। एक को गोमती-द्वारिका कहते हैं और दूसरे को बेट-द्वारिका। गोमती-द्वारिका समुद्र के तट पर है। बेट-द्वारिका गोमती-द्वारिका से थोड़ी दूर के फ़ासले पर एक छोटा सा टापू है। गोमती-द्वारिका की आबादी चार-पाँच हज़ार के क़रीब है। शारदापीठ के श्री० शङ्कराचार्य की गद्दी यहीं है। यहाँ का मुख्य मन्दिर बहुत पुराना नहीं मालूम होता। पण्डे लोग मन्दिर के पास ही के दो-चार
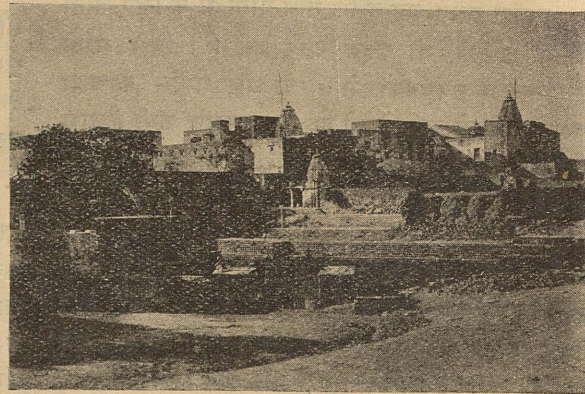
शंखोद्धार तीर्थ का दृश्य

मकानों को दिखलाकर यह कहते हैं कि यही सत्यभामा और रुक्मिणी आदि के महल हैं। इन मकानों के नीचे आजकल साधारण दूकानें हैं। लेखक को जिस समय सत्यभामा आदि के 'महल' दिखाए गए तो उसे अपने देश

के सामाजिक पतन पर वास्तव में बड़ा क्लेश हुआ। हम लोग इतने अधिक पतित हो गए हैं कि धन की लालच में इन ऐतिहासिक स्थानों को भी अपने पेट पालने का साधन बना रहे हैं। मन्दिर के अन्दर जाने के लिए बड़ौदा राज्य की तरफ़ से कर लगता है। मन्दिर के दरवाज़े पर मिश्री मिलती है। मूर्त्ति के सामने मिश्री का ही प्रसाद चढ़ाया जाता है। मूर्त्ति के चरण स्पर्श के लिए ।।) देने होते हैं। समुद्र के तट पर और मन्दिर के पास जो घाट बने हुए हैं, बड़े सुहावने हैं। सायङ्काल को जिस समय सूर्य अस्त होने के क़रीब होता है, समुद्र का निर्मल और नीला जल यात्री के हृदय को बहुत ही ठण्डक पहुँचाता है।

इस नगर का क़ानून यह है कि कोई किसी जानवर को मार नहीं सकता। राजपूताना में यह क़ानून है कि कबूतर और मोर का कोई शिकार नहीं कर सकता। अगर कोई इनको मारता है तो अक्सर मार-पीट हो जाती है, नहीं तो उस पर मुक़दमा तो ज़रूर ही चलता है, किन्तु द्वारिका का इस सम्बन्ध में अधिक विस्तृत नियम है। कोई भी किसी भी जानवर को नहीं मार सकता। मछली, चिड़िया, हिरन सभी शिकार से सुरक्षित हैं। द्वारिका के घाट पर इसलिए सायङ्काल को नाना प्रकार की और अनेक रङ्ग और रूप की छोटी-बड़ी मछलियाँ पानी के अन्दर हज़ारों की संख्या में केलि करती हुई दिखलाई देती हैं। ५-५ सेर की मछलियाँ निर्मल जल में घुटने भर की गहराई पर तैरती रहती हैं। पाव-पाव भर की मछलियाँ फ़ौज की फ़ौज इसी घाट पर इधर से उधर आती-जाती दिखाई देती हैं। घाट उत्तर मुख को है। मुख्य समुद्र पश्चिम दिशा में है। पश्चिम दिशा से पानी की एक बहुत छोटी धारा आती है, जोकि एक बाँध से टकरा कर इन उत्तर मुख के घाटों पर पानी पहुँचाती है। पश्चिम दिशा का समुद्र सायङ्काल के समय देखने योग्य होता है। पच्छिम की ओर मुँह करके आप इस समुद्र के किनारे खड़े हो जाइए, अनन्त सागर आपके सामने दिखाई देगा। सफ़ेद और नीली छोटी-छोटी और बड़ी-बड़ी समुद्र की लहरें आपकी आँख को झिलमिला देती हैं। ऐसा मालूम देता है कि मानों सूर्य पानी में डूब रहा है। डूबते समय सूर्य के चारों ओर की लालिमा सुवर्ण पर्वत के समान बन जाती है, मालूम होता है कि जैसे समुद्र के उस ओर सोने का एक पहाड़ है, जिसमें हर सायङ्काल को सूर्य जाकर अस्त हो जाता है। समुद्र का हाहाकार दिल को हिला देता है। थोड़ी देर में सूर्य अस्त हो जाता है, और साथ ही समुद्र की लहरों का वेग और उसका नाद शान्त पड़ जाता है। फिर भी अनन्त सागर आपके सामने नज़र आता है। प्रकृति के इस महान् दृश्य के बीच में मनुष्य मोहवश विह्वल होकर रह जाता है।

द्वारिका से १०-१२ मील के फ़ासले पर अरद्र नाम का एक स्टेशन है। बेट-द्वारिका जाने के लिए यहाँ आना पड़ता है। प्रातःकाल ८ बजे द्वारिका से गाड़ी मिलती है, जो साढ़े नौ बजे के क़रीब अरद्र पर पहुँच जाती है। यहाँ से छोटी-छोटी नौका या स्टीम-बोट बेट जाने के लिए मिलती हैं। नाव पाल के सहारे खेई जाती है। प्रातः-काल के समय वायु जाने के लिए अनुकूल होती है और सायङ्काल के समय आने के लिए। इसलिए ज़्यादातर नौकाएँ सुबह के समय बेट को जाती हैं और तीसरे पहर वहाँ से लौट आती हैं। अरद्र और बेट के दरमियान क़रीब दो मील के पाट का समुद्र है। किन्तु जगन्नाथपुरी के समान यहाँ के समुद्र की लहरें हाथी के समान ऊँची नहीं उठतीं। सुबह के समय समुद्र बढ़ा रहता है, इसलिए संयुक्त-प्रान्त का हर एक यात्री, जिसने अपनी सारी ज़िन्दगी में समुद्र कभी नहीं देखा है, इस नीले, विस्तृत और विशाल पानी के वक्षस्थल पर नौका द्वारा चलते हुए विशेष भावों का अनुभव कर सकता है।

बेट-द्वारिका में ही छाप लगाई जाती है। जो लोग गरम लोहे से छाप नहीं लगवाना चाहते, वे यहाँ कच्ची छाप लगवा लेते हैं, जोकि ३-४ रोज़ में छूट जाती है। साधू लोग ज़्यादातर पक्की छाप लगवाते हैं। मन्दिर के अन्दर जाने के लिए बाहर से आए हुए यात्रियों को बड़ौदा-नरेश को १।) का कर देना होता है! बेट-द्वारिका एक छोटा सा नगर है। यहाँ के लोग न खेती करते हैं न कोई व्यापार। यात्री लोग ही इनके मुख्य व्यवसाय हैं। बेट-द्वारिका में ही शङ्खोद्धार तीर्थ है जिसका चित्र इस लेख के साथ दिया जा रहा है। शङ्खोद्धार तीर्थ का पौराणिक महत्व बहुत है, किन्तु इस समय इस जलाशय की ऐसी दुर्दशा है कि कुछ कहा नहीं जा सकता। इस तालाब में आस-पास के रहने वाले मनुष्य इसमें अपनी-

(शेष मैटर पृष्ठ ६२३ के पहिले कॉलम के अन्त में देखिए)

कला का मूल्य

[ले० श्री० जयशङ्कर प्रसाद जी]

"अभी तो पहना गई हो।"

"बहू जी! बड़ी अच्छी चूड़ियाँ हैं, सीधे बम्बई से पारसल मँगाया है। सरकार का हुक्म है, इसलिए नई चूड़ियाँ आते ही चली आती हूँ।"

"तो जाओ सरकार को ही पहनाओ, मैं नहीं पहनती।"

"बहू जी! देख तो लीजिए"—कहती और मुस्कराती हुई ढीठ चूड़ी वाली अपना बॉक्स खोलने लगी। वह पचीस बरस की एक गोरी छरहरी स्त्री थी। उसकी कलाई सचमुच चूड़ी पहनाने के लिए ढली थी। पान से लाल पतले-पतले ओठ दो-तीन वक्रताओं में अपना रहस्य छिपाए थे। उसे देखने का मन करता था, देखने पर उन सलोने अधरों से कुछ बुलवाने को जी चाहता, बोलने पर हँसाने की इच्छा होती और उस हँसी में शैशव का अल्हड़पन, यौवन की तरावट और प्रौढ़ा की सी गम्भीरता बिजलियों के समान लड़ जातीं।

बहू जी को उसकी हँसी बहुत बुरी लगती, पर जब पञ्जों में आधी चूड़ी चढ़ा कर, सङ्कट में फँसा कर, वह हँसते हुए कहती—"एक पान मिले बिना यह चूड़ी नहीं चढ़ती" तब बहू जी को क्रोध के साथ हँसी आ जाती और उसकी तरल हँसी की तरी लेने में तन्मय हो जातीं। कुछ ही दिनों से यह चूड़ी वाली आने लगी है। कभी-कभी तो बिना बुलाए ही चली आती और ऐसे ढङ्ग फैलाती कि बिना सरकार के आए निबटारा न होता। यह बहू जी को असह्य हो जाता। आज उसे चूड़ी फैलाते हुए देख कर बहू जी झल्ला कर बोलीं—आजकल दुकान पर गाहक कम आते हैं क्या?

"बहू जी! आजकल ख़रीदने की धुन में हूँ, बेचती हूँ कम।" इतने में कई दर्जन चूड़ियाँ बाहर सजा दी गईं। स्लीपरों के शब्द सुनाई पड़े। बहू जी ने कपड़े सँभाले, पर वह ढीठ चूड़ी वाली बालिकाओं के समान सिर टेढ़ा करके "यह जर्मनी की है, यह फ़रासीसी है, यह जापानी है" कहती जाती थी। सरकार खड़े मुस्करा रहे थे।

"क्या रोज़ नई चूड़ी पहनाने के लिए इन्हें हुक्म मिला है?"—बहू जी ने गर्व से पूछा।

सरकार ने कहा—"पहन भी लो, बुरा क्या है!"

"बुरा तो कुछ नहीं, चूड़ी चढ़ाते हुए कलाई दुखती होगी।"—चूड़ी वाली ने सिर नीचा किए, कनखियों से देखते हुए कहा।

एक हलकी सी लाली आँखों की कोर से कपोलों को तर करती हुई दौड़ जाती थी। सरकार ने देखा, एक लालसा भरी युवती व्यङ्ग कर रही है। हृदय में हलचल हो गई। घबरा कर बोले—ऐसा है तो न पहनो।

"भगवान् करें रोज़ पहनें।"—चूड़ी वाली आशीर्वाद देने के गम्भीर स्वर में प्रौढ़ा के समान बोली।

"अच्छा, तुम अभी जाओ"—सरकार और चूड़ी वाली दोनों की ओर देखते हुए बहू जी ने कहा।

"तो क्या मैं लौट जाऊँ? आप तो कहती थीं न, सरकार ही को पहनने के लिए कह दीजिए।"

"निकलो मेरे यहाँ से"—कहते हुए बहू जी की आँखें तिलमिला उठीं और सरकार भी धीरे से खिसक गए। अपराधी के समान सिर नीचा किए चूड़ी वाली अपनी चूड़ियाँ बटोर कर उठी। हृदय की धड़कन और अपना रहस्यपूर्ण निश्वास छोड़ती हुई बेचारी चली गई।

२

चूड़ी वाली का नाम था विलासिनी। वह नगर की एक प्रसिद्ध नर्तकी की कन्या थी। उसके रूप और सङ्गीत-कला की सुख्याति थी। वैभव भी कम न था, विलास और प्रमोद के पर्याप्त सम्भार मिलने पर भी उसे सन्तोष न था, हृदय में कोई अभाव खटकता था। वास्तव में उसकी मनोवृत्ति उसके व्यवसाय के प्रतिकूल थी।

कुल-बधू बनने की अभिलाषा हृदय में, और दाम्पत्य-सुख का स्वर्गीय स्वप्न उसकी आँखों में समाया था। स्वच्छन्द प्रणय का व्यापार अरुचिकर हो गया। परन्तु समाज उससे हिंसक पशु के समान सशङ्क था। आश्रय मिलना असम्भव जान कर विलासिनी ने छल के द्वारा वही सुख लेना चाहा। यह उसकी सरल आवश्यकता थी, क्योंकि अपने व्यवसाय में उसी का प्रेम क्रय करने के लिए बहुत से लोग आते थे; पर विलासिनी अपना हृदय खोल कर किसी से प्रेम न कर सकती थी।

उन्हीं दिनों सरकार के रूप-यौवन और चारित्र्य ने उसे प्रलोभन दिया। नगर के समीप बाबू विजयकृष्ण की अपनी ही ज़मींदारी में बड़ी सुन्दर अट्टालिका थी, वहीं रहते थे। उनके अनुचर और उनकी प्रजा उन्हें 'सरकार' कह कर पुकारती थी। विलासिनी की आँखें विजयकृष्ण पर गड़ गईं। अपना चिर-सञ्चित मनोरथ पूर्ण करने के लिए वह कुछ दिन के लिए चूड़ी वाली बन गई थी। सरकार चूड़ी वाली को जानते हुए भी अनजान बने रहे। अमीरी का एक कौतुक था, एक खिलवाड़ समझ कर उसके आने-जाने में बाधा न देते, क्योंकि विलासिनी के कलापूर्ण सौन्दर्य ने जो कुछ प्रभाव उनके मन पर डाला था, उसके लिए उनके सुरुचिपूर्ण मन ने अच्छा बहाना खोज लिया था। वे सोचते कि बहू जी का कुल-बधू जनोचित सौन्दर्य और वैभव की मर्यादा देख कर चूड़ी वाली स्वयं पराजय स्वीकार कर लेगी और अपना निष्फल-प्रयत्न छोड़ देगी।

(पृष्ठ ६२१ का शेषांश)

अपनी धोतियाँ साफ़ करते हैं। इसके पानी से वे अपने बरतन आदि साफ़ करते हैं। वे इसमें स्नान भी करते हैं! बरसों से ऐसा करते-करते इसका पानी नीले से काले रङ्ग का होगया है। किन्तु इस स्थान का दृश्य बहुत अच्छा है और दोपहर के समय वृक्ष के नीचे खड़े होकर इस घाट की बेसरोसामानी को देख कर मनुष्य हिन्दू-समाज की वर्त्तमान दशा को देख लेता है!

कहते हैं कि बेट-द्वारिका श्रीकृष्णचन्द्र जी का विहार-स्थल था। समय-समय यह अपनी रानी, पटरानियों तथा पुत्र-पौत्री को लेकर इस स्थान पर विहार करने आते थे।

———

चूड़ी वाली विलासिनी अपने कौतूहलपूर्ण कौशल में सफल न हो सकी थी; परन्तु बहू जी के आज के दुर्व्यवहार ने प्रतिक्रिया उत्पन्न कर दी और चोट खाकर उसने सरकार को घायल कर दिया।

३

अब सरकार खुल कर उसके यहाँ आने-जाने लगे। विलास-रजनी का प्रभात भी चूड़ी वाली के उपवन में कटता। कुल-मर्यादा, लोक-लाज और ज़मींदारी सब एक ओर और चूड़ी वाली अकेली दूसरी ओर थी। दालान में कुर्सियों पर सरकार और चूड़ी वाली बैठकर रात्रि-जागरण का खेद मिटा रहे थे। पास ही अनार का वृक्ष था, उसमें फूल खिले थे। एक बहुत ही छोटी काली चिड़िया आकर उन फूलों में चोंच डाल कर मकरन्द पान करती और कुछ केसर खाती, फिर हृदय-विमोहन कलनाद करती हुई उड़ जाती। सरकार बड़ी देर से कौतुक देख रहे थे। बोले—इसे पकड़ कर पालतू बनाया जाय तो कैसा?

"उहूँ, यह फुलसुँघी है। पिञ्जरे में जी नहीं सकती। इसे फूलों का प्रदेश ही जिला सकता है, स्वर्ण-पिञ्जर नहीं। इसे खाने के लिए फूलों की केसर का चारा और पीने के लिए मकरन्द-मदिरा कौन जुटावेगा?"

"पर इसकी सुन्दर बोली सङ्गीत-कला की चरम सीमा है। वीणा में भी कोई ही मीड़ ऐसी निकलती होगी! इसे अवश्य पकड़ना चाहिए।"

"जिसमें बाधा नहीं, बन्धन नहीं, जिसका सौन्दर्य स्वच्छन्द है, उस असाधारण प्राकृत-कला का मूल्य क्या बन्धन है? कुरुचि के द्वारा वह कलङ्कित भले ही हो जाय, परन्तु पुरस्कृत नहीं हो सकती। उसे आप पिञ्जरे में बन्द करके पुरस्कार देंगे या दण्ड?"—कहते हुए विलासिनी ने विजय की एक व्यङ्ग-भरी मुस्कान छोड़ी।

अब इसी वन-विहङ्गिनी को पकड़ने की लालसा बलवती हो उठी। सरकार ने कहा—"जाने भी दो, वह तुमसे अच्छी कला नहीं जानती।"

प्रसङ्ग बदल गया, नित्य का साधारण विनोदपूर्ण क्रम चला।

चूड़ी वाली अपने अभ्यास के अनुसार समझती कि यदि बहू जी की अपार प्रणय-सम्पत्ति में से कुछ अंश मैं भी ले लेती हूँ तो हानि क्या; परन्तु बहू जी को अपने

प्रणय के एकाधिपत्य पर पूर्ण विश्वास था। वह निष्क्रिय प्रतिरोध करने लगीं। राजयक्ष्मा के भयानक आक्रमण से वह घुलने लगीं और सरकार वन-विहङ्गिनी विलासिनी को स्वायत्त करने में दत्तचित्त हुए। रोगी की शुश्रूषा और सेवा में कोई कमी न थी; परन्तु एक बड़े मुक़दमे में सरकार का उधर सर्वस्व स्वाहा हुआ, इधर बहू जी चल बसीं! × × ×

चूड़ी वाली ने समझा कि उसकी पूर्ण विजय हुई, पर बात कुछ दूसरी थी। विजयकृष्ण का वह एक विनोद था। जब सब कुछ चला गया, तब विनोद लेकर क्या होगा। एक दिन उन्हें स्मरण हुआ कि अब मेरा कुछ नहीं है, उसी दिन चूड़ी वाली से छुट्टी माँगी। उसने कहा—कमी किस बात की है, मैं तुम्हारी ही हूँ और सब वैभव भी तुम्हारा है।

विजयकृष्ण ने कहा—मैं वेश्या की दी हुई जीविका से पेट पालने में असमर्थ हूँ।

चूड़ीवाली बिलखने लगी, विनय किया, रोई-गिड़गिड़ाई, पर विजयकृष्ण चले ही गए। वह सोचने लगी कि अपना व्यवसाय और विजय की गृहस्थी बिगाड़ कर जो सुख ख़रीदा था उसका कोई मूल्य नहीं, मैं कुल-वधू होने ही के उपयुक्त नहीं। क्या समाज के पास कोई प्रतिकार नहीं, इतनी तपस्या और इतना स्वार्थ-त्याग व्यर्थ है? मैं वेश्या ही रही?

परन्तु विलासिनी यह न जानती थी कि स्त्री और पुरुष सम्बन्धी समस्त अन्तिम निर्णय करने में समाज कितना ही उदार क्यों न हो, दोनों पक्ष को सर्वथा सन्तुष्ट नहीं कर सका और न कर सकने की आशा ही है। यह रहस्य सृष्टि को उलझा रखने की कुञ्जी है।

४

विलासिनी ने बहुत सोच-समझ कर अपनी जीवन-चर्या बदल डाली। सरकार से मिली हुई जो कुछ सम्पत्ति थी, उसे बेच कर पास के ही एक गाँव में खेती करने के लिए भूमि लेकर आदर्श हिन्दू-गृहस्थ की सी तपस्या करने में अपना बिखरा हुआ मन उसने लगा दिया। उसके कच्चे मकान के पास एक विशाल वट-वृक्ष और निर्मल जल का सरोवर था। वहीं रह कर चूड़ी वाली ने पथिकों की सेवा करने का सङ्कल्प किया। थोड़े ही दिनों में अच्छी खेती होने लगी और अन्न से उसका घर भरा रहने लगा। भिखारियों को अन्न देकर उन्हें खिला देने में उसे अकथनीय सुख मिलता। धीरे-धीरे दिन ढलने लगा, चूड़ी वाली की सहेली बनाने के लिए यौवन का तीसरा पहर करुणा और शान्ति को पकड़ ले आया। उस पथ से चलने वाले पथिकों को दूर से किसी कला-कुशल कण्ठ की तान सुनाई पड़ती:—

"अबलौं नसानी अब ना नसैहौं!"

वट-वृक्ष के नीचे एक अनाथ बालक नन्हू को चना और गुड़ की दुकान चूड़ी वाली ने करा दी है। जिन पथिकों के पास पैसे न होते उनका मूल्य वह स्वयं देकर नन्हू की दुकान में घाटा न होने देती, और कोई पथिक भी बिना विश्राम किए उस तालाब से न जाता। कुछ ही दिनों में चूड़ी वाली का तालाब विख्यात हो गया।

सन्ध्या हो चली थी, पखेरुओं का बसेरे की ओर लौटने का कोलाहल मचा और वट-वृक्ष में चहल-पहल हो गई। चूड़ी वाली चरनी के पास खड़ी बैलों को देख रही थी। दालान में दीपक जल रहा था। अन्धकार उसके घर में और मन में बरजोरी घुस रहा था। कोलाहल-शून्य जीवन में भी चूड़ी वाली को शान्ति मिली, ऐसा विश्वास नहीं होता था। पास ही उसकी पिण्डलियों से सिर रगड़ता हुआ कलुआ दुम हिला रहा था। सुखिया उसके लिए घर में से कुछ खाने को ले आई और कलुआ उधर न देख कर अपनी स्वामिनी से स्नेह जता रहा था। चूड़ी वाली ने हँसते हुए कहा—चल, तेरा दुलार हो चुका, जा खा ले!

चूड़ी वाली ने मन में सोचा—कङ्गाल मनुष्य स्नेह के लिए क्यों भीख माँगता है, वह स्वयं नहीं करता, नहीं तो तृण, वीरुध तथा पशु-पक्षी भी तो स्नेह करने के लिए प्रस्तुत हैं। × × ×

इतने में नन्हू ने आकर कहा—माँ, एक बटोही बहुत थका हुआ अभी आया है, भूख के मारे जैसे शिथिल हो गया है।

"तूने क्यों नहीं दे दिया?"

"लेता ही नहीं, कहता है तू बड़ा ग़रीब लड़का है, तुझसे न लूँगा।"

चूड़ी वाली वट-वृक्ष की ओर चल पड़ी। अँधेरा हो गया था, पथिक जड़ की ढासना लगाए लेटा था। चूड़ी

वाली ने हाथ जोड़ कर कहा—महाराज ! आप कुछ भोजन कीजिए।

"तुम कौन हो ?"

"पहले की एक वेश्या।"

"छिः ! मुझे पड़े रहने दो, मैं नहीं चाहता कि तुम मुझसे बोलो भी ; क्योंकि तुम्हारा व्यवसाय कितने ही सुखी घरों को उजाड़ कर श्मशान बना देता है।"

"महाराज ! हम लोग तो कला के व्यवसायी हैं, यह अपराध कला का मूल्य लगाने वालों की कुरुचि और कुत्सित इच्छा का है। संसार में बहुत से निर्लज्ज, स्वार्थ-पूर्ण व्यवसाय चलते हैं। फिर भी, इसी पर इतना क्रोध क्यों ?"

"क्योंकि यह उन सभों में अधम और निकृष्ट व्यवसाय है।"

"परन्तु वेश्या का व्यवसाय करके भी मैंने एक ही व्यक्ति से प्रेम किया था। मैं और धर्म नहीं जानती, पर सरकार से जो कुछ मुझे मिला उसे मैं लोक-सेवा में लगाती हूँ। मेरे तालाब पर कोई भूखा नहीं रहने पाता। मेरी जीविका चाहे जो रही हो, मेरे अतिथि-धर्म में बाधा न दीजिए।"

पथिक एक बार ही उठ कर बैठ गया और आँख गड़ा कर अँधेरे में देखने लगा, सहसा बोल उठा—चूड़ी वाली ?

"कौन, सरकार ?"

"हाँ, तुमने मेरा शोक हर लिया। मेरे अपराध-जनक तामस त्याग में पुण्य का भी भाग था—यह मैं नहीं जानता था।"

"सरकार ! मैंने गृहस्थ-कुल-बधू होने के लिए कठोर तपस्या की है। इन चार बरसों में मुझे विश्वास हो गया है कि कुल-बधू होने में जो महत्व है, वह सेवा का है, न कि विलास का।"

"सेवा ही नहीं चूड़ी वाली ! उसमें विलास का अनन्त यौवन है, क्योंकि केवल स्त्री-पुरुष के शारीरिक बन्धन में वह पर्यवसित नहीं, बाह्य साधनों के विकृत हो जाने तक ही उसकी सीमा नहीं, गार्हस्थ्य जीवन उसके लिए प्रचुर उपकरणों की परम्परा प्रस्तुत करता है, इसी-लिए वह प्रेय भी है और श्रेय भी है। मुझे विश्वास है कि तुम अब सफल होओगी।"

"मेरी सफलता आपकी कृपा पर है। विश्वास है कि अब इतने निर्दय न होंगे"—कहते-कहते चूड़ी वाली ने सरकार के पैर पकड़ लिए।

"नहीं, अब मुझे कोई तुमसे अलग नहीं कर सकता।"

चितै-चितै

[रचयिता—श्री० 'रसिक']

(१)

कछुक दिना ते औरे गति-मति होत जात,
देखि-देखि पीतम सिहात है हितै-हितै।
उठत उरोज उकसौंहैं, भौंहैं बङ्क होतीं,
लङ्क ललना की अङ्क चार सी रितै-रितै॥
बदलति गति छिन-छिन में रसिक कवि,
मुख सों निकाई नई निसरै नितै-नितै।
चित्र ना खिंचत, छन-छन पै विचित्र छबि,
चतुर चितेरे रहे चकित चितै-चितै॥

(२)

रस-राती, मदमाती, सुधा-धार बरसाती,
जाती भोरी छोरटी सी गोरटी जितै-जितै।
टकटकी बाँधि लखते ही रह जाते सब,
अपने को भूलि चित्र-लिखे से तितै-तितै॥
कहत बनै ना मोसों 'रसिक' सुनाई कछु,
सोचत हौं नित निशि-वासर बितै-बितै
चञ्चला सों चन्द-मुख चाँदनी में चन्द जानि,
चौंकि-चौंकि परत चकोर ह्वै चितै-चितै॥

[ले० श्री० रामावतार जी शर्मा, एम० ए०, विशारद]

गृह-प्रबन्ध

सभी घरों की भीतरी व्यवस्था स्त्रियाँ ही करती हैं। पुरुष बाहर के कार्य कर सभी आवश्यक सामग्रियाँ एकत्रित करते हैं और स्त्रियाँ उनकी रक्षा करती हैं। इसके अतिरिक्त भोजन, घर की सफ़ाई, शिशुपालन आदि घर के भीतरी काम स्त्रियों ही द्वारा सम्पादित होते हैं। पुरुष इन कामों में बहुत कम भाग लेते हैं, जो नहीं के बराबर है। जिसके घर में कोई स्त्री नहीं रहती, उसे स्वयं घर की सफ़ाई, भोजन आदि के काम करने पड़ते हैं। इसे वह अपना दुर्भाग्य समझता है और इन कठिनाइयों से बचने के लिए अपना शरीर भी बेच कर विवाह द्वारा स्त्री प्राप्त करने को कटिबद्ध रहता है। सारांश यह कि गृह-प्रबन्ध में स्त्रियों का हाथ अधिक होता है।

पाश्चात्य देशों के लोग गृह-प्रबन्ध का उत्तरदायी स्त्रियों को ही मानते हैं और उन पर सारे कार्य छोड़ कर अपना ध्यान जीवन-होड़ की ओर देते हैं। वहाँ की स्त्रियाँ गृह-प्रबन्ध में निपुण भी होती हैं और बड़ी तत्परता और बुद्धिमत्ता से अपने कर्त्तव्य का पालन करती हैं। इसका कारण यह है कि वहाँ का पुरुष-समाज उन्हें सुशिक्षिता बनाने में ही अपने घर और कुल का कल्याण समझता है। यह बात भी सत्य है कि शिक्षा से विचार और कार्य में दक्षता प्राप्त होती है और कोई शिक्षित किसी कार्य का सम्पादन अवश्य एक नादान अशिक्षित से अच्छी रीति से कर सकता है। इसी विचार से पाश्चात्य देशों में कई ऐसे विद्यालय स्थापित हैं, जिनमें अन्य विषयों की शिक्षा के साथ-साथ गृह-निरीक्षण, भोजन बनाने, सीने-पिरोने, स्वास्थ्य-विद्या, शिशुपालन आदि आवश्यक विषयों की उचित शिक्षा भी दी जाती है। इस प्रकार की उचित और उच्च शिक्षा से समन्वित हो, स्त्रियाँ गृह-प्रबन्ध में नैपुण्य से कार्य लेती हैं और घर के कामों की देख-रेख व्यवस्थित रूप में करती हैं। न वे अवसर पाने पर अपना समय व्यर्थ नष्ट करती हैं, न कोई कार्य जल्दी से कोरी कल्पना के बल पर ही सम्पादित करती हैं।

हमारे समाज की स्त्रियाँ केवल घर के भीतरी कामों में ही सर्वदा लगी रहती हैं; तो भी घर के कार्य सुनियमित रूप से न हो सकने की शिकायत पुरुष किया करते हैं। निस्सन्देह हमारे समाज में फूहड़ स्त्रियाँ भी अधिक हैं। गृहस्थों को अपने घरों की स्त्रियों पर कुछ न कुछ क्रोध बना ही रहता है, जिसका एक मात्र कारण उनके इच्छानुकूल गृह-प्रबन्ध न होना और कुछ वस्तुओं का सदा नष्ट हो जाना है। इस झंझट से उनका चित्त कभी प्रसन्न नहीं रहने पाता और घर के सभी लोग गृहस्थी की ही बातों में व्यस्त रहते हैं, जिससे दूसरी कोई आवश्यकता उन्हें प्रतीत नहीं होती। न उनका ध्यान अपने बच्चों पर जाता है, न पुष्टिकारक भोजन पर, न घर और घर के लोगों की सफ़ाई पर। यदि स्त्रियों पर ही गृह-प्रबन्ध का सारा भार होता और वे घर के भीतर के कामों को सँभालने में समर्थ हो सकतीं, तो पुरुषों को कुछ शान्ति और दूसरी बातों पर ध्यान देने का अवसर मिलता।

परन्तु हमारी सामाजिक व्यवस्था ऐसी है कि ऐसा होने ही नहीं पाता। कुछ रुकावट के कारण न तो पुरुषों की चिन्ता कम होने पाती है, न स्त्रियाँ गृह-प्रबन्ध में चतुर और दक्ष होती हैं। हमारे समाज में आज परदे की प्रथा है, जो न उन्हें बाहर निकलने देती है, न किसी प्रकार की बाहरी शिक्षा का उन्हें सौभाग्य होता है। स्त्रियों के विद्यालयों में जाकर या प्रदर्शिनियों में दस्तकारी की कलाएँ देख कर ज्ञान-प्राप्ति की बात तो दूर रही, वे वायु-सेवन और स्वास्थ्योन्नति के लिए भी बाहर नहीं निकलने पातीं। हम भी गृहस्थी के कामों को सुव्यवस्थित ढङ्ग से चलाने के लिए स्त्रियों की किसी विशेष शिक्षा की आवश्यकता नहीं समझते, और इस नासमझी के कारण स्त्रियों को अपने उत्तरदायित्व को दक्षतापूर्वक निभाने की कोई शिक्षा नहीं मिलती। परम्परा से घरों में चली आई बातों की जानकारी से ही उन्हें काम लेते रहना पड़ता है। जो स्त्रियाँ स्कूलों और कॉलेजों से शिक्षा भी प्राप्त कर रही हैं, वे भी गृह-प्रबन्ध में निपुण नहीं होतीं; क्योंकि उन्हें भी वही शिक्षा दी जाती है जिस शिक्षा से दफ़्तरों के बाबू तैयार किए जाते हैं।

शनैः शनैः अब लोग स्त्री-शिक्षा की उपयोगिता समझने लगे हैं और बालिकाएँ परदे से बाहर आ, स्कूलों और कॉलेजों की उच्च शिक्षा प्राप्त करने लगी हैं। परन्तु शिक्षा-विभाग के कर्णधारों और समाज-सेवियों का ध्यान शिक्षा की ऐसी पद्धति निर्धारित करने की ओर होना चाहिए, जिससे स्त्रियाँ 'किरानी' बनने की शिक्षा न पा, अपने उत्तरदायित्व को समझने की शक्ति प्राप्त करें और गृह-प्रबन्ध की सारी आवश्यक बातें जान कर सुदक्ष घरनी हो सकें। तभी वे पति-पत्नी-प्रेम को दृढ़ कर, पारिवारिक किचकिच का नाश कर, बेकारी की समस्या हल कर, सेवा से अड़ोस-पड़ोस को प्रसन्न रख, गृह-कार्य को ठीक कर और शिशुपालन में कुशलता दिखाकर गृहस्थी में स्वर्ग-सुख की झलक दिखा सकती हैं।

गृह-प्रबन्ध में शिक्षिता होने पर भी स्त्रियाँ घर के भीतरी कामों को ही करने की उत्तरदायी हैं, क्योंकि बाहर के कार्य-सम्पादन का भार पुरुषों पर है और वह पुरुषार्थ से सम्बन्ध रखता है। गृह-प्रबन्ध में स्त्रियों को कई भिन्न-भिन्न बातों पर ध्यान देना पड़ता है और उनके कार्य पाँच मुख्य विभागों में बाँटे जा सकते हैं। वे विभाग ये हैं—गृह-निरीक्षण, पाक-क्रिया, पारिवारिक सम्बन्ध, वस्तु-संरक्षण, दास-दासियों की देख-रेख और जाँच।

गृह-निरीक्षण—रोग-रहित स्वस्थ-जीवन के लिए निवास-स्थान की सफ़ाई अत्यन्त आवश्यक है। अतएव घर की मालकिन और अन्य स्त्रियों का ध्यान घर की सफ़ाई पर सर्वप्रथम होना चाहिए। गृहस्थों के घर में ऐसा विश्वास भी है कि सूर्योदय के पश्चात् झाड़ू चलाना सूर्यदेव को झाड़ू मारना है। इसका यह अभिप्राय नहीं कि सूर्योदय तक घर-द्वार न बुहार लेने पर पीछे बुहारना ही नहीं चाहिए, बल्कि यह अभिप्राय है कि सुबह ही उठ कर नित्य कार्य के प्रारम्भ में आँगन, कोठरियों और ओसारों को साफ़ कर लेना चाहिए। पक्की भूमि होने से बुहारने से ही काम चल जाता है, किन्तु कच्ची भूमि होने पर बुहारने के अतिरिक्त यत्र-तत्र आवश्यकतानुसार पोत देना भी चाहिए। बुहारने के पहले यदि पानी छिड़क लिया जाय तो अत्युत्तम हो, ऐसा करने से धूल उठ कर घर की चीज़ों पर नहीं पड़ती।

जिस घर में फूहड़ स्त्रियाँ होती हैं वे घरों के कोने, खिड़कियाँ आदि साफ़ नहीं करतीं, न कूड़े-करकट को उठा कर घर से दूर फेंकती हैं। उनकी सफ़ाई कभी ठीक नहीं होती और जहाँ-तहाँ धूल-मिट्टी, छिलके, उपले, पात्र आदि घर की वस्तुएँ पड़ी रहती हैं, जिनकी चिन्ता वे कभी नहीं करतीं। इस पर ध्यान देना अत्यावश्यक है। क्योंकि घर की गन्दगी से अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं और लोगों का स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता।

घर की शुद्धता के लिए सफ़ाई के अतिरिक्त प्रकाश और शुद्ध वायु भी आवश्यक हैं। स्त्रियों को देखना चाहिए कि घर की सभी कोठरियों में पर्याप्त प्रकाश और पवन का प्रवेश होता है या नहीं। इसके लिए कोठरियों में खिड़कियाँ होनी चाहिए, घर के कोनों से सड़ी-गली रद्दी चीज़ों को बाहर कर देना चाहिए और घरों में बोरसियाँ (अँगीठियाँ) और मिट्टी के तेल की ढिबरियाँ नहीं जलानी चाहिए। मिट्टी के तेल की ढिबरियों से वायु दूषित और विषैली हो जाती है, जो साँस द्वारा भीतर जाकर फेफड़े को ख़राब कर देती है। दीए जलाने से ताखों (आले) में कजली पड़

जाती है, उसे साफ़ करना स्त्रियाँ अनावश्यक समझती हैं, परन्तु वह उड़-उड़ कर भोजन और साँस से भीतर जा रोगों का कारण बनती है।

घर को सब प्रकार से साफ़ रख सजाए रखना चाहिए। सजावट से घर की शोभा बढ़ती है और शोभा चित्त को प्रफुल्लित करती है। इसलिए चित्रकारी का काम स्त्रियों को सीखना चाहिए। साथ ही अलमारियों, खिड़कियों और दरवाज़ों की दृढ़ता की देख-रेख करते रहना चाहिए और काँटों को ठोक-ठाक कर ठीक करने का अभ्यास डालना चाहिए।

पाक-क्रिया—भोजन बनाना स्त्रियों का मुख्य काम है, और पुरुष की भी सारी चेष्टाएँ भोजन की उत्तम सामग्रियों के एकत्रित करने की ही होती हैं। इसलिए रसोई के काम में स्त्रियों को विशेष और पूरा ध्यान देना चाहिए। उत्तम, शुद्ध और पुष्टिकारक भोजन से मनुष्य का स्वास्थ्य, जीवन और मस्तिष्क ठीक रहता है। ऐसे तो सभी स्त्रियाँ भोजन बनाती ही हैं, परन्तु इसमें भी कम बुद्धि की आवश्यकता नहीं। एक ही प्रकार का भोजन सभी ऋतुओं में स्वास्थ्यवर्द्धक नहीं होता, न एक ही खाद्य-वस्तु से मनुष्य की रुचि शान्त हो पाती है। स्त्रियों को पाक-शास्त्र के आधार से जानना चाहिए कि किसे कब कैसा भोजन देना चाहिए।

बहुत गृहस्थ घरों में बासी अन्न भी बचे खाया करते हैं और स्त्रियाँ परिश्रम से जी चुरा, आनन्द से खिलाती हैं। यह किसी प्रकार लाभदायक नहीं। बासी अन्न कभी किसी को नहीं खाना चाहिए। शुद्ध और हल्का भोजन स्वास्थ्यवर्द्धक होता है। अपरिपक्व, सड़ा और अति-भोजन से स्वास्थ्य को क्षति पहुँचती है। इसलिए भोजन की शुद्धता और हल्केपन पर सदा ध्यान रखना चाहिए।

भोजन बनाने के समय स्त्रियों को रसोई के पात्र और अन्य सामानों की सफ़ाई पर ध्यान देना चाहिए। अपवित्र पात्र का व्यवहार हानिकर होता है। जो पात्र काम में लाए जायँ उन्हें गरम जल, राख और मिट्टी से साफ़ कर सूखे वस्त्र से पोंछ डालना चाहिए। पीतल, राँगा, ताँबा, जस्ता, काँस आदि के पात्र विषैले होते हैं। इनका व्यवहार करना ठीक नहीं है। रसोई के बरतनों का मुँह ढँका रहना चाहिए। ऐसा नहीं करने से कभी-कभी कीड़े-मकोड़े पड़ जाते हैं। रसोई बनाने वाले को भी अपनी देह और अपने वस्त्र साफ़ रखना चाहिए। रसोई-घर में काफ़ी प्रकाश पहुँचना आवश्यक है। अँधेरा रहने से रसोई ठीक नहीं बन पाती और धुआँ भी नहीं निकल सकता।

जिन घरों में ३-४ स्त्रियाँ हैं, उनमें ऐसी परिपाटी प्रचलित पाई जाती है कि नाते में सबसे छोटी स्त्री ही रसोई का काम देखती है और शेष स्त्रियाँ बैठी रहती हैं और उसे सहायता देना अपमान समझती हैं। इसका फल यह होता है कि रसोई ठीक नहीं बनती, अधिक समय लेती है और अधिक देर तक दोनों समय आग के पास रहने से भोजन पकाने वाली का शरीर अस्वस्थ हो जाता है। कई स्त्रियों के एक साथ रहने पर पाक-विभाग का काम थोड़ा-थोड़ा बाँट कर करना बहुत ठीक है। एक-एक काम एक-एक को लेकर उसे तत्परता से कर डालना चाहिए। ऐसा करने से विशेष थकावट भी नहीं मालूम होती, सभी का अङ्ग-सञ्चालन भी होता रहता है और रसोई भी अच्छी और निश्चित समय पर बनती है।

पारिवारिक सम्बन्ध—ऐसा देखा जाता है कि अधिक व्यक्तियों के घरों में बराबर कचपच हुआ करती है और घर के लोगों में एकता भी नहीं रहती। अनैक्य या मनमुटाव से घर का सौन्दर्य और आनन्द नष्ट हो जाता है और बाहर के कामों से थके पुरुषों को गृह जञ्जाल-सा जान पड़ने लगता है। अतः पुरुषों के सुख और अपने आनन्द के लिए स्त्रियों को सदा प्रेम से रहना चाहिए और किसी को कोई ऐसा विचार हृदय में नहीं लाना चाहिए जिससे पारिवारिक सङ्गठन को क्षति हो या किसी को फूट या क्रोध का अवसर हाथ लगे। घर के मालिक और मालकिन का प्रधान कर्त्तव्य यह होना चाहिए कि सभी व्यक्ति सदा कुछ न कुछ काम में लगे रहें। बेकार बैठे रहने से बक-झक करने की सम्भावना बनी रहती है।

पारिवारिक आनन्द के लिए सभी व्यक्तियों को सत्यप्रिय और निश्छल होना चाहिए। किसी से द्वेष कर या किसी की सन्तति पर डाह या छल न रखना मनुष्य का धर्म है। जो मनुष्य छल, झूठ या पाखण्ड से अपना मन मैला करता है, वह कभी सुखी नहीं रह

सकता, न ईश्वर की कृपा और दया की आशा कर सकता है। परमात्मा हृदय के निष्कपट और सत्य-भाव से ही प्रसन्न रहते हैं। कहा भी है—"जहाँ झूठ तहँ पाप है, जहाँ सत्य तहँ आप।" आपस में मतभेद और लड़ाई-झगड़ों का कारण भी हृदय का छल ही है। अतएव छल और डाह दूर कर स्त्रियों को परिवार को सुखी बनाने की चेष्टा करनी चाहिए। कितनी आय है और क्या व्यय है, इस पर ध्यान रख कर ख़र्च की व्यवस्था करना उन्हीं का काम है। आय से अधिक व्यय होने पर घर की चीज़ें गिरों रक्खी जाने लगती हैं और माल-धन बिक जाता है। निर्धन दशा में परिवार के लोग भी अलग-अलग हो जाते हैं और बाल-बच्चे भी दरिद्रता से पीड़ित होने लगते हैं। इस कारण यह आवश्यक है कि स्त्रियाँ आय-व्यय पर पूरा ध्यान रक्खें। त्योहारों और विवाह के अवसर पर तथा पूजा-पाठ और तीर्थाटनों में आय के अनुसार अपनी शक्ति देखकर ही ख़र्च करना चाहिए। 'पर उपदेश कुशल बहुतेरे' के चरितार्थ करने वालों की मन्त्रणा में आकर या लोगों के हँसने का विचार कर या अपने अपमान की निर्मूल शङ्का कर कदापि शक्ति से अधिक ख़र्च कर ऋणी नहीं होना चाहिए। ऋण पारिवारिक आनन्द का शत्रु और दीनता का प्रेमी है। ऐसा काम भूल कर भी न करना चाहिए, जिससे पारिवारिक आनन्द नष्ट हो या सम्बन्ध-विच्छेद का अवसर उपस्थित हो।

परिवार की स्त्रियों के रगड़े-झगड़ों का एक कारण यह भी पाया जाता है कि कोई स्त्री घर के काम में व्यस्त रहती है और कोई आलसी बनी रहती है। आलसी पर काम करने वाली का स्वभावतः क्रोध हुआ करता है और ऐसा भाव प्रकट होते ही गृह-प्राङ्गण मुर्ग़ियों का युद्ध-स्थल बन जाता है। इसे दूर करने के लिए स्त्रियों का थोड़ा-बहुत लिखना-पढ़ना सीखना अनिवार्य है। ऐसा करने से वे कुछ कला-कौशल, चित्रकारी, सिलाई आदि का काम कर सकती हैं। जिसका जी घर के मोटे कामों में नहीं लगता वह इन सूक्ष्म कामों से परिवार का कल्याण कर सकती हैं। कुछ स्त्रियाँ इन कामों से पैसा भी पैदा करती हैं। घर के कामों से अवसर मिलने पर दूसरा काम स्त्रियों का चर्ख़ा चलाना और सूत कातना होना चाहिए। पहले यह काम गृहस्थों के घर में ज़ोरों से होता था, अब शनैः शनैः बन्द होता जा रहा है। परन्तु इसे जारी रखना और करना बहुत ठीक है। इससे बेकारी दूर रहती है और फ़ुरसत के समय में घर की स्त्रियाँ और लड़कियाँ एकत्र हो, कुछ काम भी करती हैं और मनोविनोद भी।

परिवार में रोग अपना घर न बनाने पाए, इसलिए बड़ी-बूढ़ी स्त्रियों को परिवार के लोगों के शरीर और वस्त्र की सफ़ाई पर ध्यान देना चाहिए। स्त्रियाँ अपने तथा बच्चों के स्नान पर पूरा और उचित ध्यान नहीं देतीं, क्योंकि वे स्नान को भोजन बनाने या खाने की कुञ्जी समझती हैं। वास्तव में स्नान शरीर को स्वच्छ और शुद्ध रखने का नाम है। शरीर पर मैल न जमने से रोग नहीं होता। इसलिए स्नान करने में जल्दी न करनी चाहिए। स्नान नित्य करना आवश्यक है, और नित्य नहीं तो समय-समय पर स्नान के पूर्व साबुन या उबटन लगा कर देह को एकदम स्वच्छ कर लेना चाहिए। इसके अतिरिक्त देहात की स्त्रियाँ अपने केशों की सफ़ाई पर ध्यान नहीं देतीं। एक दिन का बाँधा केश १०-१५ दिनों तक रह जाता है। ऐसा करना फूहड़पन और शृङ्गार का भद्दापन है। केश ऐसा बाँधना चाहिए कि आवश्यकता पड़ते ही शीघ्र खुल जाय। उसे बराबर धोते और साफ़ करते रहना उचित है, ऐसा न करने से वह लीख-ढीलों का घर बन जाता है। पहनने का वस्त्र, बिछौना और ओढ़ना भी कभी गन्दा न रहने पाए। उन्हें दो-तीन दिनों पर धूप में डाल कर गरम कर लेना चाहिए।

बच्चों की देख-रेख स्त्रियों का अपना मुख्य कार्य है। यह दूसरों से नहीं हो सकता। बच्चों के स्वास्थ्य की चिन्ता जन्म-काल के पहले से ही करना चाहिए। बच्चा जब गर्भ में रहता है, तब उसका स्वास्थ्य और मस्तिष्क माता के स्वास्थ्य और विचार के बल पर पुष्ट होता है। इसलिए गर्भवती स्त्रियों की पूरी सेवा होनी चाहिए। ऐसा कोई काम उनसे न लेना चाहिए जिससे शरीर को थकावट हो या मस्तिष्क में विकार उत्पन्न हो। गर्भ-काल की भूलों से गर्भवती और बच्चा—दोनों का जीवन ख़राब हो जाता है। बच्चा होने पर सौरिगृह में भी स्त्री की उचित सेवा होनी चाहिए। ऐसा देखा जाता है कि बच्चा होने की दशा में माता को स्त्रियाँ अपवित्र समझती

हैं और स्वयं पास न जाकर गन्दी दाइयों को भेजा करती हैं, यह अशिक्षा का एक प्रमाण है। माता को उस समय भी साफ़-सुथरा वस्त्र, शुद्ध और हल्का भोजन, स्वच्छ कमरा और साफ़ दाई देनी चाहिए। बच्चे के लालन-पालन में भी उसी समय से ध्यान देना उचित है। जैसे-जैसे बच्चा बढ़ता जाय, उसके स्वास्थ्य पर पूरा ध्यान देना चाहिए।

जन्म का निर्बल बच्चा भी पीछे की सेवा से सबल हो सकता है, यदि माता-पिता उसके स्वास्थ्य की उन्नति पर पूरा ध्यान रक्खें। बच्चों को शक्तिवर्द्धक औषधियों के अतिरिक्त पुष्टिकारक भोजन देना चाहिए। स्वास्थ्य की उन्नति के लिए व्यायाम बहुत आवश्यक है, इसकी आदत बचपन से ही डालनी चाहिए। इसलिए माँ-बाप को अपने बच्चों को व्यायाम के लिए बाध्य करना चाहिए और उनसे नियमित व्यायाम कराना चाहिए। ऐसा भी पाया जाता है कि लोग अपनी पुत्रियों के लालन-पालन में उदासी दिखाया करते हैं—वे उनके स्वास्थ्य और शिक्षा पर कुछ भी ध्यान नहीं देते। उनका यह कार्य उनके मातृत्व और पितृत्व में बट्टा लगाता है और धार्मिक दृष्टि से भी वे परमेश्वर के समक्ष अपने धर्म के न पालन करने के उत्तरदायी हैं।

वस्तु-संरक्षण—बहुत घरों में की चीज़ें इधर-उधर बिखरी पड़ी रहती हैं और उनके बनने-बिगड़ने पर किसी का ध्यान नहीं जाता। उनकी ऐसी दशा देख पुरुष कट-कटाया करते हैं, पर फल कुछ नहीं होता। इसका कारण स्त्रियों का वैसा ही स्वभाव है। अशिक्षिता स्त्रियों के स्वभाव में फूहड़पन होने से वे वस्तु-संरक्षण से घर को सजा कर नहीं रख सकतीं। बाल्यकाल से ही उन्हें ऐसी शिक्षा मिलनी चाहिए, नहीं तो पत्नी-रूप में कदापि वे घर की वस्तुओं का संरक्षण सफलता-पूर्वक नहीं कर सकतीं। कहीं दाल की ढेरी रहती है तो कहीं चावल पड़ा रहता है, कहीं पापड़ उड़ा करता है तो कहीं बड़ी पर कौवे चोंच मारा करते हैं, कहीं थाली औंधी रहती है तो कहीं लोटा ठनठनाता रहता है, कहीं रामायण की पोथी के पन्ने उड़ते रहते हैं तो कहीं दावात की रोशनाई ढरकी पाई जाती है, किसी कोने में धोती पड़ी रहती है तो किसी ताक़ पर बच्चों के दो-तीन कुरते पड़े देखे जाते हैं।

ऐसा तो प्रायः पाया जाता है कि बॉक्सों में रक्खे हुए वस्त्र धूप न खाने के कारण नष्ट हो जाते हैं, और गृहस्थों के घरों में बोने के बीज चूहों से व्यर्थ कर दिए जाते हैं। यह घटना स्त्रियों की अशिक्षा और उत्तरदायित्व की अज्ञानता से होती है। उनकी अपनी बुद्धि कोई कार्य नहीं करती। वे पुरुषों की सम्मति पर निर्भर रहती हैं। जब जैसा कहा जाय वैसा करेंगी। अपने कर्त्तव्य का ज्ञान उन्हें शिक्षा देने, समझाने और अपने कार्यों के लिए उत्तरदायी बनाने से ही होगा। लड़कपन से ही खेलों में उन्हें इन सब बातों की शिक्षा देनी चाहिए। भण्डार-घर बना कर सभी चीज़ों के सजाने और नियत स्थानों पर रखने का उपदेश देते रहना चाहिए। तभी सब चीज़ें सुरक्षित रह सकती हैं और आवश्यकता पड़ते ही मिल सकती हैं।

दास-दासियाँ—निर्धनों का काम बिना दास-दासियों के ही चल जाता है, क्योंकि वे गृहस्थी सम्बन्धी सब काम अपने हाथों कर लेते हैं, परन्तु सुखी घरों के काम दास-दासियों की सहायता के बिना नहीं चलते। अब तो बड़े घरों की स्त्रियाँ भोजन पकाने और बच्चों को दूध पिलाने से भी घृणा करने लगी हैं और बाबा जी रसोई बनाते हैं, दाइयाँ बच्चों की सेवा करती हैं। इससे बड़े घरों की स्त्रियों को कुछ भी परिश्रम नहीं करना पड़ता, और परिश्रम न करने से अङ्गों का सञ्चालन नहीं होता, अतः शरीर रोगों का घर बन जाता है। साथ ही भोजन भी अच्छा नहीं मिलता और बच्चों की भी उचित देख-रेख नहीं होती। हमारी सामाजिक व्यवस्था ऐसी है कि दास-दासियाँ समझदार नहीं होतीं। सभी नौकर नीच कुल के, तुच्छ विचार के और गन्दे आचरण के होते हैं। उन पर भोजन या बच्चों का भार छोड़ना कभी उचित नहीं। बाबा जी भी प्रायः गन्दे रहते हैं और आचरण-भ्रष्ट होते हैं, यही बात अन्य दास-दासियों के साथ भी लागू है। बाबा जी को इतनी बुद्धि नहीं होती कि वे अपना उत्तरदायित्व समझ कर भोजन की शुद्धता और स्वच्छता पर ध्यान दें।

यही दशा दास-दासियों की है। एक तो उनका आचरण प्रायः कुत्सित होता है, दूसरे वे स्वार्थी और कपटी होते हैं। शुद्ध हृदय के, सच्चे और सदाचारी दास-दासी

(शेष मैटर पृष्ठ ६३४ में देखिए)
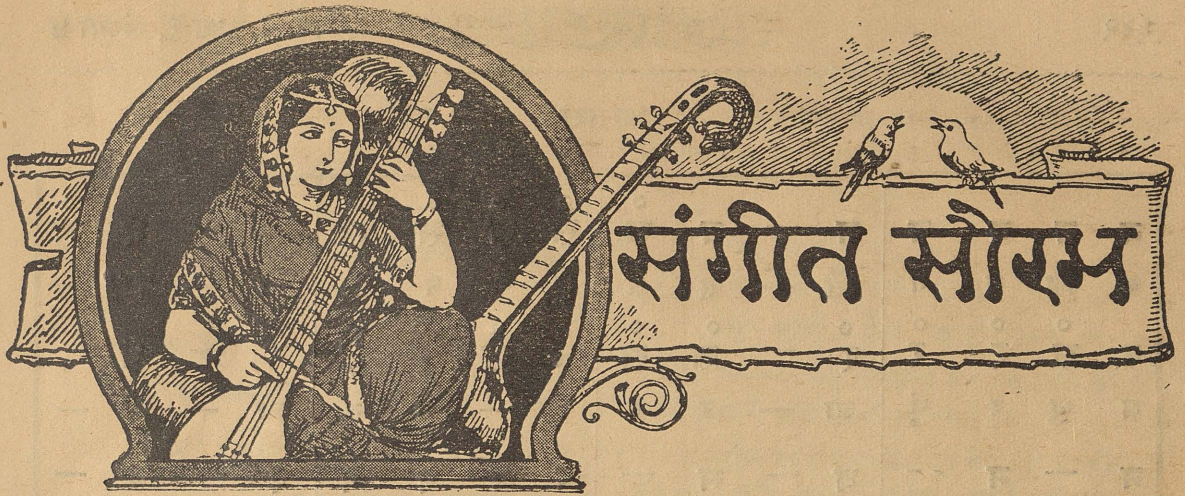
[सम्पादक—श्री० किरणकुमार
मुखोपाध्याय
(नीलू बाबू)]

बहार-तीन ताल

(१६ मात्रा)

[शब्दकार तथा स्वर-लिपिकार—
पण्डित केदारनाथ जी 'बेकल'
बी० ए०, एल्-टी०]

आयो बसन्त सघन-वन फूले,
छाय रही हर सू हरियाली।
मन्द समीर मदन-मन मोहे,
बनिता-नवल बनी हर डाली।

कलियन सों है लगन अली की,
मधुर गुँजार बखानत जी की।
पी पी पी पी करत पपीहा,
पी बिन बिथा सुने को जी की।

कू कू कू कू अँबवा की डाली,
कोयल कूक रही मतवाली।
'बेकल' अनल विषम सम उपवन,
कण्टक विपिन बिना बनमाली।

स्थायी

०				१				×				३			
म	—	म	म	म	—	म	म	प	ध	प	प	म	ग	म	—
आ	—	यो	ब	सं	—	त	स	घ	न	व	न	फू	—	ले	—
ध	—	ध	न॒	ध	प	प	ध	न	—	न	स̊	न	—	स̊	—
छा	—	य	र	ही	—	ह	र	सू	—	ह	रि	या	—	ली	—
स̊	—	ग̊	ग̊	ग̊	—	ग̊	ग̊	ग̊	म̊	प̊	म̊	ग̊	र̊	स̊	—
मं	—	द	स	मी	—	र	म	द	न	म	न	मो	—	हे	—
स̊	र̊	स̊	—	न॒	ध	प	प	प	ध	न	स̊	न	—	स̊	—
ब	नि	ता	—	न	व	ल	ब	नी	—	ह	र	डा	—	ली	—

अन्तरा

न	न	न	न	न	—	न	स°	स°	स°	स°	स°	स°	—	न	स°
क	लि	य	न	सौं	—	ह	य	ल	ग	न	अ	ली	—	की	—
न	स°	र°	र°	र°	—	स°	स°	न	स°	र°	स˳	न॒	—	ध	—
म	धु	र	गुं	जा	—	र	ब	खा	—	न	त	जी	—	की	—
न॒	—	न॒	—	ध	—	म	—	प	प	प	प	प	—	प	—
पी	—	पी	—	पी	—	पी	—	क	र	त	प	पी	—	हा	—

०				१				×				३			
म	—	ग	ग	ग	ग	म	म	र	—	र	—	स	न˳	स	—
पी	—	बि	न	वि	था	—	सु	ने	—	को	—	जी	—	की	—
स	—	म	—	म	—	म	—	प	प	प	प	ग॒	—	म	—
कू	—	कू	—	कू	—	कू	—	अं	व	वा	की	डा	—	ली	—
न॒	—	न॒	न॒	ध	—	ध	ध	न	—	न	स°	न	—	स°	—
को	—	य	ल	कू	—	क	र	ही	—	म	त	वा	—	ली	—
स°	—	ग°	ग°	ग°	ग°	ग°	ग°	ग°	म°	प°	म°	°	र°	स°	स°
वे	—	क	ल	अ	न	ल	वि	ष	म	स	म	उ	प	व	न
स°	र°	स°	स°	न॒	ध	प	प	प	ध	न	स°	न	—	स°	—
कं	—	ट	क	वि	पि	न	बि	ना	—	व	न	मा	—	ली	—

राग-विवरण—काफ़ी ठाठ का षाडव—षाडव राग—आरोह में ऋषभ और अवरोह में धैवत वर्जित—कोमल गन्धार और दोनों निषाद—बाक़ी स्वर शुद्ध कुछ गाने वाले आरोह में तीव्र ग—न और अवरोह में कोमल ग—न का प्रयोग करते हैं—र वादी स सम्वादी स्वर हैं—चञ्चल प्रकृति का राग बसन्त ऋतु में गाया जाता है।

साङ्केतिक चिन्ह

स्वर

१—नीचे बिन्दु वाले मन्द्र सप्तक के, बिना बिन्दु वाले मध्य सप्तक के और ऊपर बिन्दु वाले तार सप्तक के स्वर हैं—यथा—स सा सां

२—नीचे रेखा वाले स्वर कोमल हैं, यथा—रि ग ध नी और बिना रेखा वाले तीव्र स्वर हैं। यथा—रि ग ध नी

३—कोमल मध्यम का चिन्ह म ग्रार तीव्र मध्यम का मं है

४—जो स्वर किसी स्वर के ऊपर लिखा हो, जैसे—नि/स ग/म उसको आलङ्कारिक स्वर या Crace Note कहते हैं।

आलङ्कारिक स्वर को स्पर्श मात्र दबाने के पश्चात् मूल स्वर को दबाना चाहिए।

ताल

१—सम का चिह्न =×

ख़ाली का चिह्न= ०

और तालों के लिए अङ्क होगा=१ ३

२—‿इस चिह्न के अन्दर दिए हुए स्वरों को एक मात्रा-काल में गाना या बजाना चाहिए।

३—जिन स्वरों के आगे—यह चिन्ह हो, उनको एक-एक मात्रा-काल तक और बढ़ाना चाहिए, जैसे सा—रि—

यदि ऐसे दो या दो से अधिक हों तो वहाँ उतने ही मात्रा-काल तक रुकना चाहिए यथा—स— — —

४—जहाँ से स्थायी या अन्तरे को दुहराया जायगा वहाँ यह*चिह्न होगा।

* * *

होली, कालिङ्गड़ा—तीन ताल

(१६ मात्रा)

स्थायी—कान्हा रँग डार गयो हो बेपीर।
भींग गई मोरि सर की चुनरी,
सगरी रँगी मेरो तन की चीर।
अन्तरा—मारत गुलाल तक तक सब को,
सखियन घेरत निपट अनारी,
सब ही के मुख पर मलत अबीर॥

स्थायी

३				०				१				×			
०		क		क							क		क	०	क
सं	नि	ध	प	ध	प	म	ग	म	—	प	ध	मप	धनि	संनि	धप
कां	हा	रँ	ग	डा	आ	र	ग	यों	—	बे	ए	पीइ	इइ	इइ	इर
क			क								क		क		
ध	—	प	ध	म	प	ग	म	ग	म	ग	रे	ग	रे	स	—
भीं	—	ग	ग	ई	ई	मो	रि	स	र	की	ई	चु	न	री	—
	क		क				क		०	०	०क	०	क		क
स	रे	ग	रे	म	—	प	ध	नि	सं	सं	रें	संनि	धप	मप	धप
स	ग	री	रँ	गी	—	मे	रो	त	न	की	ई	चीई	ईई	ईई	इर

अन्तरा

क	•		क		०		०		०क	०	०क	०		०	
ध	—	प	ध	नि	सं	नि	सं	नि	रें	सं	रें	सं	नि	सं	—
मा	—	र	त	गु	ला	आ	ल	त	क	त	क	स	ब	को	—
	०क	०	०क	०	०	क	०			०	०क	०		क	
नि	रे	ग	रे	म	ग	रे	स	नि	नि	स	रे	स	नि	ध	प
स	खि	य	न	घे	ए	र	त	नि	प	ट	अ	ना	आ	री	ई
				क		क		०	०क	०		क	०	क	
म	ग	म	प	ध	प	ध	नि	स	रे	स	नि	पध	निस	निध	प
स	व	ही	के	मु	ख	प	र	म	ल	त	अ	बीई	ईई	ईई	र

नोट—इस राग में 'रे' और 'ध' हमेशा कोमल लगते हैं।

(पृष्ठ ६३० का शेषांश)

दुर्लभ हैं। दास या दासियों के हाथों में बच्चों को सौंप कर निश्चिन्त हो जाना उनके जीवन की पवित्रता नष्ट करना है। सदैव आचरण-भ्रष्ट दासों के सङ्ग से बच्चों पर बुरा प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता और रोगी नौकरों के रोग बच्चों को हो जाने का भय रहता है। सङ्गत से ही गुण उत्पन्न और नष्ट होता है, ऐसी दशा में कम विचार के बच्चों को कदापि अशिक्षितों के सङ्ग में न रखना चाहिए। हमेशा घर के काम दास-दासियों पर छोड़ने के पहले उनकी बुद्धि और आचरण की जाँच कर लेनी उचित है। शिक्षित दास-दासियों के अभाव में स्वयं ही काम की देख-रेख करना ठीक और लाभप्रद है।

गृह-प्रबन्ध की इन आवश्यक और मुख्य बातों पर विचारने और ध्यान देने से ज्ञात होता है कि गृह-प्रबन्ध के लिए भी कुछ विशेष शिक्षा की आवश्यकता है। जब तक स्त्रियों को यह शिक्षा नहीं दी जायगी, वे गृह-प्रबन्ध में अपनी बुद्धि नहीं लगा सकतीं और न दक्षता से कोई कार्य कर सकती हैं। स्कूलों और कॉलेजों की शिक्षा के साथ उन्हें पाक-विधान, शिशु-पालन, रोग-चिकित्सा, और स्वास्थ्य-विद्या की भी शिक्षा मिलनी चाहिए। तभी वे अपने कर्त्तव्य का पालन कर, पुरुष-समाज की चिन्ता दूर कर अपने मनोहर कृत्यों से घरों में स्वर्ग-सुखों का अनुभव करा सकती हैं। सदा पुरुषों का ध्यान नारियों की गिरी दशा से निस्तार करने की ओर होना चाहिए, क्योंकि नारियों के निस्तार से ही समाज का भी निस्तार है।

मैं तुम्हें नौकर रख लूँगा, परन्तु पहले तुम यह बताओ कि तुमने कितनी जगह काम किया है।

तीस जगह!

तीस जगह! तब तो तुम्हें काफ़ी अनुभव होगा। इन तीस जगहों में तुमने कितने दिन काम किया।

एक वर्ष!

पुत्र—पिता जी आपके सिर पर बाल क्यों नहीं हैं?

पिता—मुझे दिमाग़ी काम ज्यादा करना पड़ता है इस लिए बाल नहीं पैदा होते। जिस अंग से अधिक काम लिया जाता है उस अंग पर बाल नहीं पैदा होते।

पुत्र—माता जी के दाढ़ी मूँछ नहीं है। तो क्या उन्हें मुँह से अधिक कान लेना पड़ता है?
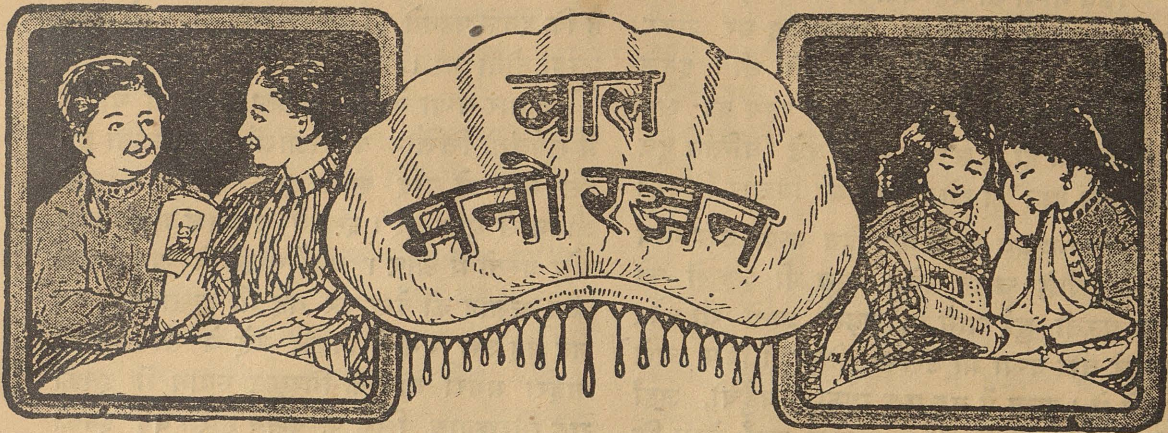
बप्पा रावल

नागदत्त नाम के एक राजा राजपूताने में राज करते थे। जब वह भीलों के हाथ से मारे गए तब उनके पुत्र की अवस्था केवल तीन बरस की ही थी।

गिल्होट नाम के वंश वाले उनके कुल-पुरोहित थे। जब उस बालक की रक्षा करने के लिए कोई भी न रहा तो उन्होंने निश्चय किया कि चाहे प्राण चले जायँ, पर इस वंश की रक्षा तो करनी ही होगी। यह विचार कर उन्होंने बड़ी-बड़ी कठिनाइयाँ सहीं, परन्तु तब भी वहाँ रहना कठिन हो गया। फिर वह उस बालक को लेकर त्रकूट पर्वत पर चले गए। इस पर्वत पर शान्ति स्वभाव के शिव जी के सेवक निवास करते थे।

जब वह बालक को लेकर उस पर्वत पर पहुँचे तो उन्होंने भीलों के यहाँ निवास किया और भीलों ने भी इनका उचित आदर-सत्कार किया। वह उस बालक को शिव-उपासकों को देकर स्वयं लौट आए। उस पर्वत पर भले प्रकार रक्षित होने के कारण इनके लिए कोई खटका न रहा। जैसे जैसे समय व्यतीत होता गया, वह भी काल के साथ बड़े होते गए। इस बालक के जीवन की बहुत सी अद्भुत घटनाएँ प्रचलित हैं, क्योंकि "होनहार क्या कहीं छिपाए से छिपते हैं?" इसी बालक का नाम बप्पा रावल हुआ।

जिन ब्राह्मणों ने इनको पाला था, बप्पा रावल बड़े होने पर उनकी गायों को चराया करते थे। इस सम्बन्ध में निम्न कहानी भी प्रचलित है :—

"एक समय जब बप्पा रावल गायों को चराने ले गए तो नगेन्द्रनगर की राजकुमारी से इनका साक्षात् हुआ। वह राजकुमारी अपनी सहेलियों सहित झूला झूलने आई थी। परन्तु भूल से उसकी सहेलियाँ झूले की रस्सी साथ लाना भूल गईं। राजकुमारी की सहेलियों ने बप्पा रावल से कहा—'तुम हमारी रस्सी ला दो।' बप्पा रावल ने उत्तर दिया—'हमारे साथ अपनी कुमारी का ब्याह कर दो, तो ला देंगे।'

खेल में ही उन्होंने सोलङ्की राजकुमारी के साथ बप्पा रावल का ब्याह कर दिया। राजकुमारी का दुपट्टा बप्पा रावल की धोती से बाँध कर एक वृक्ष के चारों ओर फेरे डाल दिए। जब राजा ने इस बात को सुना तो बप्पा रावल का वहाँ रहना कठिन हो गया और वह अपने बालीय और देव नामक दो साथियों के साथ उस स्थान को छोड़ कर चले आए।

जिन गायों को यह चराया करते थे, उनमें से एक गाय बड़ी दुधारी थी, परन्तु वह घर आकर ज़रा भी दूध नहीं दिया करती थी। इनके साथियों ने इनसे कहा, तुम इस गाय का सब दूध पी लेते हो, इस पर बप्पा बड़े चिन्तित हुए और इस बात की खोज करने का विचार किया।

यह निश्चय करके एक दिन बप्पा उस गाय के पीछे-पीछे चलने लगे। गाय भी जङ्गलों को पार करती हुई आगे ही बढ़ती जाती थी और हमारे वीर बप्पा भी उसका पीछा ही किए चले जाते थे। अन्त में वह एक गुफा में पहुँची, जहाँ कि एक शिव-मूर्ति थी। बप्पा ने वहाँ देखा कि गाय शिव-मूर्ति के पास खड़ी हो गई और उसने आधा दूध उस मूर्ति पर गिरा दिया और आधा दूध उस जगह हारीत मुनि को पिलाया। बप्पा के वहाँ जाने से मुनि का ध्यान भङ्ग हो गया और मुनि ने उनसे उनका नाम और धाम पूछा। मुनि इनसे बड़े प्रसन्न हुए और फिर वह प्रत्येक दिवस मुनि-दर्शन के लिए वहाँ जाने लगे और उनसे अनेक विद्या सीखने लगे। इनके गुणों पर मोहित हो, मुनि ने इनको बहुत से हथियार दिए और भगवती ने प्रसन्न होकर एक तलवार दी। कहते हैं कि यह तलवार* बत्तीस सेर की थी।

जब मुनि के मरने का समय निकट आया तो उन्होंने बप्पा रावल को एक नियत रात्रि के समय अपने पास बुलाया। परन्तु उस रात्रि को उस समय वह सो गए और इस कारण वह वहाँ न पहुँच सके। कथा प्रचलित है कि मुनि को इन्होंने आकाश में जाते हुए देखा और इनकी देह पाँच हाथ बढ़ गई। पर तब भी यह वहाँ न पहुँचे। फिर मुनि ने इनको अपना मुँह खोलने की आज्ञा दी। जब इन्होंने मुँह खोला तो मुनि ने उसमें थूक दिया, पर वह थूक मुँह में न गिरा। कहते हैं कि इनके पहनने का कपड़ा साढ़े चार सौ हाथ लम्बा होता था।

कुमार बप्पा ने अपनी माता से सुना था कि मैं सूर्यवंशी चित्तौर के राजाओं का भाञ्जा हूँ। इस बात को याद करके इनको अपने चरवाहे जीवन से घृणा हुई। इन्होंने बनवास छोड़ दिया और बस्ती में आए। वहाँ वालों के अच्छे कार्य और उत्साह को देख कर यह भी उत्साहित हुए। जब वह उस बन से निकल रहे थे तो मार्ग में नाहरा मगरा नाम के गिरकूट स्थान में इनको गुरु गोरखनाथ सिद्ध के दर्शन हुए। वह इनकी योग्यता और तेज को देख कर प्रसन्न हुए और उन्होंने इनको एक दुधारी तलवार दी। कहते हैं कि इस तलवार को यदि मन्त्र पढ़ कर चलाया जाय तो पहाड़ के भी दो टुकड़े कर दे।

जिस समय बप्पा चित्तौर में पहुँचे उस समय वहाँ मौर्य-वंश के मानसिंह नाम के राजा राज करते थे। महाराज मान ने अपने भाञ्जे को आया जान कर उनका आदर-सत्कार करके ग्रहण किया और अपना प्रधान सामन्त बनाया। उनको कुछ भूमि भी भरण-पोषण को दी। महाराज मान के समय में सामन्त-प्रथा का ज़ोर था, परन्तु बप्पा के आने के बाद महाराज को सामन्तों की आवश्यकता न रही, इसलिए हमारे वीर बप्पा सब की आँखों में खटकने लगे।

उसी समय एक विदेशी बैरी ने आकर चित्तौर पुरी को घेर लिया। महाराज ने सामन्तों को लड़ने की आज्ञा दी। उन्होंने भूमि के पट्टे बड़े क्रोध से फेंक दिए और उत्तर में कहा—"महाराज, अपने प्रधान सेनापति बप्पा जी को लड़ाई में भेजें।" बप्पा युद्ध में गए, बड़े उत्साह से बैरियों से भिड़े। फिर और भी सरदार और सामन्त इनके साथ गए। बप्पा की मार बैरियों से न सही गई और वह भाग गए। इस प्रकार वह विजयी होकर चित्तौर में न आए और अपने

---

* इस तलवार की और भी बहुत सी कहानियाँ प्रचलित हैं। यह हम किसी अगले लेख में लिखेंगे।

—लेखक

पुरखाओं की राजधानी ग़ज़नी में चले गए। उस समय ग़ज़नी में मुसलमान राजा सलीम राज करता था। इन्होंने उसको उद्दी से उतार, उसकी बेटी से ब्याह किया।

सरदार भी अपने घोर अपमान के कारण चित्तौर न लौटे। महाराज मान ने जब उनको बुलाया तो उन्होंने कहला भेजा कि हम अपने अपमान का आप से एक साल तक बदला न लेंगे। आप तैयार हो जायँ। फिर यह सब मिल कर एक योग्य सरदार की खोज में लगे और उन्होंने बप्पा को ही अपना मुख्य नेता स्वीकार किया। बप्पा भी राज-लोभ में पड़ कर उनके नेता बने और चित्तौर अपने मामा मान से छीन लिया। उस समय यह उनके सब उपकार भूल गए और उनको गद्दी से उतार कर स्वयं गद्दी पर बैठे। इस समय यह केवल १५ बरस के थे।

यह राजकार्य बड़ी योग्यता से करते रहे और जब इनकी अवस्था ५० बरस की हुई तो यह राज्य को छोड़, ख़ुरासान देश में चले गए। वहाँ बहुत से प्रदेश विजय किए और अनेक मुसलमान स्त्रियों से ब्याह किया, जिससे इनके बहुत पुत्र और पुत्रियाँ हुईं। फिर ५० वर्ष बाद अर्थात् १०० वर्ष की अवस्था में बप्पा ने अपना शरीर त्याग दिया।"

—गङ्गादेवी कुलश्रेष्ठ

*　　*　　*

लकड़हारा और जलदेवता

एक नगर में एक लकड़हारा रहता था। वह बहुत निर्धन था। प्रति दिन जङ्गल से लकड़ी काट कर लाता और उसे बेच कर अपना निर्वाह करता था। एक दिन वह एक जङ्गल में लकड़ी काटने गया। एक नदी के किनारे एक सूखा हुआ पेड़ था। वह उसी वृक्ष पर चढ़ कर उसकी डालियाँ काटने लगा।

संयोगवश उसकी कुल्हाड़ी हाथ से छूट कर उसी नदी में गिर पड़ी। वह बेचारा अफ़सोस करता हुआ उसी नदी के किनारे पर रोने लगा। उसके पास वही एक कुल्हाड़ी थी और वही उसके जीवन-निर्वाह का एकमात्र सहारा थी। वह ज़ोर से रो रहा था। उसे रोता देख कर जल-देवता को दया आ गई। परन्तु उसी समय उन्होंने यह भी सोचा कि ज़रा इसके ईमानदारी की भी परीक्षा लेनी चाहिए। यह सोच कर उन्होंने नदी से बाहर आकर लकड़हारे से उसके रोने का कारण पूछा। लकड़हारे ने कहा—"मैं अपनी कुल्हाड़ा लेकर इस वृक्ष की एक डाली काट रहा था। अचानक मेरी कुल्हाड़ी नदी में गिर पड़ी। मैं बहुत ही निर्धन हूँ। मेरी वही एक कुल्हाड़ी थी। उसके बिना मेरा काम ही नहीं होगा और मैं भूखों मर जाऊँगा। यदि आप देवता हैं तो मुझ पर दया कीजिए और मेरी कुल्हाड़ी ला दीजिए।"

लकड़हारे की बात सुन कर उन्होंने नदी में डूब कर एक चाँदी की कुल्हाड़ी लाकर उस लकड़हारे को दिखा कर पूछा—क्या यह तुम्हारी कुल्हाड़ी है?

लकड़हारे ने कहा—नहीं।

फिर वे डूब कर एक सोने की कुल्हाड़ी ले कर बाहर निकले। फिर उस लकड़हारे को वह कुल्हाड़ी दिखा कर उन्होंने पूछा—क्या यह तुम्हारी कुल्हाड़ी है?

लकड़हारे ने कहा—नहीं।

अबकी डूब कर वे उस लकड़हारे की ही कुल्हाड़ी लेकर आए। इस बार उसने कहा—"हाँ, यही मेरी कुल्हाड़ी है।" जलदेवता ने उसकी ईमानदारी और सत्यता से प्रसन्न होकर उसको कुल्हाड़ी के साथ-साथ सोने और चाँदी की कुल्हाड़ियाँ भी दे दीं। वह लकड़ी काट कर अपने घर गया।

घर जाकर उसने सब से यह बात कह

सुनाई, सभी आश्चर्य करने लगे। उसकी कहानी सुन कर एक दूसरे लकड़हारे को भी अपना भाग्य आज़माने की इच्छा हुई। दूसरे दिन वह भी कुल्हाड़ी लेकर वहीं लकड़ी काटने गया। उसने लकड़ी काटते-काटते जान-बूझकर अपनी कुल्हाड़ी नदी में गिरा दिया और झूठ-मूठ जाकर किनारे पर रोने लगा।

जलदेवता फिर पहले दिन की ही भाँति आकर उससे रोने का कारण पूछने लगे। वह भी उसी लकड़हारे की भाँति बोला—"मैं बहुत ग़रीब हूँ। मेरी कुल्हाड़ी इस नदी में गिर गई है। मुझ पर दया कीजिए।" देवता ने उसकी भी परीक्षा लेनी चाही। उन्होंने नदी में डूब कर एक चाँदी की कुल्हाड़ी लाकर पूछा—क्या यह तुम्हारी कुल्हाड़ी है?

वह पहले लकड़हारे की कहानी सुन चुका था, अतएव बोला—नहीं।

फिर जलदेवता ने एक सोने की कुल्हाड़ी निकाल कर पूछा—"क्या यह तुम्हारी कुल्हाड़ी है?" अब लकड़हारा लोभ को न रोक सका। झट कह दिया—"हाँ।"

लकड़हारे का यह उत्तर सुन कर देवता नदी में डूब गए। लकड़हारा ताकता ही रह गया, पर वे फिर न निकले। बेचारा अपनी भी कुल्हाड़ी गवाँ कर अफ़सोस करता हुआ घर चला गया।

कभी देखादेखी नहीं करनी चाहिए। लोभ बड़ी बुरी वस्तु है। लोभ करने से हाथ की वस्तु भी चली जाती है। सदा ईमानदार होना चाहिए।

—बब्बनप्रसाद सिंह

* * *

सियार और ख़रगोश

लज्जा, अपमान और भय के कारण सियार भाई ने कुछ दिनों तक एकान्तवास किया। कुकुर भाई का भय बढ़ जाने से वह काँप उठते थे। राह चलते समय, कोई पीछे लगा हुआ है, इस भय से वह व्यस्त हो उठते हैं। बहुत-कुछ सोच-विचार के बाद उन्होंने ख़रगोश भाई को उनकी शैतानी का भरपूर बदला देने का निश्चय किया। मन ही मन सोचा—ख़ूब कोशिश कर, सारी बुद्धि लड़ाकर उसको मज़ा चखाऊँगा। वह भी याद करे कि किसी से पाला पड़ा था। बहुत होशियार बनता है। अब की साले को नानी की याद न करा दी तो मेरा नाम सियार भाई नहीं।

पर सियार भाई डाल-डाल चलते थे तो ख़रगोश भाई पात-पात। सियार भाई का इरादा ख़रगोश भाई से छिपा न रहा। ख़रगोश भाई ने भी मन ही मन निश्चय किया—ठहरो, तुम्हारे रहे-सहे विष-दाँत तोड़ कर ही आराम लूँगा। समझ क्या रक्खा है?

इसी धुन में ख़रगोश भाई चले जा रहे थे कि सामने घास पर एक बड़ा घोड़ा पड़ा दिखाई दिया।

धीरे-धीरे पैर रखते हुए ख़रगोश भाई आगे बढ़े। घोड़ा ज़िन्दा है या मुर्दा, यह तो निश्चय करना ही था।

आगे-पीछे, बाएँ-दाहिने, चारों ओर से देख-कर भी बेचारा कुछ समझ न सका। हठात् घोड़े की पूँछ हिल उठी। ख़रगोश भाई की समझ में अब आ गया कि घोड़ा ज़िन्दा है, पर गहरी नींद में पड़ा सो रहा है। वह न जाने क्या सोच कर चटपट दौड़ पड़े। अरे, सामने तो सियार भाई जा रहे हैं।

ख़रगोश भाई ने ज़ोर-ज़ोर से पुकारना आरम्भ किया—अरे सियार भाई हो, सियार भाई! ज़रा सुनना तो, बड़ी अच्छी ख़बर है। ओ सियार भाई! ज़रा ठहरो।

आवाज़ कान में पड़ते ही सियार भाई गर्दन घुमा कर खड़े हो गए। कौन पुकारता है?

ख़रगोश भाई। सियार भाई का हर्ष कौन देखे ? मन ही मन सोचने लगे—आज अकेला मिला है। गर्दन मरोड़ कर काँख में दबा, इसकी सारी कूद-फाँद सदैव के लिए समाप्त कर दूँगा। बड़े मौक़े से हाथ आया है।

पर निकट आने के पहले ही ख़रगोश भाई कहने लगे—भाई, एक बड़ा सुअवसर आज हाथ आया है। हम दोनों के भाग्य खुल गए हैं। अभी मैं एक स्थान पर ढेर का ढेर माँस पड़ा देख आया हूँ। उसे घर उठा लाने से कम से कम एक वर्ष के लिए छुट्टी हो जायगी।

इतना सुनते ही सियार भाई सारी शत्रुता भूल गए। प्रसन्न होकर पूँछने लगे—कहाँ भाई, कहाँ ? कहाँ वह अमृत-भण्डार देखा है ?

"यही सामने घास के मैदान में।"

सियार भाई ने फिर पूछा—क्या है ?

"एक घोड़ा मैदान में पड़ा हुआ है, उसे बाँध कर घर खींच ले आना होगा।"

सियार भाई बोले—चलो, जल्दी चल ! देर काहे की।

दोनों भाई परमानन्दित हो दौड़ चले।

अभी तक घोड़ा महाशय धूप में लेटे हुए आनन्द से सो रहे थे। दोनों भाई सोचने लगे कि घोड़े को किस प्रकार खींच कर ले जायँ। सियार भाई एक युक्ति बताते थे तो ख़रगोश भाई दूसरी। कुछ निश्चय न हो पाता था। बहुत-कुछ बहस के बाद ख़रगोश भाई सर हिलाते हुए बोले—वाह भाई, एक बड़ी बढ़िया युक्ति सूझी है। क्या कहना ! इससे बढ़ कर और कोई दूसरी युक्ति नहीं हो सकती। तुम घोड़े के पीछे घुटने टेक कर बैठ जाओ। मैं तुम्हारे दोनों हाथ उसकी पूँछ में बाँध दूँगा। बस, फिर क्या, काम बना बनाया है। अगर घोड़ा महाशय उठ कर भागना चाहें तो अपने शरीर के बल से रोके रहना। मैं भी सहायता करूँगा। यह सब मैं ही कर लेता, पर कमज़ोर आदमी हूँ। इधर बीमार भी रहा हूँ। अगर मैं तुम्हारी भाँति मोटा-ताज़ा होता, तो कहने की ज़रूरत न पड़ती। तुम्हारे सर की सौगन्ध खाकर कहता हूँ कि ऐसी मज़बूती से थामता कि बेटा घोड़ा भी याद करते कि किसी से पाला पड़ा है। चाहे सूर्य-चन्द्रमा टूट पड़ते, पर मैं उसे टस से मस न होने देता। हाँ, अगर तुम्हें भय लगता है, तो कोई दूसरा उपाय सोचा जाय।

सियार भाई मन ही मन कुछ भयभीत अवश्य हो रहे थे, पर ख़रगोश भाई के सामने छोटा बनने से मर जाना कहीं अच्छा है। सियार भाई अपने को वीर सिद्ध करने के लोभ को रोक न सके, बोले—अच्छा भाई, तुम्हारा कहना ठीक है। मैं राज़ी हूँ।

ख़रगोश भाई ने सियार भाई को घोड़े महाशय की पूँछ में चुपके से बाँध दिया। फिर दो पग पीछे हट, कमर पर दोनों हाथ रख कर खड़े हो गए और दाँत बाहर निकाल कर हँसने लगे। हँसी रुकने पर ज़रा आगे बढ़ कर कहने लगे—हूँ, घोड़ा पकड़ना हो तो ऐसे पकड़े। सियार भाई की पकड़ क्या ऐसी वैसी होती है ? हाँ, भाई, ज़रा मज़बूती से पकड़े रहना। मैं अभी आता हूँ।

यह कह कर ख़रगोश भाई चटपट झाड़ी से एक छड़ी तोड़ लाए और आगे बढ़ घोड़े की नाक पर सपाक से एक जमा दी।

घोड़ा महाशय इस प्रकार के शिष्टाचार के ज़रा भी अभ्यस्त न थे। वह तड़फड़ा कर उठ खड़े हुए और चारों पैरों से छलाँगें भरने लगे। अरे, यह क्या ? घोड़ा महाशय के कूदते ही सियार भाई तो एकदम सशरीर ऊपर उठ गए। ख़रगोश भाई खड़े चिल्लाने लगे—अरे, यह क्या करते हो, भाई ? ज़रा तो सँभलो। मज़बूती से पकड़ो। तनिक और ज़ोर लगाओ। राम-राम !! कहीं हार न मान लेना। बड़ी बदनामी होगी भाई !

पूँछ में एक भारी सियार का बोझ बँधा हो, तो भला कौन भलामानस हत-बुद्धि न हो जायगा? घोड़ा महाशय ने ऐसी घटना कभी देखी-सुनी न थी। बड़े चक्कर में पड़ गए। सियार भाई उन्हें तो दिखाई न पड़ते थे। उन्होंने समझा कि भूतों ने पूँछ पकड़ रक्खी है। वे भय से बेढब तुरकी नाच नाचने लगे। पर बोझा वैसा ही बना रहा। घोड़ा महाशय जितना ही नाचते-फिरते थे, सियार भाई भी उतना ही आँधी के तिनके की भाँति उड़ रहे थे। इस उछल-कूद में उनकी हड्डी पसली सब उलट-पुलट गईं। दुष्ट ख़रगोश भाई घोड़ा महाशय के साथ ही ताल देते हुए नाचते और कहते जाते थे—सँभलो, भाई सँभलो। ज़रा ज़ोर लगाओ। नीचे को दबाए रहो।

घोड़ा महाशय कूदते थे, उछलते थे, नाचते थे, फाँदते थे, उन्हें विराम कहाँ? पीछे तो भूत लगा हुआ था न! इसी बीच में किसी प्रकार अवसर पाकर सियार भाई ने कहा—सँभलो-सँभलो बार-बार कहते हो, कैसे सँभलूँ? ज़रा ज़मीन पर पैर तो टिके फिर थामूँ।

ख़रगोश भाई ज़रा पीछे हट कर फिर चिल्लाने लगे—रोको भाई, रोको। थोड़ी ही कसर है। ज़रा और बल लगाओ।

जब पूँछ का बोझ किसी प्रकार दूर न हुआ तो घोड़ा महाशय ने दुलत्ती छोड़ना आरम्भ किया। सियार भाई के पेट में एक लात जा लगी। लात के लगते ही वह भों-भों करके रोने लगे। घोड़ा महाशय और ज़ोर से दुलत्ती झाड़ने लगे। बराबर लातें लगने से सियार भाई का बन्धन छूट गया और वह शून्य में चक्कर खाते हुए भों-भों करते हुए मैदान में दूर जा गिरे। मामला सङ्गीन होते देख ख़रगोश भाई सटक गए थे।

सियार भाई यम के घर तक नहीं पहुँचे सही, पर यम के पड़ोसी के द्वार तक ज़रूर पहुँच गए थे। बेचारे की हड्डी-पसली सब ढीली हो गई थी। ख़रगोश भाई से बदला लेने की आशा से वह वहीं पड़े रहे। सियार भाई को केवल दुख यही था कि चलते-चलाते ख़रगोश भाई की चाल उन पर चल गई।

—वंशीधर, एम० ए०

विकाश

[रचयिता—श्री० जटाधरप्रसाद जी शर्मा 'विकल']

(१)

रुक जाता है वायु-वेग,
पर्वत में टकराने से।
रुक जाता जल-स्रोत राह—
में अवरोधक पाने से।
रुक जाता रवि का प्रकाश,
रथ के पछार खाने से।
कौन कहे शिशुता भी रुकती—
है यौवन आने से?

(२)

रुक जा सकती लहर-सिन्धु की,
इन्दु-चन्द्रिका पाकर।
रुक जा सकता है तुषार,
आघात उष्ण का खाकर।
रुक सकता संग्राम समर का,
रौद्र रूप दिखलाकर।
कौन कहे शिशुता भी रुकती—
है यौवन-पथ पाकर?

अखिल भारतवर्षीय महिला शिक्षा कॉन्फ़्रेन्स पटना, के स्वागत-समिति की कार्यकारिणी सभा की सुयोग्य सदस्याएँ

बैठीं हुईं—(१) मिसेज़ एस० के० पी० सिनहा (२) मिसेज़ एच० एल० नन्द क्यूलियर [कोषाध्यक्षा] (३) मिसेज़ के० पी० जैसवाल [उप-प्रधाना] (४) मिसेज़ मज़रुलहक़ [प्रधाना] (५) मिसेज़ पी० के० सेन [मन्त्रिणी] (६) मिसेज़ ईश्वरीनन्दन प्रसाद [संयुक्त मन्त्रिणी] (७) मिसेज़ ज्ञानचन्द [संयुक्त मन्त्रिणी]

खड़ी हुईं—(८) मिसेज़ डी० एल० नन्द क्यूलियर (९) मिसेज़ मूले (१०) मिसेज़ गोपालप्रसाद (११) मिसेज़ धर्मशीला (१२) मिसेज़ अस्थाना (१३) मिसेज़ ए० टी० सेन (१४) मिसेज़ डी० एन० सरकार

THE FINE ART PRINTING COTTAGE
ALLAHABAD
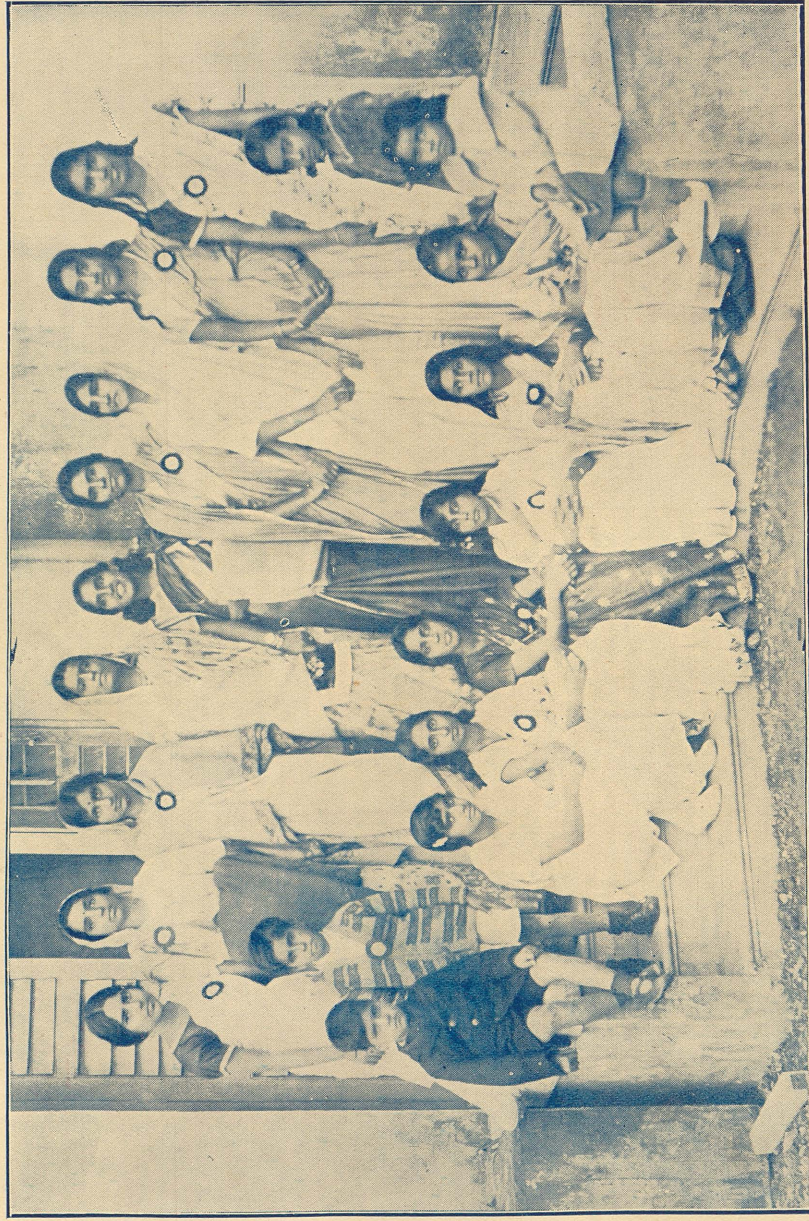
अखिल भारतवर्षीय महिला शिक्षा कॉन्फ़्रेन्स, पटना की स्वयं-सेविकाएँ, जिन्होंने बड़ी योग्यता से कार्य किया।

दिल की आग उर्फ़ दिल-जले की आह

[लेखक—'पागल']

दूसरा खण्ड

५
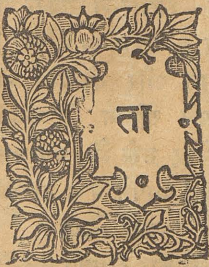
ता रा अपना चित्र देखते ही एकाएक चहक उठी, "अरे! क्या मैं इतनी सुन्दरी हूँ? और मुझमें इतनी सुन्दरता होने पर भी ...." उसने झट अपनी जीभ को दाँतों से दबा लिया और उसके चेहरे पर लज्जा की लालिमा दौड़ गई। मगर वह तुरन्त ही सँभल कर बातों में अपना भाव छिपा लेने की नियत से बोली—सचमुच आपकी तूलिका में जादू है। मैं तो आपकी कला पर मोहित हो गई।

मैं—मेरी कला पर या अपनी छवि पर?

उसके गालों पर की लाली और गहरा गई। मारे झेंप के वह तसवीर फेंक कर बोली—जाइए न देखूँगी, आप तो मुझे बनाते हैं।

वह उस समय झेंप और झुँझलाहट की ऐसी मूर्ति बनी हुई थी कि उसको चित्रकार ही नहीं, बल्कि कोई भी वास्तविक कलाविद् अपने मुग्ध-नेत्रों से बिना जी भर के निरखे नहीं रह सकता था। परन्तु मेरी कला तो मरी हुई थी। मेरी आँखों पर उदासीनता का परदा पड़ा था। मैं उसे प्रशंसा की दृष्टि से देखने के लिए उत्सुकता कहाँ से लाता? इसलिए मैंने मुँह फेर कर लापरवाही से कहा—जिस कला पर आप मोहित होने को कहती हैं, उसका अच्छा आदर किया।

इसके बाद 'डेक्स' से एक अधूरा 'पेन्सिल स्केच' जो मैं एक मासिक पत्रिका के लिए बना रहा था, निकाल कर चुपचाप बनाने लगा। पाँच मिनट बाद मुझे कमरे में सिसकने की आवाज़ सुनाई दी। मैंने चित्र से सर उठा कर देखा तो मालूम हुआ कि तारा कुरसी पर बैठी हुई रो रही है। मेरी उदासीनता अब स्थिर न रह सकी। मैंने कौतुकवश उसके पास जाकर पूछा—क्यों रो रही हो तारा? अगर यह चित्र तुम्हारे पसन्द नहीं है तो मैं तुम्हारी दूसरी तसवीर खींच दूगा। यह भी न स्वीकार हो तो मैं इस चित्र के साथ तुम्हारे रुपए भी वापस किए देता हूँ। ठहरो!

यह कह कर मैं उठ ही रहा था कि उसने मेरा हाथ पकड़ लिया और कुरसी के एक हैण्डिल पर अपनी कुहनी में अपना मुँह छिपा कर और भी बिलख-बिलख कर रोने लगी। मैं बड़े अचरज में पड़ कर सोचने लगा कि जिसकी बातों में इतना ज्ञान भरा रहता था वही आज बिना बात के एक नासमझ बालिका की तरह इतनी अधीर होकर इस तरह फूट-फूट कर रो रही है। आख़िर क्यों? अब तो मुझसे न रहा गया। मेरा हृदय जो स्त्रियों से इतना जला हुआ था कि उसमें कभी इन लोगों के लिए सहानुभूति उमड़ती ही न थी, वही इसके आँसुओं से ऐसा द्रवित हो गया कि मैं अपने को सँभाल न सका। उसका सर अपनी गोद में लेकर मैं झट कुरसी के हैण्डिल पर बैठ गया और अपने रूमाल से उसके आँसू पोछने लगा। उसने अपने सर को ज्यों का त्यों मेरी गोद में रहने दिया। ऐसा मालूम होता था कि इसमें उसे बड़ी शान्ति मिल रही है।

मैं—तारा! क्या हुआ क्या? तुम एकाएक रोने क्यों लगीं?

तारा—क्या कीजिएगा पूछ कर? किसी को चित्र बनाने में सुख मिलता है तो किसी को रोने में। मैं तो नहीं पूछने गई थी कि आप क्यों चित्र बना रहे हैं, जाइए बनाइए।

तारा की बच्चों की ऐसी भोली बात सुन कर मैं अवाक् रह गया। उसके रोने का कारण अब समझ में आया। उसके मान का अपमान हुआ। वह इसी लिए रूठी थी कि मैं उसे मनाऊँगा। यदि उसे यह आशा न

होती तो वह रूठती ही क्यों ? परन्तु मेरी लापरवाही ने उसके हृदय पर आघात पहुँचाया। जिसे उसका स्त्रीपन किसी तरह भी सहन न कर सका। मैं मन ही मन अपनी हृदयहीनता को धिक्कारने लगा। और जिस तरह से माँ अपने मचले हुए बालक को गोद में हिला-डुला कर चुप कराती है, उसी तरह मैं उसके सिर को अपनी छाती से लगा कर उसे शान्त करने का उद्योग करने लगा।

मैं—अरी तारा, तू इतनी योग्यता और ज्ञान पाकर भी ऐसी नासमझ है, मैं नहीं जानता था!

तारा अपना मुँह उसी तरह मेरी गोद में छिपाए हुए बोली—और मैं नहीं जानती थी कि 'नासमझी' में इतनी शक्ति है, वरना मैं ज्ञान और योग्यता को कभी अपने पास फटकने न देती। बल्कि उन्हें झाड़ू मार कर दूर भगाती।

मैं—यह क्या कहती हो? ज्ञान ही से मनुष्य के मनुष्यत्व की शोभा है।

तारा—"परन्तु स्त्री के स्त्रीपन की नहीं, बालक के बालकपन की नहीं।" इतना कहते-कहते उसने अपना सिर उठा लिया। उसकी सूरत से भोलापन का वह आकर्षण लोप हो गया। उसकी जगह पर ज्ञान की कान्ति फिर छा गई। मैं वहाँ से उठ कर दूसरी कुरसी पर बैठ गया। क्योंकि अब उसके पास उस तरह बैठे रहने का मुझमें साहस न रहा। वह कुछ देर तक अपने विचारों में डूबी रही। फिर वह इस तरह बोलने लगी मानो वह अपने मन से बातें कर रही है।

तारा—अब जाना। उफ़ ओह! प्रकृति की यह सत्यता इतने दिनों बाद मालूम हुई। मैं मानती हूँ कि ज्ञान बड़ी चीज़ है। मगर पुरुष के लिए पुरुषत्व, स्त्री के लिए स्त्रीपन और लड़कों के लिए लड़कपन उससे कहीं बढ़ कर है। ये प्रकृति के गुण हैं। इनमें जो आकर्षण और सौन्दर्य है वह मनुष्योपार्जित गुणों में कहाँ?

मैं—ठीक कहती हो, तुम्हारी बातों को मैं जितना ही सुनता और उन पर विचार करता हूँ उतना ही अधिक मेरा आदर तुम्हारे प्रति बढ़ता है। इसलिए तुम अपने ज्ञान को न धिक्कारो। यह उसी का प्रभाव है जो मुझ-ऐसे मुर्दे से भी तुम्हारा सत्कार करा रहा है।

उसने झुँझला कर उत्तर दिया—चूल्हे में जाय यह सत्कार। मैं देवता नहीं हूँ, मैं कोई पत्थर की मूर्ति नहीं हूँ।

मैं—देवता न सही, मनुष्य तो हो। मनुष्य ही सत्कार का भूखा होता है तारा.........

तारा—"फिर भी हर समय नहीं, हर जगह नहीं, हर व्यक्ति से नहीं।" यह कह कर उसने अपने मुँह को अपने दोनों हाथों में छिपा लिया और उसी तरह नीचा सिर किए हुए फिर बोली—संसार में सत्कार से भी बढ़ कर कोई चीज़ है। वह क्या है, सोच कर देखिए! उसे अब जाना कि स्त्री केवल ज्ञान और योग्यता से नहीं प्राप्त कर सकती, बल्कि अपने स्त्रीपन से, अपने स्वाभाविक गुणों से। उफ़! इसीलिए उसे मैं अब तक प्राप्त न कर सकी थी। भाई अलिन्द! आपने मुझे उसकी प्राप्ति का उपाय बता कर मेरा बड़ा उपकार किया।

मैं—कैसा उपाय और कैसा उपकार? आप कहती क्या हैं?

तारा ने सिर उठा कर कहा—ईश्वर के लिए मुझे 'आप' न कहिए। आपके मुँह से यह शब्द मुझे वज्र-समान मालूम होता है। आप आदर और सत्कार के बड़े दानी हैं तो इस धन को लुटाने के वास्ते आपके लिए सारी दुनिया पड़ी है। परन्तु मुझे क्षमा कीजिए। मैं आपसे यह दान नहीं चाहती, नहीं चाहती।

मैं—तब क्या चाहती हो, कुछ कहो तो।

तारा—पहले यह तो बताइए कि आप उसे दे सकेंगे?

मैं—अगर वह चीज़ मेरे पास होगी तो मैं अवश्य दूँगा।

तारा—घबड़ाइए नहीं। मैं ऐसी कोई चीज़ चाहती ही नहीं, जो आपके पास न हो।

मैं—आख़िर वह है क्या, कुछ बताओ तो।

तारा—अब न कहूँगी।

मैं—क्यों?

तारा—अगर मुझमें शक्ति होगी तो मैं आप ही ले लूँगी। ऐसी चीज़ें माँग कर नहीं ली जातीं।

मैं—तारा! तारा! इतनी गहरी पहेली न बनो। मेरा दिमाग़ बहुत कमज़ोर है।

तारा—मालूम है, आप बीमार हैं। इसीलिए मैं आपके पास आई थी कि बीमार, बीमार का हाल जितना

समझ सकता है, उतना डॉक्टर भी नहीं जान पाता। मगर अफ़सोस! आप अच्छे बीमार हैं कि मेरी व्यथा नहीं समझ सके। अगर समझ सकते तो क्या कहना था—

"ख़ूब गुज़रेगी जो मिल बैठेंगे दीवाने दो।"

मैं—"हाथ जोड़ता हूँ तारा। मुझे अब अधिक उधेड़-बुन में न डालो। ईश्वर के लिए साफ़-साफ़ कह दो, क्या चाहती हो।"—इतना कह कर मैंने उसका हाथ पकड़ लिया और कहा—तुम्हें बताना पड़ेगा। जब तक न बताओगी तब तक तुम्हें छोड़ूँगा नहीं।

तारा ने मुस्करा कर पूछा—क्यों? आप इतने परेशान क्यों होगए?

मैं—क्योंकि मैं डरता हूँ कि शायद तुम्हारा लक्ष्य कहीं ऐसी वस्तु पर तो नहीं है जिसे मैं न दे सकूँ?

तारा—अगर वह भी दे सकते तो शायद आपको इस वक़् इतनी परेशानी न होती! क्यों?

मैं—मुमकिन है।

तारा—"बस, जो मैं चाहती थी, पा गई।" इतना कहते-कहते उसने अपना हाथ झटक कर छुड़ा लिया और हँसती हुई वहाँ से भाग गई।

६

तारा की कैसी विचित्र प्रकृति थी, यही सोचते-सोचते मेरा दिमाग़ चकरा गया। कभी वह तत्वज्ञानी-सी प्रतीत होती थी और कभी ऐसी भोली कि मानो वह कुछ जानती ही नहीं। घड़ी में रूठना और घड़ी में हँसना। उसके स्त्रीपन की कैसी प्यारी छटा थी कि मुझ ऐसे उदासीन हृदय पर भी अपना प्रभाव बिना डाले न रह सकी। वह अपने ज्ञान और योग्यता के कारण मेरे लिए आदरणीया थी अवश्य, फिर भी उसके इन गुणों में वह माधुर्य, वह आकर्षण न था जो उसके भोलेपन में था। वरना और कभी तो मैं उसके पास बैठ कर इतने प्यार से उससे सहानुभूति न कर सका था? सच है, प्रकृति जिसको जिस लिए उत्पन्न करती है, उसको उसी के योग्य और अवस्थानुकूल स्वाभाविक गुण भी देती रहती है, ताकि उनके बल पर वह अपनी स्थिति को रोचक बनाता हुआ प्रकृति के आदेशों को पूरा कर सके। यदि कोई इन गुणों को किसी युक्ति से निर्मल कर दे, अन्य गुणों से बदल दे या अवस्था के विपरीत उनका प्रयोग करे तो फिर उसमें उसकी व्यक्तिता का स्वाभाविक सौन्दर्य कब रह सकता है? बच्चा ज्ञान छाटने लगे तो संसार में उसका आदर भले ही हो, परन्तु उसको गोद में उठा कर चूमने का भला किसका जी चाहेगा? तब प्यार किए जाने की उसकी स्वाभाविक लालसा की कैसे तृप्ति हो सकती है? उसे कितना ही सम्मान क्यों न मिले, मगर उससे उसके बाल्य-स्वभाव को कभी भी वास्तविक सन्तोष नहीं मिल सकता। इसलिए हर व्यक्ति में उसके व्यक्तिपन का होना उतना ही आवश्यक है जितना नेत्रों के लिए देखना और कानों के लिए सुनना। सचमुच तारा की टूटी-फूटी बातों में तत्व की बड़ी गहरी सच्चाई थी। परन्तु इसकी थाह उसे इतनी छोटी अवस्था में किस तरह मिली? निस्सन्देह उसका हृदय किसी अपने स्वाभाविक आकांक्षा के लिए भीतर ही भीतर रो रहा था, तभी ज़रा सी मेरी सहानुभूति से उसे यह असलियत सूझ गई।

ऐसी-ऐसी कितनी ही बातों में उसके अलौकिक ज्ञान की चमक अकसर झलक उठती थी, जिन्हें सुन कर मैं चकित होकर रह जाता था और मन ही मन उसका आदर करता था। परन्तु वह कौन सी ऐसी चीज़ थी जिसे वह इतनी ज्ञान-सम्पन्ना होने पर भी प्राप्त नहीं कर सकी थी और वह कौन सा पदार्थ था जो वह मुझसे लेना ही नहीं चाहती थी, बल्कि ले भी गई, मैं नहीं जान सका। इस पर जितना ही विचार करता था उतना ही हैरान होकर रह जाता था। मैं तो उसे कुछ देने योग्य था भी नहीं। फिर मुझसे वह क्या पा गई, समझ में नहीं आया। उसकी अटपट बातों में भीतरी वेदना की तिलमिलाहट कुछ न कुछ टपकती थी अवश्य, परन्तु वह वेदना कैसी और क्यों थी, पता न मिला। इसलिए इन बातों के जानने की इच्छा मुझे उसके जाने के बाद ही से बुरी तरह सताने लगी। मैं अपने कौतूहल को जितना ही दबाना चाहता था उतनी ही मेरी सहानुभूति उसके प्रति न जाने क्यों आप से आप उमड़ कर उसे और भी तीव्र कर देती थी। यहाँ तक कि दूसरे दिन सुबह को जब मैं सो कर उठा तो सब से पहले मैंने यही सङ्कल्प किया कि आज डॉक्टर सन्तोषानन्द से जिस तरह भी मुमकिन होगा, तारा के सम्बन्ध में पूरा हाल जाने बिना नहीं

रहूँगा। जब वह उसका नाम जानते हैं तब उसका हाल भी कुछ न कुछ ज़रूर ही जानते होंगे।

यद्यपि डॉक्टर साहब उस दिन ख़ुद ही मेरे पास आने के लिए कह गए थे, फिर भी मुझसे उनके आने तक प्रतीक्षा न की जा सकी और मैं ही चटपट खाना खाकर उनके यहाँ जाने की तैयारी करने लगा। इतने ही में डाक आगई। और मैं अन्य ख़तों पर सरसरी नज़र डाल कर एक पत्र को बड़े ध्यान से पढ़ने लगा। और उसको हाथ में लिए घण्टों बैठा रह गया। क्योंकि वह तारा ही का भेजा हुआ था और उसमें यही लिखा था कि—

"भाई अरविन्द,

मैं घबड़ाहट में चित्र लाना भूल गई। चिन्ता न कीजिएगा। यद्यपि मुझे उसकी कोई आवश्यकता नहीं है, तथापि कहीं आपकी कला का निरादर न हो, इसलिए मैं उसे कभी न कभी मँगवा लूँगी। मैं तो अपने दुख से व्याकुल होकर आपकी शरण में शान्ति पाने के लिए गई थी। मुझे आपका हाल कैसे मालूम हुआ और मुझे आपसे शान्ति मिलने की क्यों आशा हुई, बताने का कोई प्रयोजन नहीं मालूम होता। अस्तु, दया करके आपने मेरे साथ जो सहानुभूति प्रकट की है, उससे मैं कभी उऋण नहीं हो सकती। उसी को पाकर मैं एक दफ़ा फिर जी उठी हूँ। आशा है, आप मुझ पर अपनी इस कृपा को सदा बनाए रक्खेंगे। इतने दिनों तक मैं आपके पास बराबर गई, मगर आपने मुझसे किसी दिन भी मेरा नाम तक नहीं पूछा। और आज एकाएक आपने मेरा नाम लेकर मुझे कैसे सम्बोधन किया? अवश्य किसी ने आपको उसे बताया होगा। ख़ैर! जिस किसी से भी यह मालूम हुआ हो, कृपया उससे आप मेरे सम्बन्ध में कुछ न पूछिएगा। आपको उसके लिए मैं उसी की शपथ देती हूँ, जिसको आप प्यार करते हैं। अगर कहीं मेरा हाल आप सुनें भी तो तुरन्त अपने कानों में उँगली डाल लीजिएगा। यह चेतावनी मैं आपको ज़बानी न दे सकी, इसीलिए घर पहुँचते ही मैं आपको यह पत्र लिख रही हूँ। आशा है, आप मेरे अनुरोध की पूर्ण रूप से रक्षा करेंगे और इस पत्र को जला देंगे। नमस्कार !

कृपाभिलाषिणी,

—तारा"

"पुनश्च—यद्यपि कोई भी प्रतिष्ठित सज्जन मेरा भाई कहाने में अपना अपमान समझेगा, तथापि मेरा हृदय आपको भाई करके सम्बोधन करने से किसी तरह भी नहीं मानता। इसके लिए क्षमा कीजिएगा—हाथ जोड़ती हूँ।"

इस पत्र ने मेरे कौतूहल को निवारण करने के बदले और भी उसका कर भड़का दिया। उसका दुख क्या है? उसे मुझसे शान्ति मिलने की क्यों आशा हुई? उस पर वह मुझसे अपना हाल क्यों छिपाना चाहती है? वह मुझे भाई कहने के लिए क्यों क्षमा माँगती है? यह सब मेरी समझ में कुछ भी नहीं आया। बल्कि उन पर विचार करते-करते उल्टे और भी मैं उलझन में पड़ गया। जितना रहस्यमय उसे मैं उसकी बातों से और उसकी प्रकृति की विचित्रता से समझता था, उससे कहीं बढ़ कर वह इस पत्र से मालूम हुई। इस रहस्य को कुछ सुलझाने की जो युक्ति सोची थी हाय! उसे भी उसने मुझसे छीन ली। क्योंकि उसके शपथ दिला देने से अब मैं उसका हाल डॉक्टर सन्तोषानन्द से भी नहीं पूछ सकता था। अगर मैं जानता कि उसके विषय में मुझे इतनी बेकली होगी तो इतने दिनों में मैं स्वयं ही उसी से उसका हाल बहुत-कुछ जान लेता। मगर तब तो मैंने इसकी परवा की ही नहीं। मैंने कभी उससे इतना भी तो नहीं पूछा कि तुम कौन हो, कहाँ रहती हो, क्या करती हो। और अब उसके आने की भी आशा नहीं थी; क्योंकि उसने चित्र मँगा लेने को लिखा था। उस पत्र में न तो उसका पता था और न मुहल्ले का नाम ही। इसलिए उत्तर देने से भी रहा। मैं इसी उधेड़-बुन में पड़ा हुआ था कि मैंने चिक के बाहर डॉक्टर सन्तोषानन्द को आते हुए देखा।

(क्रमशः)

अबलाओं के आँसू

मनु महाराज कहते हैं कि जिस कुल में स्त्रियाँ दुखित होकर हाहाकार करती हैं वह कुल शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। मैं इससे कुछ आगे जाना चाहता हूँ। मैं कहता हूँ जिस जाति में और जिस धर्म में स्त्रियाँ दुख से अश्रुपात करती हैं वह जाति और वह धर्म भी चिर-काल तक संसार में नहीं रह सकता। मैं कोई कवि नहीं, और न स्त्री-दास ही हूँ; इसलिए मेरे उपर्युक्त शब्द रमणी-समाज की झूठी श्लाघा न समझे जाने चाहिएँ। मैं इन शब्दों में एक अटल सचाई देखता हूँ। उस सचाई के कारण ही ऋषियों ने समाज में स्त्री को इतना महत्व दिया है। दुःख और चिन्ता से रोते-धोते रहने वाली माता कभी नीरोग और वीर सन्तान को जन्म नहीं दे सकती। फिर जिस घर में लड़के और लड़कियाँ रोगी, कायर, और बुद्धिहीन हैं, उसका अभ्युदय असम्भव है। परिवारों के समूह का ही नाम जाति है। दुखी, कायर और दुर्बल मनुष्यों का समूह कभी सुखी और स्वतन्त्र नहीं हो सकता। इसीलिए आज्ञा है कि स्त्री चाहे कितना भी घोर अपराध कर चुकी हो, उसे फूल तक भी नहीं मारना चाहिए। पर उसका अर्थ यह नहीं कि उसको कदाचार से न रोका जाय, या उसे मनमानी करने दी जाय—इससे समाज को घोर हानि होने का भय है। अतएव जिस उद्देश्य से स्त्रियों को सुखी और प्रसन्न रखने का आदेश है, वह महान उद्देश्य उच्छृङ्खलता से लुप्त हो जाता है।

हिन्दू-सभ्यता में स्त्री का स्थान बहुत उच्च है। उसके बिना कोई भी धर्म-कार्य पूरा नहीं हो सकता। परन्तु दुख से मानना पड़ता है कि पौराणिक काल में हिन्दू-स्त्री का पद बहुत गिर गया था और गिरा हुआ है। हिन्दुओं के राजनीतिक और सामाजिक पतन के कारण चाहे अनेक हों, परन्तु उनमें से अवश्य एक यह भी है। किसी फ़ारसी कवि का कथन है कि पीड़ित व्यक्ति का दुःखपूर्ण निश्वास बड़े-बड़े साम्राज्यों को विनष्ट कर डालता है। इसे शायद कुछ लोग अत्युक्ति समझें। परन्तु यह एक वैज्ञानिक सत्य है कि आँसू अनेक ऐसी चीज़ों को गला देता है जो किसी भी दूसरी वस्तु से नहीं गलतीं। फिर यदि ये आँसू किसी दुखिया देवी के हों तो फिर तो न मालूम वे क्या कर डालें।

हिन्दू लोग मुसलमानों और ईसाइयों के तलाक़ की खिल्ली उड़ाया करते हैं। वे अपने विवाह-सम्बन्ध को नित्य और अटूट बता कर अपनी पारिवारिक शान्ति की डींग हाँका करते हैं। परन्तु वे उस समय उन आत्म-त्यागी दुखी देवियों को भूल जाते हैं, जो दीपक में तेल की तरह जल कर इनके गार्हस्थ्य जीवन को सुखमय और प्रशान्त बना रही हैं। हिन्दू-पुरुष एक स्त्री के रहते दूसरा विवाह कर लेता है। अपने अनुकूल न होने पर वह पत्नी का परित्याग कर सकता है। उसकी इच्छा न रहते भी वह उसे अपने साथ रहने पर विवश कर सकता है, और स्त्री के रुग्ण होने पर भी उसे बलात् माता बना सकता है। इसके विपरीत स्त्री क़ानूनी तौर पर उसका कुछ भी नहीं बिगाड़ सकती। वह उसकी भोग्य वस्तु है और वह भोक्ता है। कोढ़ी, कलङ्की, दुराचारी और अत्याचारी

होने पर भी वह उसका परित्याग नहीं कर सकती। ऐसी अवस्था में हिन्दू-पुरुषों को अपना विवाह-सम्बन्धी सामाजिक नियम क्यों अच्छा न लगेगा? आगे मैं दो-तीन उदाहरण देता हूँ। इनसे पता लगेगा कि हिन्दू कन्याओं को कैसे-कैसे अत्याचार सहन करने पड़ते हैं!

मेरे अपने ही गाँव की बात है। गत वर्ष एक लड़की का विवाह हुआ। लड़की का पिता नहीं, माता और भाई हैं। खेती का काम होता है। ग़रीबी के कारण भाई
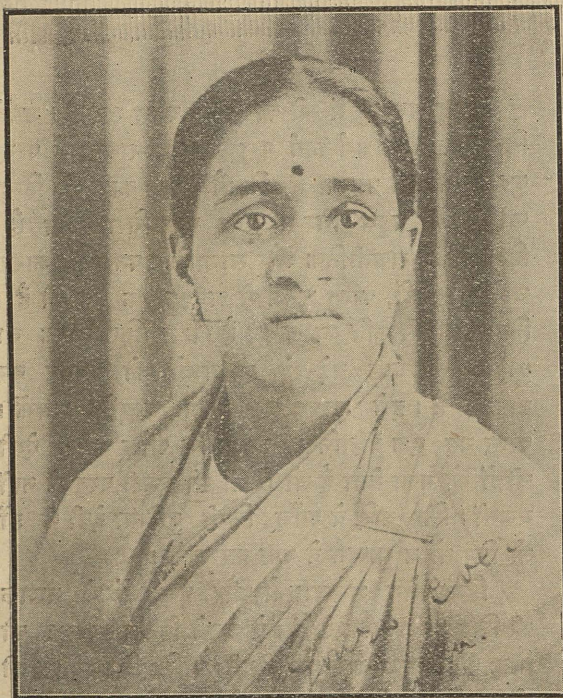
श्रीमती गङ्गूबाई पटवर्द्धन

आप प्रो० कर्वे महिला-विश्वविद्यालय की ग्रेजुएट [जी० ए०] हैं। किण्डरगार्टन तथा मॉन्टसोरी (Mantessory) सम्बन्धी उच्च शिक्षा प्राप्त कर हाल में ही विलायत से लौटी हैं।

का विवाह नहीं हो सकता था। माता ने लड़की को बेचने की ठानी। लड़की की अवस्था मुश्किल से १४ वर्ष होगी। माता ने रुपया लेकर एक चालीस वर्ष के प्रौढ़ पुरुष के साथ उसकी सगाई कर दी। विवाह की तिथि निश्चित हो गई। बारात आई। विवाह-मण्डप में जब वर महाशय पधारे तो बालिका एक गत-यौवन और कुडौल पुरुष को देख कर बहुत घबराई। उसने वहीं रोना आरम्भ कर दिया। उसने अपने सोहाग की चूड़ियाँ तोड़ डालीं, और मारे क्रोध के कपड़े फाड़ डाले। परन्तु उसकी सुनता कौन था? ज़बरदस्ती विवाह कर दिया गया। जब बारात के विदा होने का समय आया तो वह भाग कर कहीं छिप गई। ढूँढ़ने पर जब मिली तो उसने अपनी माता-रूपिणी बैरिन से साफ़ कह दिया कि मैं तो इस बुड्ढे के साथ जाऊँगी नहीं, तू चली जा। यह तेरे ही योग्य है। परन्तु इस घोर विरोध का कुछ भी फल नहीं हुआ। बेचारी को उस पुरुष के साथ, जो उसे एक आँख भी नहीं भाता था, पतिरूप से रहना ही पड़ा, उस बाला की मानसिक वेदना का अनुमान करके मेरा हृदय काँप उठता है!

एक दूसरी घटना सुनिए। मेरे एक मित्र की दो बहिनें हैं। मित्र का देहान्त हो चुका है। बड़ी बहिन विधवा है—बड़ी दुखिया है। दोनों बहिनें अपनी भाभी के मायके रहती थीं। विधवा भाभी के पिता ने ही छोटी बहिन की सगाई एक जगह की। लड़की की आयु मुश्किल से चौदह-पन्द्रह वर्ष होगी। परन्तु जिस विधुर के साथ उसका सम्बन्ध किया गया, उसकी आयु पैंतालीस से कम क्या होगी। परन्तु कन्या को वर की बड़ी अवस्था का पता तक नहीं दिया गया। वह यही समझती रही कि वर उसके समवयस्क है। जिस दिन बारात आई, लड़की की सहेलियाँ उसे लेकर वर को देखने गईं। वर को बूढ़ा देख, बालिका के हृदय पर भारी चोट लगी। वह मन को मसोस कर रह गई। घर आकर उसने अपनी बड़ी बहिन से कहा—बहिन, मौसा तो कहते थे, तेरे लिए तेरी आयु का ही वर ढूँढ़ा है। पर वह तो बुड्ढा है। इतना कहते ही कहते अनाथा के नेत्रों से आँसू टप-टप गिर पड़े। वह अपने उस भारी शोक को सँभाल न सकी। पर क्या कर सकती थी? पराधीन थी। एक घण्टा बाद 'सप्तपदी' हो जाने पर वह उस वृद्ध महाशय की जङ्गम सम्पत्ति बन गई। अब उसे इस अत्याचार से क़ानून भी नहीं बचा सकता।

तीसरी घटना एक चमार-कन्या की है। बेचारी

का विवाह कोई चार-पाँच वर्ष की आयु में हो गया था। परन्तु वह ससुराल नहीं गई थी। इस बीच में किसी आर्यसमाजी ने उसके पठन-पाठन का प्रबन्ध कर दिया।

मिसेज़ एल० रमुन्नी

आप मद्रास-सरकार द्वारा बिलारी म्यूनिसिपल-काउन्सिल की सदस्या नियुक्त की गई हैं।

बुद्धि तीव्र थी। शीघ्र ही विद्या प्राप्त कर ली। नाना प्रकार के कष्ट और असुविधाएँ होते हुए भी उसने पाँच कक्षाएँ पास कर लीं। सभ्य समाज में उठने-बैठने और बोलने-चालने का भी ढङ्ग आ गया। साफ़-सुथरी रहने लगी। होशियारपुर के पास बसी ग़ुलामहुसेन नाम का एक गाँव है। वहाँ डिस्ट्रिक्ट बोर्ड की कन्या-पाठशाला में अध्यापिका हो गई। उधर पति महाशय घास बेच कर निर्वाह करते थे। पहले तो इसलिए पत्नी को घर न लाए कि अभी छोटी है। व्यर्थ भोजन-वस्त्र का भार ही बढ़ेगा। परन्तु जब वह बड़ी हो गई और पढ़-लिख कर विदुषी बन गई तो डरे कि वह मेरे जैसे निरक्षर के घर बसना कब पसन्द करेगी। इसलिए उसने अपने पैसे खरे करने के लिए एक दूसरे मनुष्य के पास उसे बेच दिया। रजिस्टरी की जो नक़ल अरज़ी-नवीस के रजिस्टर में रहती है, वह नीचे दी जाती है :—

"नक़ल रजिस्टर अज़ अमृतसरिया अरज़ी-नवीस सदर होशियारपुर। मवर्रख़ा २७ जून, १६२८ ई०।

महँगा (लड़की के पति का नाम) की तरफ़ से इक़रारनामा।

मुसम्मात बन्ती उर्फ़ रमाबाई ज़ौजा (पत्नी) को मुज़हिर ने अपनी ज़ौजियत (पतित्व) से मुबलिग़ ३००) रुपया नक़द लेकर और बाक़ी दो सद रुपया लेना करके बहक़ मङ्गलसिंह वल्द गण्डासिंह रामदासिया सकना मँगवाल तर्क कर दिया है।

इक़रारनामा अज़ जानिब मङ्गलसिंह।

मिसेज़ जे० एस० जस्टिन

आप टिनावेली (मद्रास) ज़िला शिक्षा-समिति की सदस्या नियुक्त हुई हैं।

मुज़हिर मुसम्मात बन्ती उर्फ़ रमाबाई के बख़ाना ख़ुद आबाद हो जाने पर मुबलिग़ दो सद रुपया मुसम्मी महँगा वल्द दरबारी सकना धर्मकोट को दे दूँगा।"

जब गाय या भैंस बेची जाती है तो भी बेचने वाला उसका रस्सा ख़रीदने वाले के हाथ में सौंपता है। परन्तु इस सौदे में इतनी बात की भी आवश्यकता न समझी गई। रमाबाई को कुछ पता ही नहीं। वह अपनी पाठशाला में पढ़ा रही है। इधर वह बिक भी गई। एक दिन अचानक मङ्गलसिंह बसी गुलामहुसेन आया और पूछने लगा कि रमाबाई कहाँ है। रमाबाई ने कहा, कहो क्या काम है? तब वह बोला, यह देखो रजिस्टरी, मैंने तुम्हें मोल ले लिया है। तुम अब मेरे घर चलो।

श्रीमती जयावती देसाई

आप चिम्मनभाई स्त्री-समाज, बड़ोदा की मन्त्रिणी हैं। राजनैतिक आन्दोलनों में भी आप विशेष भाग लेती हैं। बड़ोदा प्रजा-मण्डल की कार्यकारिणी सभा की आप सदस्या भी हैं

रमा को बड़ा कष्ट और आश्चर्य हुआ। लड़की चतुर है। वह अपनी पाठशाला के भीतर चली गई, ताकि वह दुष्ट किसी प्रकार का अपमान न कर सके। ग्रामीण लोग बेचारी की सहायता करने के स्थान में उलटा उसकी हँसी उड़ाने और लाञ्छन लगाने लगे। अन्त को मङ्गलसिंह के विरुद्ध शिक्षा-विभाग के अधिकारियों के पास शिकायत की गई। तब कहीं कई मास के रगड़े-झगड़े के बाद अब उस धूर्त को डाँट-डपट हुई है, और बेचारी का पीछा छूटा है। रमा का जो पत्र हाल ही में मुझे मिला है, उसमें अपने कष्टों का वर्णन करते हुए उसने स्त्री-जाति की बेबसी पर भी आँसू बहाए हैं। यदि स्त्रियों के लिए भी पुरुषों को इस प्रकार बेच डालना सम्भव होता तो संसार की अवस्था आज से सर्वथा भिन्न दीख पड़ती। स्त्री अबला है, अपनी रोटी आप नहीं कमा सकती। वर्तमान समाज में उसका अकेली रहना या विचरना भी भय से रहित नहीं। इसीलिए पुरुष उस पर मनमाने अत्याचार कर रहे हैं। परमेश्वर जाने यह दशा कब सुधरेगी!

—सन्तराम, बी० ए०

* * *

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की परीक्षाएँ

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन भारतवर्ष की एक प्रसिद्ध और माननीय संस्था है। इसका मुख्य उद्देश्य भिन्न-भिन्न उपायों से हिन्दी-भाषा का प्रचार करना और इसके साहित्य को सर्वरूपेण समुन्नत करना है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए सम्मेलन की ओर से प्रति वर्ष (१) प्रथमा, (२) मध्यमा, (३) उत्तमा, (४) मुनीमी और (५) अराय़ज़नवीसी ये पाँच परीक्षाएँ ली जाती हैं। मध्यमा उत्तीर्ण परीक्षार्थियों को 'विशारद' तथा उत्तमा उत्तीर्ण सज्जनों को 'रत्न' की उपाधि दी जाती है। परीक्षार्थियों की सुविधा के लिए देश के भिन्न-भिन्न ज़िलों तथा राज्यों में १८० परीक्षा-केन्द्र स्थापित हैं और यह प्रयत्न किया जा रहा है कि संवत् १९८६ की परीक्षाओं के लिए क़रीब ३०० केन्द्र हो जायँ।

इन परीक्षाओं की कुछ विशेषताएँ ये हैं—सब परीक्षाएँ हिन्दी में होती हैं ; सभी देश, जाति और अवस्था के परीक्षार्थी इनमें सम्मिलित हो सकते हैं। परीक्षा-शुल्क

डॉक्टर मिस डी० एम० सतूर, बी० ए०; एम० बी०; बी-एस

आपने इस छोटी अवस्था में ही डॉक्टरी की बड़ी उच्च शिक्षा प्राप्त की है। इस समय आप मद्रास के लेडी वेलिंगटन मेडिकल-स्कूल में शिक्षिका का कार्य कर रही हैं।

बहुत कम रक्खा गया है। जो अनुत्तीर्ण परीक्षार्थी किसी विषय में एक बार उत्तीर्ण हो जाता है, उसे उसमें फिर से नहीं बैठना पड़ता। इन परीक्षाओं के उत्तीर्ण परीक्षार्थी योग्यता में विश्वविद्यालय के ग्रेजुएटों से किसी भी बात में कम नहीं होते*। इन परीक्षाओं का सर्वत्र पूरा सम्मान है और कुछ ज़िला बोर्डों और देशी नरेशों ने इन परीक्षोत्तीर्ण विद्यार्थियों को विशेष सुविधाएँ दे रक्खी हैं। यही कारण है कि प्रति वर्ष हज़ारों परीक्षार्थी इसमें सम्मिलित होते हैं। संवत् १९८५ की परीक्षाओं के लिए २,३६६ परीक्षार्थियों ने आवेदन-पत्र भेजे थे। विश्वविद्यालयों के ग्रेजुएट भी इसमें सम्मिलित होते हैं। इस वर्ष २३ बी० ए०, बी० एस्-सी० और एम० ए० मध्यमा परीक्षा में सम्मिलित हुए थे।

इन परीक्षाओं की एक विशेषता यह भी है कि महिलाओं से परीक्षा-शुल्क नहीं लिया जाता। इन परीक्षाओं की तरफ़ महिला-समाज का ध्यान विशेष रूप से गत दो वर्षों से ही आकर्षित होने लगा है। संवत् १९८३ में परीक्षार्थिनियों की संख्या केवल १८ थी। संवत् १९८४ और १९८५ की परीक्षाओं में उनकी संख्या बढ़ कर ६४ तक पहुँच गई। आशा है कि संवत् १९८६ की परीक्षाओं में परीक्षार्थिनियों की संख्या दो सौ से कम न होगी।

मिस बप्पू

आप हरदा (सी० पी०) म्यूनिसिपल काउन्सिल की सदस्या होने वाली प्रथम महिला-रत्न हैं। आप सामाजिक सुधार तथा शिशु-रक्षा आदि आन्दोलनों में विशेष भाग लेती हैं।

सम्मेलन की परीक्षाओं में उत्तीर्ण होने से हिन्दी-

* इससे हमारा मतभेद है।—स० 'चाँद'

भाषा का ज्ञान प्राप्त होता है, साहित्य में उन्नति होती है, उपाधियाँ उपलब्ध होती हैं और उपाधियों की प्राप्ति से कीर्ति भी मिलती है। इसलिए परीक्षाओं में बैठना, उन्हें पास कर उपाधियाँ प्राप्त करना और सब प्रकार अपनी मातृ-भाषा अथवा राष्ट्र-भाषा की सेवा करना प्रत्येक भारतवासी का धर्म है। इन परीक्षाओं का पूरा विवरण और पाठ्य पुस्तकों की सूची तथा आवेदन-पत्र परीक्षा-मन्त्री, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग को लिखने से प्राप्त हो सकते हैं।

हम आशा करते हैं कि सभी विचारशील शिक्षक और होनहार नवयुवक तथा नवयुवतियाँ इन परीक्षाओं में शीघ्र सम्मिलित हो, हिन्दी-प्रचार के गौरवमय कार्य में हाथ बँटाने का श्रेय प्राप्त करेंगे।

—दयाशङ्कर दुबे, एम० ए०, एल्-एल् बी०
(परीक्षा-मन्त्री)

* * *

कुमारी बहिन

चाँद की किसी पिछली संख्या में ग्राम्य-गीत सम्बन्धी एक लेख में मैंने प्रसङ्ग-वश एक 'कुमारी बहिन' का ज़िक्र किया था। उसे पढ़ कर 'चाँद' के कई पाठक-पाठिकाओं ने मुझसे 'कुमारी बहिन' का परिचय पूछा था। पर उस समय मुझे परिचय प्रकाशित करने की आज्ञा नहीं थी, और मुझे भी अच्छी तरह मालूम नहीं था, इससे मैंने किसी को उत्तर नहीं दिया। अब 'कुमारी बहिन' की कुछ बातें मुझे मालूम हुई हैं, चित्र भी मैंने प्राप्त कर लिया है और आज्ञा भी; अतएव 'चाँद' में सब प्रकाशित किए देता हूँ।

'कुमारी बहिन' का नाम कमलेश्वरी कुँज़रू है। आप सुप्रसिद्ध पण्डित हृदयनाथ कुँज़रू की चचेरी बहिन हैं और अपने माता-पिता के साथ ग्वालियर में रहती हैं। आप कुछ दिनों तक 'स्त्री-दर्पण' की सहकारी सम्पादिका भी रह चुकी हैं। सन् २१ से जब कि आगरे में श्रीमती गाँधी आई थीं, उनका उपदेश ग्रहण कर आपने विदेशी वस्त्र का त्याग किया था। तब से आज तक खद्दर ही पहनती हैं और बहुत सादा जीवन व्यतीत करती हैं। विदेशी चीज़ें इस्तेमाल नहीं करतीं, और न बनाव-सिंगार पसन्द करती हैं।

आपके हृदय में दया बहुत है। सन् १९२६ के दिसम्बर में आप कानपुर में गङ्गा नहाने गई थीं। सर्दी के दिन थे। जाड़ा ज़ोरों का पड़ रहा था। रास्ते में एक बुड्ढा फ़क़ीर, जो वस्त्रहीन था और सर्दी से काँप रहा था, बैठा था। उसे देख कर आप से न रहा गया। आपने अपना काशमीरी का कोट उतार कर उसे पहना दिया। बुड्ढा फ़क़ीर बोल नहीं सकता था। पर उसने ऐसी कृतज्ञता की दृष्टि से देखा, जिसका आपके ऊपर बहुत ही

काशमीरी वेष में कुमारी कुँज़रू

प्रभाव पड़ा और तब से आप दीन-दुखियों की ओर और भी अधिक आकर्षित हुईं। आपसे किसी का दुख नहीं देखा जाता।

आप बहुत बारीक सूत कातती हैं। एक बार कलकत्ते से आपको बढ़िया सूत के लिए इनाम भी मिल चुका है। आप अपने ही हाथ के कते सूत की दरी पर सोती हैं।

आप अभी अविवाहिता हैं। काशमीरी ब्राह्मण-वंश की हैं। कविता पढ़ने ही का शौक़ नहीं, बल्कि लिखती

भी हैं। यहाँ जो चित्र दिया जाता है, वह आपकी काश-मीरी पोशाक में है।

—रामनरेश त्रिपाठी

* * *

वेद में पर्दा-प्रथा

स्त्रियों के लिए पर्दा कितना घातक है, इससे कितनी हानियाँ हैं और यह भारतीय प्राचीन सभ्यता के विरुद्ध है, इत्यादि बातों पर 'चाँद' में यथासमय बहुत-कुछ लिखा जा चुका है। इन बातों पर फिर से लिखना यहाँ व्यर्थ ही सा है। हम यहाँ यह विचार करेंगे कि वेद में स्त्रियों के पर्दे के विषय में क्या कहा गया है?

पर्दा हिन्दू-जाति के सनातन धर्म के प्रतिकूल है। रामायण और महाभारत आदि इतिहास-ग्रन्थों के पढ़ने पर मालूम होता है कि उस ज़माने में पर्दे की प्रथा नहीं थी, रामायण में लिखे हुए सीता देवी के वे वचन जो उन्होंने अपने पति के प्रति कहे थे, प्रत्येक मनुष्य के विचार करने योग्य हैं। उन्होंने श्रीरामचन्द्र जी से कहा था—

अहं दुर्गं गमिष्यामि वनं पुरुष वर्जितम्।
नानामृगगणाकीर्णं शार्दूल गण सेवितम्॥
सुखं वनेनिवत्स्यामि यथैव भवने पितुः।
अचिन्तयन्तीत्रिल्लोकांश्चिन्तयन्ति पतिव्रतम्॥
शुश्रूषमाणा ते नित्यं नियता ब्रह्मचारिणी।
सह रम्येत्वयावीर वनेषु मधु गन्धिषु॥
साहं त्वयागमिष्यामि वन मद्य न संशयः!
नाहं शक्या महाभाग निवर्त्तयितु मुद्यता॥
अहं गमिष्यामि वनं सुदुर्गमं,
मृगायुतं बानर वारणैश्च।
वने निवत्स्यामि यथा पितुर्गृहे,
तत्रेव पादावुप गुह्य संयता॥

अर्थात्—"मैं ऐसे निर्जन, घोर वन में चलूँगी जहाँ अनेक तरह के पशु और शेर चीते वग़ैरह होंगे। मैं वन में उसी तरह सुख पाऊँगी जैसा अपने पिता के घर पाती थी। पातिव्रत्य धर्म के आगे मुझे तीनों लोकों की भी परवा नहीं है। मैं नियमों का पालन करूँगी, आपकी सेवा करूँगी। तुम्हारे साथ मन्द सुगन्ध-पूरित वन में आनन्दपूर्वक रहूँगी। मैं ब्रह्मचारिणी बन कर रहूँगी। निस्सन्देह तुम्हारे साथ वन में चलूँगी। मैं वन जाने से किसी भी तरह रुक नहीं सकूँगी।"

जब सीता के इन वचनों पर भी राम ने उन्हें अपने साथ ले जाने से इन्कार किया तो उन्होंने कहा—

किंत्वामन्यत वैदेहः पितामेमिथिलाधिपः।
राम जामातरं प्राप्य स्त्रियम् पुरुष विग्रहम्॥

अर्थात्—"मिथिलाधिप मेरे पिता ने आपको पुरुष-वेषधारी स्त्री समझ कर अपना जँवाई नहीं बनाया था।"

क्या पति-पत्नी की इन बातों से कोई यह कह

मिसेज़ ए० ईपेन

आप मद्रास-सरकार द्वारा बेजवाड़ा-म्यूनिसिपल काउन्सिल की सदस्या नियुक्त हुई हैं।

सकता है कि ये पर्दानशीन स्त्रियों की बातचीत है? यह उस स्त्री-रत्न की भाषा है, जिसे देख कर पातिव्रत्य

धर्म भी अपने भाग्य की सराहना करता है। पुरुष के साथ जो समानधर्मा होने का दावा कर सकती हो, वही ऐसे शब्दों का प्रयोग कर सकती है।

महाभारत की एक कथा देखिए। श्रीकृष्णचन्द्र जी जब कौरवों के पास पाण्डवों की ओर से सन्धि के लिए जाने लगे तब पाण्डव-पत्नि देवी द्रौपदी ने अपने बालों को दिखाते हुए कहा था :—

अयंते पुण्डरीकाक्षं दुश्शासन करोधृतः।
स्मर्तव्यं सर्व कार्येषु परेषां सन्धिमिच्छमः॥

श्रीमती इरावती कर्वे, एम० ए०

आप सुप्रसिद्ध समाज-सेवी प्रोफ़ेसर कर्वे की पुत्रवधू हैं, जो उच्च शिक्षा प्राप्त करने जर्मनी गई हैं। इस समय आप बर्लिन के एक विख्यात विश्वविद्यालय में अध्ययन कर रही हैं।

अर्थात्—"हे पुण्डरीकाक्ष ! आप सन्धि करते समय यह न भूल जाना कि नीच दुश्शासन ने मेरे इन बालों को खींचा था।"

यह बात उस ज़माने की है, जब कि श्रीकृष्ण जी की उम्र ८० वर्ष से अधिक हो चुकी थी।* श्रीकृष्ण जी पाण्डवों से उम्र में दुगुने से भी कहीं अधिक थे। अर्जुन के मित्र थे और पाण्डवों के कुटुम्बी थे। परन्तु द्रौपदी अपने केशों को साड़ी से बाहर निकाल कर उन्हें दिखाती है और निर्भयतापूर्वक श्रीकृष्ण जी से बातचीत करती है। ये दो उदाहरण हमने दिए हैं, किन्तु हमारा प्राचीन इतिहास यदि उठा कर देखा जायगा तो उसमें पर्दे का कहीं ज़िक्र भी नहीं मिलेगा। देव-दानव, ऋषि-मुनि, गन्धर्व-किन्नर, मनुष्य, नाग जाति के लोग, इत्यादि किसी भी जाति, समाज, वर्ण अथवा देश में पर्दा नहीं था। अब हम वेदों के निम्न मन्त्रों पर यहाँ विचार करेंगे।

अहं विष्यामि मयिरूपमस्या
वेददित् पश्यन्मनसः कुलायम्।
न स्तेयमद्मि मनसोदमुच्यतेश्वयं
अश्नानो वरुणस्य पाशान्॥ ५७॥

अर्थात्—"(अस्याः) इस पत्नी के (रूपम्) रूप को (मनसः) मन का (कुलायम्) आधार (वेदत्) जानता हुआ और (पश्यन्) देखता हुआ (इत्) ही (अहम्) मैं वर (मयि) अपने में (विष्यामि) निश्चयपूर्वक धारण करता हूँ (स्तेयम्) चोरी के पदार्थ को (न) नहीं (अद्मि) खाता हूँ (मनसा) विज्ञान से (वरुणस्य) रुकावट के (पाशान्) फन्दों को (स्वयम्) ख़ुद (श्रश्ना) ढीला करता हुआ (उत् अमुच्ये) मैं छूट गया हूँ।"

प्रत्वा मुञ्चामि वरुणस्य पाशाद् येनत्वबन्धात्
सविता सुशेवाः। उरुं लोकं सुगमत्र पन्थाम्
कृणोभितुभ्यं सहपत्न्यै वधु॥ ५८॥

अर्थात्—"(वधु) हे वधू ! (त्वा) तुझे (वरुणस्य) रोक के (पाशात्) बन्धन से (प्रमुञ्चामि) मैं छुड़ाता हूँ (येन) जिसके साथ (त्वा) तुझे (सुशेवाः) अत्यन्त सेवनीय (सविता) जन्मदाता पिता ने (अबन्धात्) बाँधा है। (सहपत्न्यै) पति के साथ (तुभ्यम्)

* इस सम्बन्ध में बहुत मतभेद है। अनेक ग्रन्थों में श्रीकृष्ण जी की आयु १५ से २० वर्ष की ही बतलाई गई है।
—सं० 'चाँद'

तेरे लिए (अत्र) यहाँ (उरुम्) चौड़ा (लोकम्) स्थान (सुगम्) सुगम (पन्थाम्) मार्ग (कृणोमि) मैं बनाता हूँ।

ये दोनों मन्त्र अथर्ववेद के १४ वें काण्ड में वर्णित हैं। इनका देवता दम्पति है और गृहाश्रम में व्याख्यात हैं। ये दोनों मन्त्र विचारणीय हैं। ये दोनों मन्त्र स्पष्ट सूचित कर रहे हैं कि स्त्रियाँ पर्दे में अर्थात् बन्धन में नहीं रक्खी जानी चाहिएँ। यह पुरुषों का कर्त्तव्य है कि वे स्त्रियों को उनके कार्यों में स्वतन्त्रता प्रदान करें। जैसा कि ऊपर के मन्त्र ९७ में पति का पत्नी से कथन है कि—"मैं रुकावट के बन्धनों को ढीला करता हुआ स्वयम् स्वतन्त्र हो गया हूँ।" यदि इस मन्त्र को यह कह कर टाल दिया जाय कि इससे कुछ स्पष्ट अर्थ नहीं निकलता तो फिर मन्त्र ९८ को पढ़िए। इससे स्पष्ट हो जाता है कि—"पति के साथ तेरे लिए चौड़ा स्थान और चौड़े मार्ग मैं करता हूँ।" अर्थात् स्त्रियों के रहने के स्थान सङ्कुचित न हों, उन्हें पर्दे में दबोच कर न रक्खा जाय, बल्कि उनका स्थान विस्तृत हो अर्थात् स्वतन्त्रतापूर्वक इच्छानुसार इधर-उधर जा-आ सकें। "मार्ग सुगम करता हूँ।" यह वाक्य बिलकुल स्पष्ट बता रहा है कि स्त्रियाँ बिना रोक-टोक के रास्तों पर घूमें-फिरें। सारांश यह कि वे पुरुषों की भाँति जहाँ-तहाँ स्वतन्त्र-रूप से घूम-फिर सकती हैं—पर्दे में क़ैदी की तरह रहने की कोई ज़रूरत नहीं है।

सुमंगलीरियं वधूरिमां समेत पश्यत्।
सौभाग्यमस्यै दत्वा दौर्भाग्यैर्विपरेतन।

—अथर्व १४। २। २८

अर्थात्—"(इयम् वधूः) यह बहू (सुमङ्गली) बड़े मङ्गल वाली है (समेत) मिल कर आओ और (इमाम्) इसे (पश्यत्) देखो। (अस्यै) इसको (सौभाग्यम्) सौभाग्यपन (दत्वा) देकर (दौर्भाग्यैः) दुर्भाग्यता से (विपरेतन) अलग रक्खो।"

यह मन्त्र और भी स्पष्ट कर रहा है कि पर्दे की कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि इसमें खुल्लमखुल्ला लिखा है कि—"इस मङ्गलवाली बहू को मिल कर आओ और देखो।" पर्दे में देखना मना है। पर्दा दृष्टि रोकने की वस्तु है, परन्तु वेद कहता है कि झुण्ड के झुण्ड लोग मिल कर उस सर्वगुण-सम्पन्न वधू को देखो और आशीर्वाद दो, इत्यादि बातों का आगे के मन्त्रों में ख़ुलासा वर्णन है। हमारे विषय से सम्बन्ध न रखने के कारण हमने यहाँ उन्हें नहीं लिखा है।

इसी तरह के मन्त्र ऋग्वेद में भी हैं। और भी ऐसे कई मन्त्र पाए जाते हैं, जिनसे पर्दा न होने की ध्वनि निकलती है। आशा है, विचारशील पाठक इन मन्त्रों पर विचार करेंगे।

—गणेशदत्त शर्मा, विद्यावाचस्पति

* * *

पतनोन्मुख मैथिल-समाज

मैथिल-समाज अपनी विद्या, बुद्धि एवं आध्यात्मिकता के कारण आज से शताब्दियों पहले भारतवर्ष का गौरव समझा जाता था और तक्षशिला, काशी आदि विद्या-केन्द्रों के अतिरिक्त मिथिला भी विद्या का प्रमुख केन्द्र माना जाता था। इतना ही नहीं, जिन शङ्काओं का समाधान उन विद्या-केन्द्रों में न हो पाता था, उनका समाधान मैथिल-समाज के दिग्गज विद्वानों की प्रखर बुद्धि करती थी। मैथिल-समाज का इतिहास बहुत ही प्रोज्वल एवं रोचक है। इस समाज की महत्ता का अनुभव तो उन व्यक्तियों को होगा, जिन्होंने न्याय, मीमांसा, सांख्य और वेदान्त का अध्ययन किया होगा। इन शास्त्रों के टीकाकार विशेष कर मैथिल-समाज के विद्वान् ही हुए हैं और मैं समझता हूँ जब तक ये शास्त्र दुनिया में क़ायम रहेंगे, मैथिल-समाज ही नहीं, अखिल हिन्दू-समाज अपने पूर्वजों की विद्वत्ता पर गर्व करेगा। जनक, याज्ञवल्क्य, गौतम ऐसे ऋषियों और मण्डन, वाचस्पति, विद्यापति एवं उदयनाचार्य ऐसे अनेकानेक आचार्यों के उत्पन्न करने का श्रेय मैथिल-समाज को ही है। भगवान् शङ्कराचार्य से शास्त्रार्थ करने वाली भारती मैथिल-समाज की ही महिला-रत्न थीं। एक वह समय था, जब इस समाज के नैयायिकों की तर्कना-शक्ति इतनी बढ़ी-चढ़ी थी कि भारतीय विद्वत्मण्डली दङ्ग रह जाती थी। एक वह समय था, जब केवल मीमांसा-शास्त्र के ज्ञाता एक, दो, दस, बीस, सौ ही नहीं, वरन् हज़ारों की संख्या में इस समाज की शोभा बढ़ा रहे थे। एक वह समय था, जब यहाँ की स्त्रियाँ तक बे रोक-टोक सभा-मण्डप में शास्त्रार्थ करने के लिए पधा-

रती थीं और वहाँ जाकर अपनी विद्या, बुद्धि एवं सांसारिक अनुभवशीलता से प्रतिद्वन्द्वियों को परास्त करती थीं। सारांश यह कि उस समय का मैथिल-समाज आदर्श समाज गिना जाता था।

परन्तु आज का मैथिल-समाज उससे बिलकुल भिन्न है। आज तो यह पतनावस्था की पराकाष्ठा पर पहुँच चुका है। आज इस समाज के अन्दर दो, चार, दस, बीस, सौ ही नहीं, वरन् हज़ारों की संख्या में ऐसे बदमाश, लम्पट, दुराचारी एवं नर-पिशाच मौजूद हैं, जो अपनी काम-पिपासा शान्त करने के निमित्त व्यभिचार का ताण्डव-नृत्य किया करते हैं। आज इस अभागे समाज में ऐसे बगुला भगतों की संख्या बेहद बढ़ती जा रही है, जो धार्मिकता की ओट में अधार्मिकता, कूपमण्डूकता एवं दाम्भिकता का नाटक खेला करते हैं। आज यह समाज ऐसे नर-पुङ्गवों से भी ख़ाली नहीं कहा जा सकता, जो अपने कुकर्मों से समाज को कलङ्कित करने से ज़रा भी नहीं हिचकते। इस समाज की वर्तमान स्थिति को देख कर कोई भी विचारशील व्यक्ति यह कहे बिना न रहेगा कि आज का अधिकांश मैथिल-समाज नारकीय कीटों से भी बदतर हो रहा है! आज इस अभागे समाज की छाती पर बाल-विधवाओं की संख्या धड़ाधड़ बढ़ती जा रही है और इस बढ़ती हुई संख्या का दुष्परिणाम किसी भी आँख, कान एवं दिमाग़ रखने वाले व्यक्ति से छिपा न होगा। यदि विचार-पूर्वक देखा जाय तो इन तमाम दुर्गुणों और व्यभिचारों का प्रमुख कारण बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह, अनमेल-विवाह एवं बहु-विवाह की नाशकारी कुप्रथा ही है। इन विवाहों में से बहु-विवाह अब बहुत अंशों में बन्द हो गया है, पर वह भी उसी स्थिति में जब कि वर के पास धन की कमी रहते हुए दूसरी स्त्री भी मौजूद है। यदि स्त्री मरती जाय और वर धनी हो तो अन्त समय तक विवाहों का क्रम लगा रहता है। इन राक्षसी-विवाहों को सम्पन्न करने के निमित्त "सौराठ-सभा" में बातें पक्की की जाती हैं।

मैथिल-समाज में कदाचित् ही कोई व्यक्ति ऐसा मिले जो उक्त सभा को न जानता हो। इस सभा में केवल मैथिल ब्राह्मणों की ही बिरादरी इकट्ठी होती है और यहीं से उन लोगों के शादी-विवाह की बात पक्की होती है। यह सभा वर्ष में एक बार ६-७ दिन के लिए होती है और बेचारी अबोध कन्याओं के गले में फाँसी लगा कर फिर एक वर्ष के लिए रुक जाती है। इन विवाहों की बात पक्की करने के लिए तरह-तरह का स्वाँग एवं षड्यन्त्र रचा जाता है। एक ओर निर्धन वर, धनिकों में दिखाने के लिए बेशक़ीमती वस्त्र पहने हुए डटा है तो दूसरी ओर बूढ़ा वर नवयुवकोचित पोशाक पहन कर अपनी बेइज़्ज़ती करा रहा है। एक ओर ग्रेजुएट वर अपनी सारी पढ़ाई का ख़र्च कन्या वालों से वसूल करना चाहता है तो दूसरी ओर मूर्ख एवं जाहिल वर अपने बाप-दादों की कमाई से कन्या वालों की पूजा कर रहा है! एक ओर किसी बूढ़े वर से घटक (दलाल) यह कह कर रुपए जट रहे हैं कि आपकी शादी थोड़े रुपए में अच्छी लड़की से करा देंगे तो दूसरी ओर किसी अकर्मण्य वर से दो-चार गुण्डे फ़र्ज़ी कन्या के नाम पर रुपए गिना नौ-दो ग्यारह हो जाते हैं। इन्हीं सब कुकर्मों के कारण मैथिल-समाज अधःपतन के काले गर्त की ओर सत्वर गति से प्रधावित हो रहा है। या यों कहिए कि बिना पतवार की नौका के सदृश इधर से उधर भटक रहा है। यदि शीघ्र ही समाज-सेवियों का ध्यान इस ओर न गया तो वह दिन दूर नहीं, जब कि इसके अस्तित्व का भी ठिकाना न रहेगा। एक सभ्य-समाज की सभ्यता मिट्टी में मिलते देख प्रत्येक विचारशील मनुष्य के हृदय में क्षोभ उत्पन्न हुए बिना न रहेगा, और इन्हीं शुभ-भावनाओं से प्रेरित होकर 'चाँद'-सम्पादक ने गत अक्तूबर महीने के 'चाँद' में "बिहार का कलङ्क" शीर्षक लेख लिखते हुए एक जगह कहा है—"आज का अधिकांश मैथिल-समाज अकर्मण्यता, सङ्कीर्णता एवं मूर्खता की सजीव मूर्ति है।"

मेरी राय में प्रत्येक आँख और दिमाग़ रखने वाला मैथिल 'चाँद'-सम्पादक के उपरोक्त शब्दों का समर्थन करेगा; पर जहाँ उन्होंने लिखा है कि "मैथिल-महासभा बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह एवं बहु-विवाह आदि दुर्गुणों को रोक रही है" वहाँ पर मेरा उनसे मतभेद है। बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह अभी ज़ोरों पर है, और बहुविवाह यदि किसी अंश तक रुका है तो इसका श्रेय किसी संस्था या व्यक्ति को नहीं है। इसका श्रेय तो समय के प्रबल प्रवाह को ही है। यहाँ पर मैं मैथिल-समाज के एक साधारण सदस्य के नाते मैथिल-महासभा के बारे में कुछ लिख देना अपना कर्तव्य समझता हूँ। मैथिल-महासभा

कोई जीती-जागती संस्था नहीं है ; और न है वह उन नवयुवकों की प्यारी संस्था, जो अपने सुन्दर समाज की बलिवेदी पर हँसते-हँसते बलिदान होते हैं । यह सभा तो उन थोड़े से आदमियों के इशारे पर चलती है, जो सुधार के नाम ही से नाक-भौं सिकोड़ते हैं ।

जिस सभा का चेत्र ही इतना सङ्कुचित हो कि मैथिल ब्राह्मण और मैथिल कर्ण कायस्थ ही सदस्य तथा अनेक धुरन्धर विद्वानों के होते हुए महाराज दरभङ्गा ही सभापति चुने जायँ तो क्षोभ की सीमा नहीं रहती । इच्छा न रहते हुए भी महासभा के कर्णधारों से मैं पूछना चाहता हूँ कि क्या मिथिला में क्षत्री, वैश्य एवं शूद्र नहीं हैं ? यदि हैं, तो ये लोग महासभा से क्यों बहिष्कृत हैं ? क्या ये लोग मैथिल-भाषा-भाषी नहीं हैं अथवा मैथिल-सभ्यता से इन्हें प्रेम नहीं है ? मेरा तो दृढ़ विश्वास है कि जब तक यह सभा (मैथिल ब्राह्मण और मैथिल कर्ण कायस्थों की सभा) अपना सङ्कुचित विचार न बदलेगी, तब तक 'मैथिल-महासभा' कदापि नहीं कहला सकती ।

यह निर्विवाद सिद्ध है कि हिन्दू-समाज के अन्दर जितनी बुराइयाँ हैं, मैथिल-समाज उनसे बरी नहीं हो सकता; क्योंकि यह भी उसी विशाल हिन्दू-जाति का एक छोटा सा अङ्ग है । आज जब कि विशाल हिन्दू-समाज के अन्दर क्रान्ति की भावना भभक रही है तो क्या मैथिल-समाज इससे अछूता रह सकता है ? जबकि प्रत्येक समाज के अन्दर सुधार की आग धू-धू कर धधक रही है तो क्या यह गला-पचा, सूखा एवं जर्जर मैथिल-समाज कुम्भकर्णी निद्रा में मस्त रहते हुए इस आग की लपट से बच सकता है ? जब कि प्रत्येक समाज अपने क्रान्तिकारी नवयुवकों के बल पर सामाजिक रूढ़ियों का विध्वंस करता हुआ आगे बढ़ रहा है, तो क्या हमारे वे बुज़ुर्ग जो "अष्टवर्षा भवेत् गौरी" की दुहाई देकर बाल-विवाह के प्रचार में सहायक होते हैं, अपने मनोरथ को सफलीभूत करने में समर्थ हो सकते हैं ? जबकि प्रत्येक समाज के नवयुवक महावीर बजरङ्गी के सदृश कार्यक्षेत्र में धड़ाधड़ कूद रहे हैं तो क्या हमारे बुज़दिल, कूपमण्डूक बूढ़े खूसटों के विरोध करने से मैथिल-समाज के नवयुवक रुक सकते हैं ? जब कि बिहार के नेताओं के साथ ही साथ आधुनिक संसार के महापुरुष —महात्मा गाँधी—कह रहे हैं कि परदा हटा कर स्त्रियों में शिक्षा-प्रचार करो, तो क्या बड़ी नाक वाले भाइयों के विरोध करने एवं सुधारकों को गाली देने से यह नाश-कारी परदा-प्रथा क़ायम रह सकती है ? जबकि आज का अधिकांश हिन्दू-समाज अछूतों को अपनाने के लिए हाथ बढ़ा रहा है, तो क्या मैथिल-समाज के सिर पर छुआ-छूत का भूत सवार रह सकता है ? कदापि नहीं !

निस्सन्देह अछूत उठेंगे और अपनी कमज़ोरी दूर करते हुए अखिल हिन्दू-समाज की भी कमज़ोरी दूर करेंगे । निस्सन्देह इस समाज के नवयुवक असंख्य आपत्तियों का सामना करते हुए भी उसकी नाशकारी प्रथाओं का विध्वंस कर देंगे । इतना ही नहीं, हमारी गृह-देवियाँ भी घर की तङ्ग चहारदीवारियों से निकल कर निस्सन्देह शुद्ध वायु सेवन करेंगी । पर आवश्यकता है उनमें शिक्षा-प्रचार की । क्या हमारे मैथिल-समाज के निर्भीक नवयुवक ये सब काम करके दिखाएँगे ? यदि 'हाँ' तो उन्हें समाज के अन्दर क्रान्ति की भावना भभकानी होगी । यदि वास्तव में वे अपने समाज से तमाम दुर्गुणों को हटा कर इसे एक सभ्य-समाज बनाना चाहते हैं तो उन्हें एक नई संस्था क़ायम करनी होगी, अथवा मैथिल-महासभा को ही अपनाकर उसके सङ्कुचित विचार को बदलना होगा । यदि वास्तव में वे उन रूढ़ियों को तोड़ना चाहते हैं, जिनसे समाज रसातल की ओर द्रुत गति से प्रधावित हो रहा है, तो उन्हें निर्भीकता के साथ अपना विचार समाज के सामने रखना होगा । यदि वास्तव में उनका हृदय, काम के उद्दाम परिपीड़न से तड़पती हुई बाल-विधवाओं का करुण-क्रन्दन सुन कर विदीर्ण होता है तो उन्हें शीघ्र उनका उचित प्रबन्ध करना होगा । इस समाज के नवयुवकों में भी वे नवयुवकोचित गुण मौजूद हैं, जो अन्य समाज के नवयुवकों में पाए जाते हैं । क्या ही अच्छा होता कि वे अपने इष्ट-मित्रों सहित आगामी मुङ्गेर में होने वाली मैथिल-महासभा में सम्मिलित होकर अपने गुणों की सार्थकता प्रकट करते !!

—चतुर्भुजराय मैथिल

[ले० श्री० जी० पा० श्रीवास्तव, बी० ए०, एल्-एल्० बी०]

लतखोरी लाल

७

जब मेरी हृदयेश्वरी ही ने मुझे धता बता दिया तो तक़दीर बेचारी क्या करे। इसीलिए तो मैं कहता हूँ कि तलवार का मारा बच भी सकता है, मगर भई, अपनी श्रीमती जी की बेमुरौवती का मारा नहीं! चाहे कोई कुछ करे! यही सोच कर मैं चुपके से परदेश के लिए रवाना हो गया। क्या करता? मदन ने माना ही नहीं। स्टेशन तक ख़ुद ही गाड़ी में बिठाल गया। यह मैं कैसे कहूँ कि भाग्य में श्रीमती जी से मिलना नहीं बदा था। अजी मिलना तो ख़ूब होता। मगर जब वह मिलना चाहतीं तब तो। इसलिए भाग्य को मुफ़्त में क्यों दोष दूँ, जब मेरे तमाम अरमानों का ख़ून करने वाली वह ख़ुद ही मौजूद हैं। ख़ैर! सौ सुनार की तो कभी तो एक लोहार की भी होगी। बस, इसी ख़्याल से मैं कानपुर जाकर एक सराय में अपने दिन काटने लगा।

मगर हर वक़्त मुझे यही फ़िक्र थी कि कहीं मैं पकड़ न जाऊँ। जहाँ कहीं भी लाल पगड़ी दिखाई देती थी वहीं मेरे होश उड़ जाते थे। और सर पर पाँव रख कर बदहवास भाग खड़ा होता था। उस पर मुसीबत यह थी कि इन लोगों से कोई भी रास्ता ख़ाली नहीं दिखाई देता था। मेरा दिल इतना डरा हुआ था कि सिवाय औरतों के मुझे हर आदमी से खटका रहता था। क्योंकि मैं समझता था कि ऐसा न हो कि उनमें कोई ख़ुफ़िया पुलिस का आदमी मुझे पकड़ने के लिए बदले हुए भेष में हो। इसलिए रोज़ ही मैं अपनी सूरत बदल कर बाहर निकलता था। इस तरह सूरत बदलने में मैं उस्ताद भी हो गया था और सराय वाले मुझे बहुरूपिया जानते थे। फिर भी दिल को चैन न था। यहाँ तक कि मुझे हौल दिल होगया और मैं अपनी ही घबराहट से मरने लगा।

मैं रोज़ ही 'देशबन्धु' अख़बार में अपने घर बुलाने वाले विज्ञापन को ढूँढ़ता था। मगर उसे भी मानों मेरी श्रीमती जी के मिज़ाज की हवा लग गई थी कि मेरी आँखें पथरा भी गईं, मगर वह विज्ञापन कम्बख़्त दिखाई न पड़ा और न पड़ा। इसी तरह महीना भर से ऊपर हो गया। रुपए भी बहुत से निकल गए! और मैं भेष बदलते-बदलते तङ्ग आ गया। कहाँ तक रूप बदलता।

कपड़े मेरे पास बस इने-गिने थे। फिर भी दाढ़ी-मूँछों से जहाँ तक सूरत बदली जा सकती है, वह सब कुछ कर चुका। दूसरे अड़ोस-पड़ोस के लोग जब मुझे बहुरूपिया जान गए तो अब भेष बदलने से कोई फ़ायदा न था। इसलिए यह सोचा कि कुछ दिनों औरत बन कर किसी दूसरी जगह ठिकाना करूँ और लोगों को धोखे में डालने के लिए पान-पत्ते की दूकान रख कर कुछ दिनों निबाह करूँ। यह राय मेरे मन में पैठ गई। इसलिए गिलट के छड़े, कुछ चूड़ियाँ, नक़ली बाल, साड़ी वग़ैरह किसी तरह चुपके-चुपके ख़रीद लिए। दो बड़े-बड़े पिलपिले रबड़ के गेंदों की भी ज़रूरत हुई। उन्हें मैं कई दिन तक ख़रीद न सका। क्योंकि जब-जब मैं इस नीयत से बिसातियों की दूकान पर गया तब या तो वैसे गेंद उनके पास न थे या किसी के पास दो एक नाप के न मिले या कभी वहाँ पर एक न एक पुलिस वाला दिखाई पड़ गया। इसलिए मैंने दो थैलों की एक चोली सीई। और थैलों में भेष बदलने वाले बालों को ठूस कर गुम्बद की तरह फुला दिया और उसी में बाल-सफ़ा और बाल चिपकाने के मसाले की शीशियाँ भी रख दीं, ताकि गुम्बदों में नुकीलापन हर वक्त क़ायम रहे और बिगड़ कर बिलकुल गद्दे की तरह चिपटा न हो जाय। उन थैलों की जड़ों में एक चोर जेब भी बनाई। उसमें एक जेबी आइना, अपना छोटा सा उस्तरा और रुपए-पैसे भी रख लिए। क्योंकि औरत के भेष में मैं इन ज़रूरी चीज़ों को और रख ही कहाँ सकता था? इधर मैं चुपके-चुपके यह कारवाई करता जाता था और उधर दो-चार दिनों से मैं एक बुढ़िया पान वाली की दूकान पर जाकर रोज़ पान खाता था। क्योंकि उसकी बातों से मुझे मालूम हो चुका था कि जब तक उसकी लड़की दूकान पर बैठती थी तब तक ख़ूब बिक्री होती थी। मगर जब से वह अपनी ससुराल चली गई, तब से कोई ख़रीदार उसकी दूकान पर झाँकता भी नहीं। यह जान कर मैंने उसे सलाह दी थी कि अपनी लड़की की तरह कोई दूसरी औरत रख क्यों नहीं लेती? उस पर उसने कहा था कि मुझे तो कोई मिलती नहीं। अगर आप किसी को रखा दें तो मैं उसे सर-आँखों पर रक्खूँगी और आपको रोज़ मुफ़्त पान खिलाऊँगी। तभी से मुझे औरत बन कर उसके यहाँ कुछ दिन काटने का ख़याल पैदा हुआ। दाढ़ी-मूँछ तो नित्य नया भेष बदलने की ख़ातिर पहले ही से सफ़ाचट कर रक्खे थे। इसलिए औरत बनने के लिए अपनी सूरत की कोई फ़िक्र न थी। बस, चोली कस कर उस पर ज़नानी बनियायन पहन लेने और नक़ली बाल लगा लेने से मेरा ढाँचा पुल्लिङ्ग से बिलकुल स्त्रीलिङ्ग हो गया। फिर तो सलूका, चूड़ी, साड़ी और दो-चार नक़ली ज़ेवरों के सहारे मैं परीरूप बन कर दस बजे रात को उस बुढ़िया के यहाँ जाने के लिए चुपचाप सराय से निकल आया।

मगर बुरा हो इस कमबख़्त मुल्क का, जहाँ किसी भी नौजवान औरत का घर से अकेली निकलना वबाले-जान है। विलायती क्या, देशी ईसाई की मेम भी जहाँ चाहे तहाँ बेखटके आ-जा सकती है। कोई भी उससे आँख तक मिलाने की हिम्मत नहीं करता। मगर हिन्दुस्तानी औरतों की पोशाक में न जाने कौन सी बात है कि अगर उनके साथ कोई रखवार न हो, तो उन्हें यहाँ के लोग अपने बाप का माल समझ कर इस बुरी तरह उनके पीछे पड़ जाते हैं कि इनके आगे कातिक के कुत्तों की भी दुम दब जाती है। अगर इसका मुझे पहले से कुछ भी ख़याल होता तो बाबा मैं औरत बन कर भूल कर भी अपने सिर ऐसी आफ़त न ढाता। क्योंकि मर्द के भेष में रहने से पुलिस वालों से गिरफ़्तार हो के ख़ाली जेलख़ाने ही जाने का डर था, मगर औरत की शक्ल में लुच्चाड़ों के हाथ पड़ कर न जाने कहाँ से कहाँ पहुँच जाने का अन्देशा हो गया। इसलिए मैं मारे डर के थर-थर काँप रहा था और दिल से उन औरतों की बहादुरी की शाबाशी देता था जो मेले-तमाशों में बन-ठन कर झुण्ड की झुण्ड सिर्फ़ दिखलाने के लिए एक अधमरे बूढ़े या बच्चे रखवारे को लेकर इन गुण्डों से मुक़ाबिला करने के लिए जाती हैं। बेशक वे बड़ी हिम्मत रखती होंगी, और हमारे यहाँ के मर्दों को बहादुरी की शिक्षा उन्हीं से सीखना चाहिए। मैंने भी अपने दिल को बहुतेरा समझाया कि जब वे औरतें ऐसे मौक़ों पर ज़रा नहीं घबड़ातीं तब तुम्हारी क्यों नानी मरी जाती है। मगर भई, मेरी फ़िलॉसफ़ी एक न काम आई और मैं सिर पर पाँव रख कर कभी इस गली में और कभी उस गली में अपनी जान बचाने लगा। मगर 'भेड़ जहाँ जाय वहीं मूँड़ी जाए' की गति मेरी थी, क्योंकि जिधर ही जाता था उधर ही जिस तरह से

मीठे पर मक्खियाँ भिनभिनाती हुई टूट पड़ती हैं, उसी तरह मेरी झाँझ की झनकार सुनते ही न जाने कहाँ से दस-बीस तमाशबीन पैदा हो ही जाते थे। कोई बोलियाँ कसता था, कोई तान उड़ाता था, तो कोई पीछा करता था, और कोई रास्ता चलते धक्के देता था। यहाँ तक कि इन लोगों की ज़्यादतियों से मैं इतना परेशान हुआ कि दिल में ठान लिया कि अगर कोई अँधेरी गली मिली तो मैं फ़ौरन् इस औरत की पोशाक को खोल कर फेंक दूँगा और दिगम्बर होकर भाग खड़ा हूँगा। बला से मैं पकड़ा जाऊँ और मुझे जेलख़ाना जाना पड़े। कुछ परवा नहीं। क्योंकि इस मुसीबत से वह मुसीबत लाख दर्जे अच्छी थी।

आख़िर एक तङ्ग गली मिल ही गई, और वह अँधेरी भी थी। क्योंकि इसमें शायद दूकानें न थीं या होंगी भी तो बन्द हो चुकी थीं। मैं ख़ुद ही इसमें मुड़ने वाला था। उस पर तमाशबीनों ने मुझे इस जगह इस तरह घेरा कि मुझे झख मार कर इसी में भागना पड़ा। मैं इसी फ़िक्र में था कि ज़रा यह लोग पीछे पड़ जायँ तो मैं अपनी साड़ी उतार कर बग़ल में दबाऊँ, मगर इतने ही में दो आदमी दौड़ कर मेरे आगे हो गए और दो पीछे। इसके बाद मुझे पीछे एक एक्का आने की आवाज़ मालूम हुई। उस पर से एक आदमी कूदा और उसने चट मुझे गोद में उठा लिया। मेरा सिर चकरा गया! उस वक़्त मैं इतना बदहवास हो रहा था कि मुझे कुछ भी पता न चला कि मेरे साथ क्या कारवाई हो रही है। हाँ, कुछ देर के बाद अलबत्ता जान सका कि एक्के पर एक आदमी मुझे अपनी गोद में कसे हुए है। चारों ओर परदा पड़ा हुआ है और पर्दे के बाहर एक-एक आदमी इधर-उधर बैठे हुए हैं। उस वक़्त मेरे होश उड़ गए और मैं दिल ही दिल प्रार्थना करने लगा कि या ईश्वर मुझे इस मुसीबत से उबारो। मैं औरत बनने का मज़ा अच्छी तरह से पा गया। यह औरतों ही को मुबारक रहे। मैं अब भूल कर भी उनका हक़ कभी छीनने की कोशिश नहीं करूँगा।

(क्रमशः)

हिन्दू-विधवा के उद्गार

[रचयिता—श्री० देवीप्रसाद जी गुप्त 'कुसुमाकर' बी० ए०, एल्-एल्० बी०]

दिखा दो प्रभो! मुक्ति की राह।
मैं हिन्दू-विधवा हूँ, मेरा कैसे हो निर्वाह?
जान न पाई विधि-करतब मैं,
विधवा हुई न जाने कब मैं,
कहते हैं परिजन सब मेरे—कभी हुआ था ब्याह।
पति-सुख मैंने कभी न जाना,
नहीं किसी को पति ही माना,
विधवा हुई कहाँ जब मुझ पर, पड़ा न पति की छाँह?

यौवन की उमङ्ग है मन में,
मदन वास करता है तन में,
सखियाँ क्रीड़ाएँ करती हैं, होती है उर डाह।
चारों ओर पुरुष घेरे हैं,
मुझे प्रलोभन बहुतेरे हैं,
कब तक बचूँ जलाऊँ कब तक, हिय में अन्तर्दाह!
जो नित पाप-लिप्त रहती हैं,
रहूँ विरक्त मुझे कहती हैं,
फूँक न देवे उस समाज को, देखो! मेरी आह।
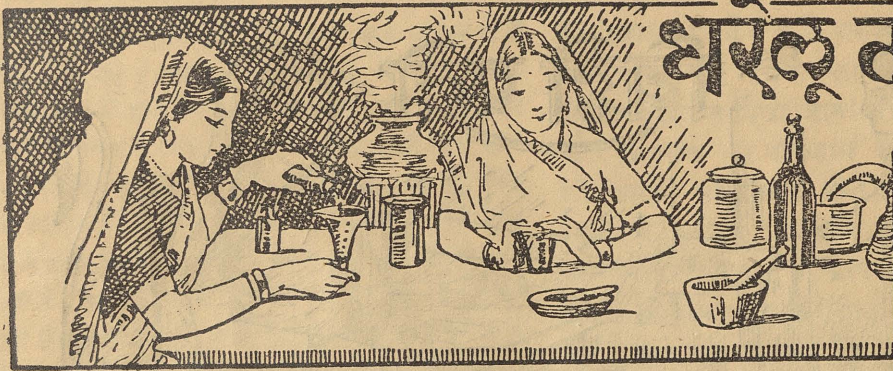
हैज़े की दवा

काली मिर्च एक माशा और अरहर के पत्ते एक तोला, दोनों को लेकर खूब घोटे, फिर पाव भर पानी में घोल कर रोगी को पिला दे। इससे शीघ्र लाभ होता है।

दूसरी दवा

बिजौरा नींबू के पन्द्रह बीज लेकर पानी के साथ खूब बारीक पीस डाले, फिर उसमें दो तोले मिश्री डाल कर पिलावे, अवश्य लाभ होगा।

* * *

प्रदर-रोग

मुलहटी ढाई टङ्क और चौराई की जड़ का रस दो टङ्क, दोनों को शहद में मिला कर पिलाए, इससे प्रदर रोग बहुत जल्द दूर होता है।

* * *

बवासीर की दवा

सूरन का भरता बना कर दही के साथ रोज़ खाए, इससे खूनी बवासीर में लाभ होता है।

—कलवाती, कौल

* * *

ऋतुश्रावक योग

शुक्ति (सुरती) को अग्नि में फूँक ले और उसकी भस्म ४ माशा, १ तोला पुराने गुड़ के साथ सायं-प्रातः सेवन करे, इससे बन्द हुआ मासिकधर्म होने लगता है।

दूसरी दवा

इन्द्रायण की जड़ की लुगदी भग में रखने से तीन दिन में ऋतुश्राव होता है। गर्भिणी को यह प्रयोग न करना चाहिए, नहीं तो गर्भस्राव हो जाने का अन्देशा है।

तीसरी दवा

एलुवा बोल, कुनैन, सुहागा, हींग, प्रत्येक को समान भाग लेकर पानी में पीस कर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना ले। काला तिल १ तोला और पुराना गुड़ डेढ़ तोला, दोनों का चतुर्थांश क्वाथ बना कर आधपाव क्वाथ के साथ एक-एक गोली दोनों समय सेवन करे। इससे अवश्य मासिकधर्म होता है।

* * *

उपदंश की दवा

कचनार की छाल, बबूल की पत्ती, इन्द्रायण की जड़, छोटी कटेरी की जड़ और पत्ती, पुराना गुड़, प्रत्येक को आध-आध पाव लेकर तीन सेर पानी में चतुर्थांश क्वाथ बनाए। फिर उसकी सात मात्रा करके सात दिन सेवन करे। इससे शीघ्र आतशक आराम हो जाती है। विशेषता यह है कि इससे मुख नहीं आता और न विशेष परहेज़ की ही आवश्यकता है।

—उत्तराकुमारी वाजपेयी
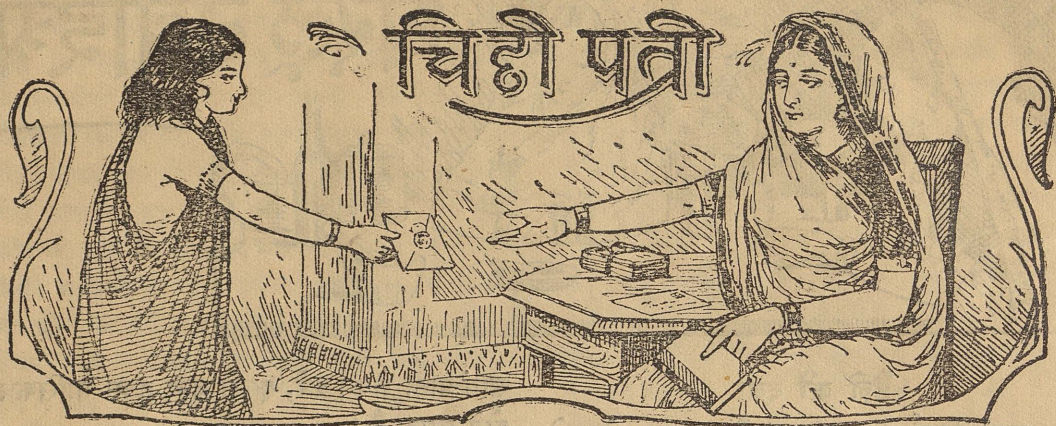
एक दुःखिनी का पत्र

लखीमपूर, खीरी से एक दुःखिनी बहिन लिखती हैं—

श्रीमान् सम्पादक जी,

मैं आज अपनी दुखित कहानी आपको सुनाना चाहती हूँ। मैंने आपके 'चाँद' में दो-चार पत्र देखे हैं, अतएव मैं चाहती हूँ कि मेरा पत्र आप 'चाँद' में छाप दीजिए, आपकी बड़ी कृपा होगी। मैं एक धनी-मानी सज्जन की बहू हूँ। मेरे पति महाशय वकील हैं, थोड़ी-बहुत प्रैक्टिस भी करते हैं, ज़मींदारी है, इससे घर का सब ख़र्च चला जाता है। मेरे परिवार में मेरी विधवा सास व एक रिश्तेदार की लड़की है। मेरी हृदय-विदारक कहानी पढ़ने से आपको मालूम होगा कि हम स्त्रियाँ किस तरह अपने जीवन को व्यतीत करती हैं। मेरे पति जी जुआ खेलते हैं और शराब भी पीते हैं। एक धनवान् गृहस्थ की लड़की से प्रेम भी रखते हैं। उससे पति महाशय की पूरे तौर से मुलाक़ात है। मुझे सास के ताने सुनने पड़ते हैं, उधर पति भी मुझसे रूखा व्यवहार करते हैं। मैं पति-प्रेम से वञ्चित हूँ। कभी-कभी केवल दर्शन हो जाते हैं। किन्तु क्या विवाह इसी को कहते हैं? एक दिन भी ऐसा नहीं जाता, जिस दिन सास जी के ताने न सुनने पड़ते हों। ज़रा-ज़रा सी बात पर लाञ्छनाएँ सहनी पड़ती हैं। एक दिन की बात है कि मैंने रिश्तेदार की लड़की से कुछ काम के लिए कहा, इसी बात पर सास जी कहने लगीं कि वह तो रानी है और हम लोग नौकरानी हैं, इसी लिए वह हुक्म चलाती हैं। और भी न जानें कितनी ही ऐसी कठोर बातें और कई शब्द ऐसे व्यङ्ग से कहे थे कि कलेजे में तीर की तरह चुभ गए। मेरी कोई सहेली भी नहीं है कि जिससे अपना दुख कहूँ। मैं अपनी दुख-भरी कहानी आपको सुनाती हूँ। आप मुझे कोई ऐसा उपाय बताइए जिससे मैं अपने पति को ठीक रास्ते पर ला सकूँ।

मेरे पति परिवार भर में अकेले हैं। मेरे ससुर बहुत ही मशहूर और प्रतिष्ठित थे, उनका नाम इस शहर में तथा अन्य शहरों में भी विख्यात है। मैं चाहती हूँ कि ससुर जी की मान-मर्यादा में धब्बा न लगे, उनकी कीर्त्ति जग में वैसी ही उज्ज्वल बनी रहे। पति जी का इधर यह हाल है। सास जी यदि समझाती हैं तो उनकी बातों पर कुछ भी ध्यान नहीं देते। सास जी को यह बात मालूम ही नहीं है कि यह रण्डीबाज़ भी हैं, लेकिन और सब बातें जानती हैं। मैं भी उनको समझाती हूँ, किन्तु मेरी बातों को सुनते भी नहीं। समझना और उन पर ध्यान देना तो बहुत दूर है, कुछ उत्तर भी नहीं देते। यदि उत्तर दिया भी, तो बहुत ही कठोर शब्दों में—"तुमसे क्या मतलब? तुम मेरी पत्नी हो, लेकिन तुम मेरी शिक्षिका नहीं हो।" यह उत्तर सुन कर दिल जल जाता है। मैं बहुत ही दुखी हूँ। क्या आप मुझे इस दुख से किसी प्रकार से छुटकारा दिला सकते हैं? मैं आपकी अनुग्रहीत हूँगी, आजन्म आपका उपकार नहीं भूलूँगी। मेरा जीवन बहुत ही दुखमय हो

रहा है। सम्पादक जी, क्या कहूँ, इस जीवन से मैं निराश हो गई हूँ। यदि थोड़े ही दिन में कुछ उपाय न हुआ तो मैं इस संसार को छोड़ कर उस शान्तिमय लोक को सदा के लिए बिदा हो जाऊँगी। मेरे पास धन-वैभव है, सब सुख है, रूप भी है, तरुणी भी हूँ, फिर क्या कारण है कि मैं सुखी नहीं हूँ? इतना होते हुए भी मैं इस संसार में एकमात्र अपने दो साल के पुत्र का मुख देख कर जीती हूँ। पति महाशय तो मुझसे बिलकुल ही रूखा व्यवहार करते हैं, बहुत ही अप्रसन्न रहते हैं। कहाँ मैं इतनी प्यारी थी, और कहाँ अब इतनी बुरी हो गई हूँ। क्या पुरुषों का यही कर्त्तव्य है? क्या उनका यही धर्म है? हम स्त्रियों को तो अपना धर्म सिखलाया जाता है, किन्तु पुरुषों को क्या यही उचित है कि वह स्त्रियों के ऊपर अत्याचार करें? मैं यह पत्र अपने परिवार वालों से छिपा कर लिखती हूँ, अतएव आप से हाथ जोड़ कर प्रार्थना करती हूँ कि ज़ाहिर न होने पाए। मैंने पहले एक पत्र आपको लिखा था, किन्तु आपने उत्तर नहीं दिया। मैं चाहती हूँ कि आप इस पत्र का जवाब 'चाँद' में ही छाप दीजिए।

देवी जी,

आपके इस करुणापूर्ण पत्र का उत्तर दिया ही क्या जा सकता है, यही समझ कर सन्तोष कीजिए कि आप अकेली ही इस दारुण परिस्थिति में नहीं हैं, आप ही के समान न जाने कितनी अभागिनी महिलाएँ आज ख़ून के आँसू बहा रही हैं, जिनका एकमात्र अपराध यही है कि उन्होंने अभागे हिन्दू-समाज में जन्म ग्रहण किया है, जिनके कष्टों का एक मात्र कारण यही है कि वे सहनशील हैं—एक अपराध और भी है—वे कोई अनुचित आचरण करके कुल में कलङ्क नहीं लगाना चाहतीं।

जिस 'धनवान् गृहस्थ की लड़की' से आपके पति-देवता का गुप्त-प्रेम है, कौन कह सकता है, उस महिला का जीवन आपसे भी दुखःपूर्ण न हो, तभी तो आपके पतिदेवता की चहेती बनी है! यदि आप इस बात की जाँच करेंगी तो आपको स्पष्ट विदित हो जायगा कि हमारी यह कल्पना निराधार नहीं है। रही घर वालों के ताने सुनने की बात, यह इतनी साधारण है कि इसे भी विशेष महत्व न दिया जाना चाहिए। यह अशिक्षा और जहालत का परिणाम है और इसके लिए भी आपके पतिदेवता ही ज़िम्मेदार हैं। आज भारत में करोड़ों विधवाएँ कूड़े-कर्कट की तरह मारी-मारी फिर रही हैं, आप भी अपने को विधवा समझ लीजिए और लोकलाज का वृथा आडम्बर परित्याग कर, समाज-सेवा का व्रत धारण कर, अपने को कार्यक्षेत्र में उतारिए—केवल इसी मार्ग द्वारा आपको वास्तविक शान्ति प्राप्त हो सकती है।

जो लोग हिन्दू-समाज में तलाक़ का विरोध करते हैं, उनका ध्यान भी हम इस पत्र की ओर आकर्षित करना चाहते हैं।

—सं० 'चाँद'

* * *

एक अभागिनी की दुःख-कथा

गाँदाँ नमसान नामक स्थान से एक बहिन अपनी दुःख-कथा लिखती हैं:—

श्रीमान् सम्पादक जी,

सादर नमस्ते!

आज मैं आपको अपनी दुःख-भरी कहानी सुना रही हूँ। मैं एक ब्राह्मण-कुल की बेटी तथा स्त्री हूँ। मेरी उम्र इस समय २० वर्ष से कम है। शादी हुए ३ साल हो गए। दो साल से पतिदेव के साथ रहती हूँ। उनकी उमर २५ साल की है। मुझसे पहले उनकी एक स्त्री मर चुकी है। घर में किसी चीज़ की कमी नहीं है। पतिदेव की आमदनी अच्छी है। मैं साधारणतया भोजन बनाना जानती हूँ। पतिदेव हमेशा मुझसे असन्तुष्ट रहते हैं। कहते हैं कि तुमको भोजन पकाना नहीं आता। कितना ही अच्छे से अच्छा भोजन बनाती हूँ, फिर भी यही शिकायत रहती है। कभी भी पेट भर भोजन नहीं खाते। मैं हैरान हूँ कि क्या करूँ। हालत यहाँ तक बिगड़ गई है कि हमेशा बीमार रहते हैं। पाचनशक्ति बहुत कमज़ोर पड़ गई है। आलसी तो इतने हैं कि दो-दो मास तक स्नान नहीं करते। नौ

बजे से पहले कभी सोकर नहीं उठते। यदि मैं कभी बोलती हूँ तो कहते हैं, 'तुमसे क्या मतलब ?' खाने-पीने तथा अपना जिस्म सुधारने के विषय में कुछ ख़्याल नहीं करते—खाया तो खा लिया, न खाया तो न सही।

इन सब बातों के होते हुए एक बात और है, जिससे मुझे बड़ा क्लेश है। वह यह है कि ग़ैर-मुल्क में रहने के कारण पतिदेव की सोसाइटी बड़ी ख़राब है। उसमें कोई आदमी ऐसा नहीं है, जो मांस-मदिरा का प्रेमी न हो। जब देखो तब उसी विषय की बातें होती हैं। उन लोगों के साथ मिल कर पतिदेव भी वैसे ही हो गए हैं। मुझे इन चीज़ों से बड़ी घृणा है। यही कारण है कि पतिदेव को घर के भोजन से घृणा उत्पन्न हो गई है, और मुझसे प्रेम घटा कर सोसाइटी से करने लगे हैं। जो बात सोसाइटी करे, वही होती है। हमेशा दूसरों के इशारे पर चलते हैं। मैं जो कुछ कहूँ उसकी परवा नहीं। यार लोग सब खाने के कुत्ते हैं, खाने को मिला तो आ बैठे, नहीं तो रास्ता नापा। यार लोग आए, शराब का दौर चलने लगा और मेरी निन्दा होने लगी। इससे मुझे असह्य दुख होता है। रात-दिन दुख से जलती रहती हूँ। मैंने सोचा कि इस प्रकार जलते रहने से कोई सन्तोषजनक परिणाम नहीं होगा, अतएव क्यों न आपको सूचित करके कोई शान्तिप्रद शिक्षा ग्रहण करूँ।

पतिदेव की सोसाइटी का अधिक वर्णन करना मेरी शक्ति के बाहर है। मेरा तथा पतिदेव का—दोनों का जीवन दुखमय हो रहा है। दो साल मुझे उनके साथ रहते हो गया, पर अभी तक शिशु का मुख नहीं देखा है। इस दो साल के अन्दर मैं अपने भाई-बहिन आदि किसी से नहीं मिल पाई हूँ। कोई दिन ख़ुशी से नहीं गुज़रा है। रात-दिन भट्ठी के समान मेरा हृदय जलता रहता है। पर मैं कर ही क्या सकती हूँ ? पुरुष जो चाहें, कर सकते हैं। हमको ईश्वर ने अत्याचार और ज़ुल्म सहने के लिए ही बनाया है। कहाँ तक लिखूँ, रोते-रोते आँखें पक गई हैं। कोई सहारा नज़र नहीं आता। नैहर भेजने की धमकी दी जाती है। सोचती हूँ, वहाँ जाकर भी सुख न मिलेगा। यदि भाग्य में सुख होता तो ससुराल में ही मिलता। कितनी दफ़ा दिल में आता है कि आत्मघात कर लूँ। फिर सोचती हूँ कि कभी तो ईश्वर मेरी हालत सुधारेगा। किन्तु कब तक सन्तोष करूँ ? ऐसे जीवन से तो मर जाना ही लाख दरजे अच्छा है। किन्तु मेरे लिए मौत का द्वार भी बन्द है। ईश्वर ने बिसार दिया है। मौत मेरे समीप आने से डरती है। अब मेरा तथा पतिदेव—दोनों का जीवन सुखमय बनाना आपके अख़्तियार है। जैसा उचित समझें, करें। यदि आपने मेरी बातों को निरर्थक जान कर छोड़ दिया तो सम्भव है कि मेरी जीवन-लीला थोड़े ही रोज़ में समाप्त हो जाय। मुझे आशा तथा पूर्ण विश्वास है कि आप मेरी हालत को आगे रख कर उचित शिक्षा प्रदान करेंगे। अधिक क्या लिखूँ। आप ख़ुद बुद्धिमान् हैं। 'चाँद' में आप कोई ऐसा लेख प्रकाशित करें जो मांस-मदिरा के बर-ख़िलाफ़ हो, जिससे मेरे पतिदेव अपनी हालत सुधारें और गन्दी सोसाइटी छोड़ दें। दाल, सब्ज़ी आदि तथा हर क़िस्म के भोजन बनाने के अच्छे-अच्छे तरीक़े भी लिखें। मैं आपकी कृपा की मशकूर हूँगी। कृपया आप मेरे इस पत्र को 'चाँद' में प्रकाशित कर दें और मेरा नाम न लिखें।

देवी जी,

आप भी परमात्मा से करबद्ध प्रार्थना कीजिए कि आगामी जन्म में आप स्त्री न हों; और यदि ऐसा हो भी, तो हिन्दू-कुल में जन्म ग्रहण न करें, इससे अधिक—इस प्रार्थना के अतिरिक्त—आप या हम कर ही क्या सकते हैं ? रही आत्म-हत्या की भीरुतापूर्ण बात, उसे एक बार ही दिल से निकाल दीजिए, ऐसा करने से आप मानसिक दुखों से इस जन्म में भले ही त्राण पा सकें, पर आपको अपने पिछले जन्म के कर्मों का फल तो भोगना ही पड़ेगा, कौन कह सकता है फिर आपका जीवन और भी कष्ट-पूर्ण न हो जाय ? युक्ति से काम लीजिए, अच्छी-अच्छी पुस्तकों का अध्ययन कीजिए। पाक-शिक्षा का विस्तृत ज्ञान प्राप्त करने के लिए 'पाक-चन्द्रिका' आदि इसी विषय की बहुत सी पुस्तकें हैं, उन्हें पढ़िए।

—सं० 'चाँद'

* * *

हिन्दुओं की नाक

श्रीरामचन्द्र जी आर्य-मुसाफ़िर लिखते हैं:—

मान्यवर सम्पादक जी,

सेवा में निवेदन है कि मैं प्रचारार्थ रामनगर मण्डी आया हूँ। आज तक मैं यहाँ के सभी मुख्य-मुख्य स्थानों में घूमा हूँ। यहाँ भी गढ़वाल की तरह रण्डियाँ अधिक हैं, जिनके लिए कोई भद्र पुरुष या अन्य सुधारक कुछ काम नहीं करते। पर मेरे एक मित्र यहाँ बराबर रण्डियों से मिलते हैं और उन्हें इस बात पर विश्वास दिलाते हैं कि हम तुम्हारी हर प्रकार से सहायता करेंगे, अगर तुम इस पेशे को छोड़ कर विवाह करने को राज़ी हो। मैं भी उन रण्डियों से मिला हूँ। इस समय कई रण्डियाँ शादी करने के लिए तैयार हैं। मगर दुःख है, इसमें कुछ रुपए चाहिएँ, जिन्हें उनके माता-पिता को देकर उनका पिण्ड छुड़ा लिया जाय। रण्डियाँ मुसलमान और हिन्दू दोनों हैं।

यहाँ डुडकियाँ नाम की एक जाति है, जिसका पेशा गाने-बजाने का है। इस जाति की स्त्रियाँ दूसरों के यहाँ जाकर गाती हैं एवं व्यभिचार करती हैं। मैंने उनके कई सम्बन्धियों से बातचीत की। बहुत समझाने पर वे लोग भी अपनी लड़कियों का विवाह करने को राज़ी हुए। परन्तु वे भी रुपया माँगते हैं। हज़ारों रुपए देकर शादियाँ करने वाले यदि सौ दो सौ रुपए ही ख़र्च करें तो यहाँ उनकी शादियाँ आसानी से हो जायँ; साथ ही देश का सुधार भी हो। मुसलमान लोग रुपए देकर यहाँ से बहुत सी स्त्रियाँ ले जा रहे हैं और मुसलमानी बना कर शादी कर रहे हैं। क्या हिन्दू-सुधारकों का ध्यान इस ओर नहीं जायगा? आशा है, इसके लिए आप शीघ्र यत्न करेंगे।

महाशय जी,

वेश्याओं का आधिक्य कहाँ नहीं है, और न जाने कितनी वेश्याएँ अपने सुधार तथा पवित्र दाम्पत्य जीवन व्यतीत करने की इच्छुक हैं, पर मरणोन्मुख हिन्दू-समाज के नेताओं का ध्यान अभी तक इस ओर आकर्षित नहीं हुआ है। हम स्वयं निर्धन हैं, इसलिए सहायता ही क्या कर सकते हैं? हिन्दू-महासभा के कर्णधारों से प्रार्थना कीजिए, शायद एक जाँच-कमिटी बना कर हिन्दू-नेता अपना दायित्व कुछ दिनों के लिए टाल दें।

—सं० 'चाँद'

* * *

पारिवारिक अत्याचार

लश्कर से एक अभागिनी बहिन लिखती हैं:—

श्रीमान् सम्पादक जी,

नमस्ते!

मेरा जन्म कान्यकुब्ज वंश के अन्तर्गत द्विवेदी कुल में हुआ है। मेरे पिता जी एक साधारण ज़मींदार हैं। मेरे विवाह में पिता जी ने दहेज में दो हज़ार रुपए दिए थे, पर श्वसुर जी अप्रसन्न रहे। मैं विवाह में तो ससुराल नहीं गई। गौने में जब गाँव के बाहर आगई तब मेरा देवर बोला—"भाभी जी, एक बार और घर की ओर देख लो, अब शायद जीवन में इस गाँव के दर्शन न कर सकोगी।" मैं यह सुन कर अवाक् रह गई। पर उसकी बात पर विश्वास न हुआ। दो बार पिता जी बिदा के लिए आए, पर श्वसुर जी ने बिदा नहीं दी। माँ ने सैकड़ों रुपए (पिता जी से छिपाकर) और लोगों के हाथ श्वसुर जी के पास भेजे, पर उनका पत्थर का कलेजा न पसीजा।

आज मेरा गौना हुए छः वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। मैं माँ-बहिन तथा प्यारे छोटे भैया को देखने को तरस रही हूँ और वे मुझे। मेरी माँ का स्वास्थ्य ख़राब हो गया है। वे रोग-शय्या पर पड़ी हैं और एक बार मुझे देखना चाहती हैं। पर ये अर्थ-लोलुप नीच मुझे नहीं भेजते। मैं इससे बहुत दुखी हूँ। कभी-कभी जीवन से घृणा होने लगती है। मैं अपनी पढ़ी-लिखी बहिनों तथा भाइयों से प्रार्थना करती हूँ कि वे कृपया मुझे कोई ऐसी युक्ति बतलावें जिससे मैं एक बार अपनी स्नेहमयी जननी के दर्शन कर लूँ। आशा है, मेरी प्रार्थना व्यर्थ न जायगी।

देवी जी,

आप माता जी के स्वास्थ्य तथा उनके जीवन की चिन्ता छोड़ कर पति-देवता की सेवा को ही सर्वोपरि समझें, आपके धर्म-ग्रन्थों और हिन्दू-

समाज की यही आज्ञा है। माता जी से अगले जन्म में मिल लीजिएगा। ऐसा उच्च परिवार बार-बार थोड़े ही मिलेगा। एक तो हिन्दू, फिर ब्राह्मण; और उसमें भी कान्यकुब्ज—सोना और सुगन्ध का योग हुआ है !! यही समझ कर सन्तोष कीजिए कि दहेज-प्रथा की शिकार होने वाली आप अकेली ही महिला नहीं हैं, आप ही के समान न जाने आज आपकी कितनी बहिनें घुट-घुट कर भीषण पारिवारिक अत्याचारों को हँस कर सह रही हैं।

—स० 'चाँद'

*   *

कड़ुआ और मीठा

प्रतिष्ठास्पद सम्पादक जी,

सादर नमस्ते !

विगत मास के 'चाँद' में "कड़ुआ और मीठा" शीर्षक से माथुर चतुर्वेदियों के सम्बन्ध में जो टिप्पणी प्रकाशित हुई है, उसको आज अपने जातीय पत्र "माथुर-हितैषी" के क्रोड़पत्र के रूप में पढ़ा और हृदय को बहुत ही उत्तेजित और उत्साहित अनुभव किया।

सम्पादक जी, इस समाज की कुछ न पूछिए! आपने लगभग सभी कुरीतियों का यथावत् वर्णन कर दिया है, और सचमुच ही यह सभी इस जगत-पूज्या जाति के सुदृढ़ वृक्ष में घुन की भाँति घुसी हुई इसे भीतर ही भीतर खोखला बनाए देती हैं। यों तो ये बाहर-बाहर बसे हुए भाइयों में भी किसी न किसी रूप में विद्यमान हैं, परन्तु इनका असली अड्डा उक्त समाज के केन्द्र-स्थान मथुरा नगर में ही प्रत्यक्ष रूप में देखने में आ रहा है।

आपकी वर्णन की हुई कुप्रथाओं के अतिरिक्त कतिपय और भी कुप्रवृत्तियाँ हैं, जो बहुधा यहाँ—मथुरा में—केन्द्रित हो रही हैं और इस समाज को शनैः शनैः नष्ट करने में राजयक्ष्मा का क़ातिल कार्य कर रही हैं। उनमें से कुछ ये हैं—

(१) नगर के नगर में ही विवाह-सम्बन्ध करना, जिससे बधू समस्त दिन अपने मायके और रात्रि को ससुराल में रहा करती हैं और इसके कुपरिणाम-स्वरूप इनके दाम्पत्य जीवन की जो दयनीय दशा हो रही है, उसे वे ही जानते हैं। शायद ही कोई भाग्यहीना पत्नी पति के बस में रहने को बाध्य होगी। फल-स्वरूप अनेक स्त्रियों का पति से सम्बन्ध-विच्छेद भी हो चुका है और वे पूर्ण स्वतन्त्रता से अपने मायके में ही अपने गृहस्थ-जीवन का सुख-दुख भोग रही हैं।

(२) ज्योनारों की प्रथा—चाहे बच्चा मरे या बुड्ढा, द्वादशे के दिन ऐसा ज़बरदस्त भोज दे डालेंगे कि चाहे घर-द्वार भी बिक जाय, पर नाक न कटने पाए। इससे इनकी आर्थिक स्थिति दिन-ब-दिन बिगड़ती जा रही है।

(३) जीवन-निर्वाह का साधन अधिकतर यजमानी वृत्ति ही होने के कारण सभी प्रकृति के मनुष्यों को घर में ठहराना, और पतियों का अपने घरों पर कम और विदेशों में अधिक रहना भी गृहस्थ-धर्म की दृष्टि से हानिकारक सिद्ध हो रहा है।

(४) बदले से विवाह होने के कारण वर-बधू की अवस्था और योग्यता-अयोग्यता का विचार बहुत कम किया जाता है, और अनेक घरों के युवकों को, जिनमें कि बदले में देने के लिए कन्याएँ नहीं हैं, सारी आयु कौमार्य्य जीवन ही व्यतीत करना पड़ता है। उधर बाल-विधवाओं का भी आधिक्य है। फल यह है कि दिन प्रतिदिन इनकी जन-संख्या घटती जा रही है। बदले के विवाहों में बहुधा सरकारी रजिस्टरी भी आपेक्षित होती है, जिससे वचन देकर कोई व्यक्ति प्रतिज्ञा भङ्ग न कर डाले। इन्हीं विषयों पर अक्सर झगड़े भी चलते रहते हैं।

(५) विद्या के विषय में इतना ही कहना पर्याप्त है कि इनका अधिकांश भाग संसार की वर्त्तमान धार्मिक, सामाजिक एवं राजनैतिक परिस्थिति से नितान्त अनभिज्ञ है। प्रथम तो शिक्षा का एकान्त अभाव-सा ही है, और यदि कुछ सज्जन संस्कृत शिक्षा प्राप्त हैं, तो उनके परिज्ञान की सीमा पुरोहिताई और पूजा-पाठ के कार्यों तक ही परिमित है, समाज और संसार की उन्हें कुछ चिन्ता नहीं।

(६) मृतक सम्बन्धी के लिए छाती को घूँसों से पीट-पीट कर रोना तथा वर्ष भर के स्यापे की प्रथा भी इनमें प्रचलित है।

(७) सबसे अधिक बुरी प्रवृत्ति, जिसकी ओर आपका ध्यान विशेष रूप से आकर्षित करना है, वह है इनकी स्वार्थपरता और लड़ाकू स्वभाव। ये सर्वदा अपने ही हितचिन्तन में रत रहते हैं। लड़ने की यह हालत है कि जिस समय यजमानों के ऊपर अथवा अन्य किन्हीं ऐसे ही घरेलू कारणों से लड़ाई छिड़ जाय, तो फिर बाँसों के तुमुल नाद से निस्तब्ध वायुमण्डल एकदम निनादित हो उठता है। इनकी गृहलक्ष्मियों में भी बहुधा ऐसे ही युद्ध ठनते हैं। परन्तु वे अधिकतर गाली-गलौज तक ही परिमित रह जाते हैं !!

सम्पादक जी, यह मैंने इस समाज की वर्त्तमान दशा का दिग्दर्शन मात्र कराया है। यदि आप इनके सुधार के निमित्त अपनी लेखनी उठाने का कष्ट करें, तो विस्तार से लिख कर आपकी सेवा में प्रेषित करूँ। यद्यपि मैं भी इसी समाज का एक तुच्छ व्यक्ति हूँ और उपरोक्त सभी कुरीतियों का अपने घर को ही शिकार पा रहा हूँ, परन्तु बुराई को तो बुराई कहना ही पड़ता है। आशा है, आप इसको अपने पत्र में स्थान देकर इन लोगों का ध्यान कुरीतियों की ओर आकर्षित करेंगे।

आपका,

—बलभद्र चौबे

* * *

महाशय जी,

हमें जो कुछ कहना था उसे सारांश में हम दिसम्बर मास के 'चाँद' में निवेदन कर चुके हैं। किसी भी समाज के बड़े-बूढ़ों से यह आशा करना कि वे रूढ़ियों की प्रचलित कुरीतियों को तिलाञ्जलि देकर देश और समाज के फलने-फूलने में सहायक होंगे—पत्थर से पानी निकालने की आशा के समान निराशा मात्र है।

हमें जो भी आशा है वह है देश के भावी नागरिकों से—देश के नवयुवकों से। जब तक वे कुचले हुए सर्प की भाँति एक बार ही तिलमिला कर इन रूढ़ियों की प्रचलित कुरीतियों के मस्तक पर पाद-प्रहार नहीं करेंगे—जब तक वे अपने समाज में बग़ावत का झण्डा बुलन्द नहीं करेंगे तब तक किसी भी प्रकार का सुधार सम्भव नहीं है। किसी भी देश का इतिहास हमारी इस धारणा का पोषक है।

—स० 'चाँद'

* * *

बप्पा रावल की तलवार

मानतीय सम्पादक जी,

फ़रवरी, १९२८ के 'चाँद' में एक पत्र श्री० भूरालाल मूणोत्त का छपा है, उसमें मेरे 'बप्पा रावल की तलवार' शीर्षक लेख के सम्बन्ध में कतिपय प्रश्न किए गए हैं। मेरे लेख में राणा मुकुल का नाम मेरी असावधानी से छप गया था। 'मुकुल' की जगह महाराणा हमीर के पुत्र 'चेत्रसिंह' का नाम होना चाहिए था। लेख में जिन मालदेव का ज़िक्र आता है, उनका परिचय टॉड साहब के अनुसार निम्न भाँति है :—

"सन् १३०३ ई० में अलाउद्दीन ने चित्तौर को विजय करके वहाँ का राज्य-शासन झालौर के शैनगेड वंश के मालदेव नामक एक सरदार के हाथ में दे दिया। चित्तौर में दिल्लीश्वर की एक सेना भी मालदेव के अधीन रहती थी।"

टॉड साहब ने मालदेव के दो पुत्रों का भी राजस्थान के इतिहास में ज़िक्र किया है। उनके अनुसार बड़े का नाम बनवीर और छोटे का नाम हरीसिंह था। मालदेव के एक कन्या भी थी, जो कि बचपन ही में विधवा हो गई थी। उसका पुनर्विवाह कपट से महाराणा हमीर के साथ कर दिया गया था। राणा हमीर की इन्हीं रानी से कुँवर चेत्रसिंह पैदा हुए थे।

राणा हमीर इन्हीं रानी की सहायता से अपने पुरखाओं की सम्पत्ति चित्तौर को बैरियों के हाथ से निकाल सके थे, और मालदेव को युद्ध में पराजित किया था। इस युद्ध में मालदेव की तरफ़ से एक मुसलमान राजा भी लड़ा था। मालदेव का छोटा पुत्र हरीसिंह राणा हमीर द्वारा युद्ध में मारा गया और बड़े पुत्र बनवीर ने राणा हमीर की अधीनता स्वीकार की। राणा ने नीमच, जीरण, रतनपुर इत्यादि गाँवों की भूमिवृत्ति उनको दी।

इसके अतिरिक्त टॉड साहब के राजस्थान में मालदेव के विषय में कोई उल्लेखनीय बात नहीं मिलती।

मालदेव का कुछ हाल साहित्याचार्य पं० विश्वेश्वर-

नाथ रेऊ कृत 'भारत के प्राचीन राजवंश' नामक पुस्तक के पहले भाग के ३११ वें पृष्ठ पर दिया है।

डॉक्टर एनी बिसेन्ट कृत Children of the Motherland में मालदेव के बारे में निम्न पंक्तियाँ मिलती हैं।

" Meanwhile, at Chittor, dwelt Rao Mal Deo a prince of Chohan-race, who was, alas serving the Pathan Emperor and he sent embassy to Rana Hamir offering him his daughter in marriage."

शुभचिन्तिका,
—गङ्गादेवी

मदिरापान

[रचयिता—श्री० सूर्यनाथ जी तकरू]

(१)

जीवन-सरिता के दुकूल पर,
खड़ा हुआ मैं झूम रहा।
उनके आँचल के कोने को,
बार-बार हूँ चूम रहा।

(२)

आँसू की इस प्रबल धार में,
क्या जानें कब बह जाएँ।
अन्तर के अरमान हमारे,
पड़े यहीं पर रह जाएँ।

(३)

फिर क्यों आज न जग को भूल,
पी लें मदिरा का प्याला।
इन लहरों से क्यों न करें हम,
अब अपने को मतवाला।

(४)

इच्छाओं अरमानों की मैं,
आज चिता सुलगा आया।
अभिलाषाओं, आशाओं की,
आज समाधि लगा आया।

(५)

फिर तुम लैला मैं मजनूँ बन,
प्याले पर प्याला पी लें।
यह गुलाब की पङ्खड़ियाँ फिर,
क्यों न कहो, हाला ले लें।

(६)

चारों दिस फिर रिमझिम करके,
वही 'गुलाबी' बरसेगी।
होऊँगा बेहोश—वेदना,
निराधार हो—तरसेगी।

(७)

गहरी लाल भरी प्याली—
शराब की मेरी छलक रही।
मदिरा के बेहोश नशे में—
बार बार झप पलक रही।

(८)

अपने आप ढालता हूँ मैं—
यहाँ न कोई साक़ी है।
उनके आने तक खो बैठूँ,
होश—अभी कुछ बाक़ी है!

(९)

'प्यारे-प्यारे' रटते-रटते,
मेरा मन भी कीर हुआ।
भर-भर प्याले जो देता था,
वह क्यों यों बेपीर हुआ?
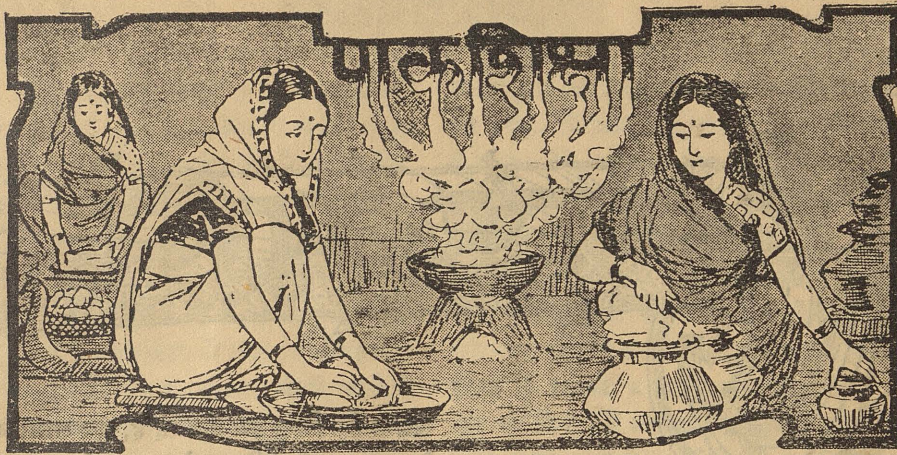
आक के पत्तों का अचार

आक के अधपके पत्ते लेकर उबाल डाले। फिर कालीमिर्च, ज़ीरा, लौंग इलायची, सोंठ, धनियाँ, सौंफ़, दालचीनी, जावित्री, जायफल और नमक—सबको बारीक पीस कर पत्तों के ऊपर-नीचे लगाकर बर्तन में भर कर रख दे और ऊपर से थोड़ा सा नींबू का रस डाल दे। यह बहुत ही स्वादिष्ट अचार बनेगा।

* * *

नींबू का अचार

पक्के नींबू लेकर सरौते से उनको चार-चार फाँक इस प्रकार करे कि फाँकें अलग न होने पावें—जुड़ी रहें। फिर उनमें से बीजों को निकाल कर फेंक दे। इसके बाद मिट्टी के बर्तन में भर कर चौथाई के क़रीब लाहौरी नमक पीस कर ऊपर से डाल दे। बर्तन का मुँह बन्द कर ४ दिन तक रात्र को ओस और दिन को धूप दिखाया करे। जब ऊपर का छिलका सुर्ख़ हो जाय तो उसमें लौंग, इलायची, कालीमिर्च, सोंठ, पीपल, काला ज़ीरा, दालचीनी और सफ़ेद ज़ीरा, सबको अन्दाज़ से लेकर ख़ूब बारीक पीस कर डाल दे, और चलाकर सब में बराबर मिला दे। इसके बाद आवश्यकतानुसार नींबू का अर्क़ डाल दे और बर्तन का मुँह बन्द करके रख दे। यदि अचार को मीठा करना है तो थोड़ी सी शक्कर की चाशनी भी डाल दे। यह अचार भी स्वादिष्ट होता है।

* * *

कमरख का अचार

कमरखों के छोटे-छोटे टुकड़े करके उबाल ले और फिर बीज निकाल कर उसमें गरम मसाला, हल्दी, धनियाँ, मिर्च, नमक और राई मिला दे, उत्तम अचार तैयार होगा।

—वृन्दा

* * *

मिश्री बनाने की तरकीब

सफ़ेद साफ़ चीनी लेकर कुल की चार तार की चाशनी बना ले और मिट्टी के छोटे-छोटे गिलासों में भीतर की तरफ़ मोटा काग़ज़ सूत में लगा कर इस चाशनी को उनमें भर कर रख दे। जब थोड़ी देर में दो हिस्से के क़रीब जम जावे तो ऊपर की पपड़ी हटा कर गिलासों को बाँस की जाली पर औंधा करके रख दे और उसके नीचे थाल रख दे। जब गिलासों में से रस टपकना बन्द हो जाय तो उन्हें सीधा करके सुखा दे। जब बिलकुल सूख जायँ तो गिलासों को तोड़ कर मिश्री को बाहर निकाल ले और काग़ज़ छुड़ा कर काम में लावे।

* * *

गरी की बर्फ़ी

उम्दा और सफ़ेद गोले की गरी को पहले कद्दूकस में कस कर बारीक करे, फिर या तो अकेले या बराबर के खोए के साथ घी में भून ले और फिर बराबर की शक्कर की चाशनी के साथ आग पर चढ़ा कर थोड़ी देर घोटे। जब ख़ूब मिल जाय तो थाली में उतार कर फैला दे, और जब जमने पर आवे तब गुलाब या केवड़ा जिसकी पसन्द हो, ख़ुशबू दे दे।

—कलावती, कौल
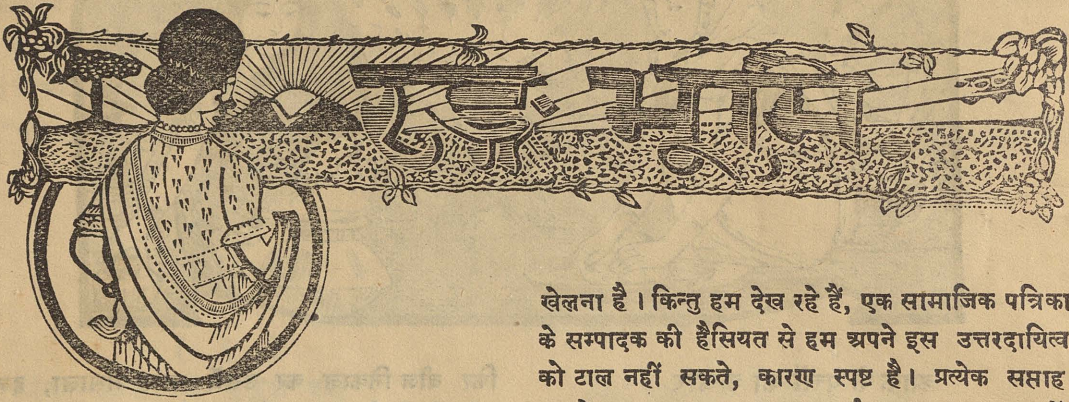
एक लाख की अपील

भारत में कई प्रमुख स्थानों में संरक्षण-गृहों की आवश्यकता दिखलाते हुए हम कई बार 'चाँद' के इन्हीं स्तम्भों में अपने विचार प्रगट कर चुके हैं। विगत अगस्त १९२७ के 'चाँद' में हमने इस प्रकार की संस्थाओं के निर्माण तथा कार्य-क्रम सम्बन्धी एक विस्तृत योजना भी प्रकाशित की थी और प्रचार की दृष्टि से इन्हीं लेखों का एक सुन्दर संग्रह १५,००० की विशाल संख्या में बिना मूल्य वितीर्ण भी किया गया था। हमें प्रसन्नता है, अनेक प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं ने हमारी इस योजना (Scheme) को बहुत पसन्द किया और जनता से इसे कार्य रूप में परिणत करने का अनुरोध भी। फल-स्वरूप कई स्थानों पर संरक्षण-गृहों की नीवें डाली गईं और तब से यह आन्दोलन धीमी, किन्तु निश्चित गति से चल रहा है। प्रयाग में इस प्रकार की एक भी संस्था नहीं थी। अनेक प्रतिष्ठित मित्रों ने इस शर्त पर पर्याप्त धन देने की इच्छा प्रकट की थी कि संस्था का सारा प्रबन्ध तथा उत्तर-दायित्व इन पंक्तियों का लेखक पूर्ण-रूपेण ग्रहण करे, किन्तु कार्य की अधिकता के कारण हमारा साहस नहीं हुआ कि मित्रों की इस अपार कृपा का हम लाभ उठा सकें। संरक्षण-गृह जैसी नाज़ुक संस्था का सारा भार ग्रहण करना हँसी-खेल का विषय नहीं है, यह आग से खेलना है। किन्तु हम देख रहे हैं, एक सामाजिक पत्रिका के सम्पादक की हैसियत से हम अपने इस उत्तरदायित्व को टाल नहीं सकते, कारण स्पष्ट है। प्रत्येक सप्ताह हमारे पास एक न एक करुणापूर्ण पत्र इस सम्बन्ध में आया ही करते हैं। हाल ही के आए हुए कुछ पत्रों के नमूने ये हैं :—

(१)

ग़ाज़ीपुर ज़िले से एक २१ वर्षीया कायस्थ-युवती ने अपने १९ दिसम्बर के पत्र में हमें अपनी मर्मभेदी कहानी इस प्रकार लिखी थी :—

पूज्य सम्पादक जी !

मैं पिछले पाँच वर्षों से नियम-पूर्वक आपका सुविख्यात अख़बार पढ़ रही हूँ, मुझे शब्द नहीं मिलते जिनसे अपने मनोभावों को आपके सामने बिखेर सकूँ—अपनी श्रद्धाञ्जलि आपके पवित्र चरणों में समर्पित कर सकूँ। 'चाँद' के प्रति मेरा मूक प्रेम रहा है और शायद आजीवन रहता, आप मुझे जान भी न पाते, किन्तु स्वार्थवश यह पत्र आपकी सेवा में लिखना पड़ रहा है। आशा है, आप अपनी इस अभागिनी बहिन से घृणा न कर, उसके पथ-प्रदर्शक बनेंगे और मेरे जीवन की सञ्चित उमङ्गों को बटोर कर एक निश्चित मार्ग पर लगाने की कृपा करेंगे।

इस समय मेरी अवस्था २१ वर्ष की है। मैं एक नायब तहसीलदार की अभागिनी कन्या हूँ। स्वर्गीय पिता जी का वेतन ८० रु० मासिक था और २-३ सौ मासिक आय उन्हें ऊपर से हो जाती थी। उनके क्रमशः तीन विवाह हुए। मैं पहली स्त्री की सन्तान हूँ। मेरी माता जी का देहान्त उस समय हुआ, जब मैं ३ वर्ष की मासूम थी। मेरा पालन-पोषण कैसा हुआ, आप स्वयं हिन्दू हैं, इस-

लिए इसका अनुमान लगा सकते हैं। मैं आजीवन माता-पिता के स्वर्गीय प्रेम तथा लाड़-प्यार से वञ्चित रही। सौतेली माताओं के मुझ पर जो-जो पारिवारिक अत्याचार हुए हैं, उन्हें लिख कर मैं आपका अमूल्य समय नष्ट नहीं करना चाहती। मेरी दोनों सौतेली माताएँ अभी तक जीवित हैं और अपने-अपने मैके में चैन की बंसी बजा रही हैं। दोनों माताएँ दो भिन्न-भिन्न वस्तुएँ हैं। एक पूजा-पाठ में तथा तीर्थ-यात्रा में निमग्न रहती है, दूसरी एक मुसलमान बीड़ी वाले के साथ × × × इससे अधिक लिखने का मुझमें साहस नहीं है। पिता जी जो कुछ कमाते, वह सारा धन शराब-कबाब तथा यार-दोस्तों में स्वाहा होता रहा। एक मुसलमान वेश्या से उनका सम्बन्ध भी था। उसने भी उन्हें ख़ूब काठ का उल्लू बनाया और सब कुछ हड़प गई। ऐसी परिस्थिति में मेरी पढ़ाई-लिखाई का प्रबन्ध तो क्या होता, अब तक जीवित हूँ, सौतेली माताओं की यही क्या कम कृपा है!

आप जानते हैं, हमारी जाति में (कायस्थों में) वर का क्या मूल्य देना होता है और लड़की कितनी सस्ती समझी जाती है। घर में दहेज़ की रक़म न होने के कारण और किसी को चिन्ता न होने के कारण मैं आज तक कुमारी हूँ और शायद आजीवन रहूँ भी। मैंने अपनी बेहयाया से थोड़ा-बहुत हिन्दी पढ़ लिया है, सीने-पिरोने का काम भी जानती हूँ। पिता जी के मरने पर मैं अपने मामा के गले पड़ी और वहीं नौकरानी की तरह रहने लगी। यहाँ आने के दूसरे ही महीने मेरी मामी का देहान्त हो गया। पहले तो मेरे मामा मेरी चिन्ता ही नहीं करते थे, पर जब से मामी का देहान्त हुआ तब से वे विशेष लाड़-प्यार करने लगे, मेरे हर्ष की सीमा नहीं रही। लाड़-प्यार की मैं जन्म से भूखी थी, इसे पाकर मैं निहाल हो गई। पर मुझे क्या पता था कि इसी प्यार की तह में मेरे सर्वनाश की आग धू-धू करके सुलग रही है। मेरे नर-पिशाच मामा का प्रेम वात्सल्य-प्रेम नहीं था—वह था नर-पिशाचों की काम-लिप्सा का नग्न ताण्डव! मैं धीरे-धीरे सब समझ गई, पर अन्त में मेरा पतन हो गया, प्रकृति से मैं लोहा न ले सकी। हम दोनों ही अन्धे हो रहे थे—किसी को भविष्य की चिन्ता नहीं थी। ऐसी परिस्थिति में जो हुआ करता है वही हुआ! प्रकृति ने दण्ड दिया—वह दण्ड, जिसको हिन्दू-समाज घृणा की दृष्टि से देखता है। जब मेरे मामा को पता चला तो एक बार ही वे आग-बबूला होगए और लगे मुझे उलटी-सीधी सुनाने। सम्पादक जी! सत्य कहती हूँ, मेरी बुद्धि काम नहीं कर रही थी। मैं इस बात की कल्पना भी न कर सकी थी कि पुरुष इतनी धूर्तता कर सकते हैं। सारे मुहल्ले में हल्ला मच गया और टीका-टिप्पणी होने लगी। मेरे नर-पिशाच मामा ने सबको न जाने क्या उलटा-सीधा समझा कर भूत कर दिया। मैं क्या करती? मुझमें इतना नैतिक बल नहीं था कि पञ्चों के सामने अपने नर-पिशाच मामा की सारी पोल खोल सकती। इस निर्बलता का एक यह भी कारण था कि मेरी बातों पर विश्वास ही कोई क्यों करेगा? मामा दोनों समय गङ्गा-स्नान करते हैं; भूमि पर सोते हैं, माथे में चन्दन पोतते हैं, एकादशी का नियमित रूप से व्रत रखते हैं—क्या इन सब बातों को देखता हुआ कोई व्यक्ति उनके कलुषित आचरण पर सन्देह करने का साहस कर सकता है? मैं घर से निकाल बाहर की गई, फिर मेरी क्या-क्या दुर्गति हुई और किस प्रकार मैं अपने मामा के पाप से अपना पिण्ड छुड़ा सकी, यह कहने का विषय नहीं है और न उन बातों को आप छाप ही सकते हैं। × × ×

यह पत्र लिखने के दो कारण हैं—एक तो यह कि मेरे समान अन्य हतभागिनी बहिनें, जिनकी संख्या कायस्थ-समाज में कम नहीं है, मेरी बर्बादी से शिक्षा ग्रहण करें, दूसरा कारण यह है कि मैं अब अपना शेष जीवन सामाजिक सुधार के पवित्र कार्य में व्यतीत करना चाहती हूँ। मैं प्रतिज्ञा करती हूँ, आजीवन विवाह न करूँगी और सदाचार-पूर्वक जीवन यापन करूँगी। क्या आप मुझे कोई ऐसी संस्था बता सकते हैं, जो मेरे मनोभावों की क़द्र कर सके। आप संरक्षण-गृह खोलने वाले थे उसका क्या हुआ? मेरी टूटी-फूटी भाषा सुधार लीजिएगा और नाम और पता गुप्त रखिएगा; यदि आप इस पत्र को 'चाँद' में छापें, आपको मेरी शपथ है।

* * *

(२)

श्री० रुद्रदत्त जी मिश्र, विशारद, अध्यापक, हिन्दी

मिडिल स्कूल मँगरोल (कोटा स्टेट; राजपूताना) अपने ७वीं सितम्बर, सन् १९२८ के पत्र में लिखते हैं—

श्रीमान् सम्पादक महोदय 'चाँद'

श्रीमान् की सेवा में मैंने एक पत्र पहले भी भेजा था, जिसमें जबलपुर के उन डॉक्टर महोदय का पता पूछा था कि जो गर्भवती विधवाओं को अपने संरक्षण-गृह में प्रसवकाल तक रखने का प्रण कर चुके हैं। मुझे एक कानपुर की उच्च वंशज महिला की प्रतिष्ठा का ध्यान है। मेरे मित्र द्वारा उनका पता पूछा गया है। यदि आप लिखने की कृपा करें तो अत्युत्तम हो।

(१) कहाँ-कहाँ ऐसे संरक्षण-गृह हैं जहाँ ऐसी विधवाएँ प्रसवकाल तक रह सकती हैं, पते लिखिएगा।

(२) ऐसे आर्यसमाज के विधवा-आश्रम कहाँ-कहाँ हैं, जिनमें उपर्युक्त प्रबन्ध है।

आशा है, श्रीमान् शीघ्र से शीघ्र मुझे उत्तर देने की कृपा करेंगे। क्या इलाहाबाद में कोई ऐसा स्थान है?

उत्तर के लिए टिकट -) का भेजा जाता है, इसी डाक से उत्तर देने का कष्ट कीजिए।

* * *

(३)

श्री० कालिकाप्रसाद गुरुदेव, प्रधान आर्य-समाज मुस्करा, ज़िला हमीरपुर (बुन्देलखण्ड) से अपने तारीख़ २७-११-२८ के पत्र में लिखते हैं :—

श्रीमान् महोदयवर,

सादर नमस्ते!

दश मास हुए जब एक ब्राह्मणी विधवा के जननार्थ प्रार्थना की थी। आपने पूर्ण सहायता का वचन देकर हमारे उत्साह को बढ़ाया था। आपकी इस कृपा के लिए हम कृतज्ञ हैं।

अब हमारे समक्ष एक असहाय निर्धन और कुलवती क्षत्राणी विधवा है, जिसकी अवस्था अनुमानतः २६ वर्ष है। इसके गर्भ रह गया है और आठवाँ मास पूर्ण होने को है। गर्भ एक सजातीय का है, पर वह कायर ग्राम त्याग कर भाग गया है। अब यह बर्बाद होने जा रही है। एक मुसलमान की बहकावट में है। उसने (मुसलमान ने) वादा किया है कि कोई नहीं जानेगा, हम तेरा गर्भ गिरवा देंगे, वह राज़ी हो गई है। परन्तु यह समाचार एक धर्मात्मा पुरुष को प्राप्त हुआ। वह बेचारा ७ मील उस विधवा के पास जाकर उस स्त्री को राज़ी कर पाया है कि तेरा प्रसव करा कर तेरे बच्चे को वहीं छोड़, दो मास पश्चात् तुझे वापस बुला लेंगे। आज वह सज्जन ३६ मील दौड़ कर मेरे पास आया है, अतः अब श्री सेवा में प्रार्थना है कि मुझे लौटती डाक से आज्ञा प्रदान करें कि मैं इस देवी को लेकर आपके पास प्रयाग पहुँचाऊँ और आप इसे कराँची या किसी अन्य स्थान पर भेज कर इसकी रक्षा करें। प्रसव के पश्चात् वह पुनः अपने गृह वापस आ जाय। यदि इसका प्रबन्ध नहीं हुआ तो यह गर्भस्थ जीव को मार, जेल जायगी अथवा मुसलमान हो जायगी। आशा है, आप उत्तर लौटती डाक से प्रदान करेंगे। पहली स्त्री का तो प्रबन्ध हमने कर लिया था, आपको कष्ट नहीं दिया था, पर अब आपको ही करना पड़ेगा। हम इस बार असमर्थ हैं।

चूँकि प्रसव-काल निकट है, अतः कृपया लौटती डाक से आज्ञा प्रदान करें। × × ×

* * *

(४)

श्री० बी० आर० वर्मा, हिन्दी विश्वविद्यालय, काशी से अपने २७-११-२८ के पत्र में लिखते हैं :—

प्रिय महाशय,

आपके फ़रवरी, १९२८ के 'चाँद' में "चिट्ठी-पत्री" वाले भाग में "हिन्दू विधवाओं की दुर्दशा" शीर्षक एक लेख प्रकाशित हुआ था, जिसमें डॉक्टर बिहारीलाल जी बालाघाट (सी० पी०) ने वर्तमान हिन्दू-संसार में होने वाली भ्रूण-हत्याओं का एक हृदय-विदारक दृश्य खींचा था। उसमें उन्होंने बतलाया था कि उन्होंने इस बात का प्रबन्ध कर रक्खा है कि जो विधवा या क्वाँरी इस बात की सूचना उन्हें दे दें कि अनुचित व्यवहार के कारण उसके गर्भ रह गया है तो आप प्रसव करा, जीवित बच्चे को अपने पास ले लेंगे। तथा उक्त रमणी को समाज की लाञ्छनाओं से बचाएँगे। अतः मैंने उक्त डॉक्टर साहब के पास इस आशा का पत्र लिखा था कि दो विधवाएँ, जो जाति की ब्राह्मणी हैं, उनके गर्भ लगभग ८ महीने के हो गए हैं और वे बिलकुल घबड़ा गई हैं। अतएव यदि उनकी ख़बर शीघ्र न ली जायगी तो या तो वे भ्रूण-हत्या करेंगी अथवा

आत्म-हत्या या विधर्मी भी हो सकती हैं। मुझे जब इस बात की ख़बर लगी तो मैंने उन्हें सान्त्वना दिया था तथा उक्त डॉक्टर साहब के पास पत्र लिखा था कि आप कृपया यह बतलावें कि कब, कहाँ और कैसे उनके पास आया जाय? किन्तु अत्यन्त शोक के साथ कहना पड़ता है कि डॉक्टर साहब ने पत्रोत्तर भी नहीं दिया, क्या कारण है, समझ में नहीं आता। क्या उनका पता जो 'चाँद' में छपा था, यथेष्ट नहीं है, अथवा पत्र ही उनके पास नहीं पहुँचा, अथवा डॉक्टर साहब हैं ही नहीं? क्या बात है? अतएव मैं आपके पास आज इसी लिए यह प्रार्थना-पत्र भेज रहा हूँ कि उक्त कार्य में आप पूर्ण-रूपेण सहायता करें। आप से मुझे बहुत-कुछ आशा है। कृपया शीघ्रता कीजिएगा, नहीं तो अनर्थ हो जायगा। पत्रोत्तर अवश्य दीजिएगा। मैं आपकी पत्रिका का ग्राहक भी हूँ। मेरा ग्राहक-नम्बर ८,८२१ है। गाँव नारिया, डाकख़ाना लङ्का, बनारस हिन्दू-यूनिवर्सिटी।

* * *

इसी प्रकार के अनेक पत्र समय-समय पर 'चाँद' में छपते रहे हैं। मार्च १६२८ के 'चाँद' के इन्हीं स्तम्भों में हम कूड़ों पर, सड़कों पर, तथा रेलादि में निरपराध बालकों के पाए जाने के कई उदाहरण और चित्र प्रकाशित कर चुके हैं। कौन कह सकता है हरामी कह कर इस प्रकार परित्याग कर दिए जाने वाले निरपराध बच्चे भगवान् वेदव्यास से भी अधिक विद्वान्, कर्ण से भी अधिक पराक्रमी और वीर तथा कबीर की भाँति महान् न होते; यदि उन्हें जीने का अवसर दिया जाता? शायद हमें बतलाना न होगा कि महा-भारत के अधिकांश प्रातः स्मरणीय पात्र हरामी थे—ठीक उसी प्रकार के हरामी थे जिस प्रकार के ये हरामी! धीवर की कुमारी कन्या सत्यवती के साथ महर्षि पराशर का सम्भोग और इसी के फल-स्वरूप भगवान् वेदव्यास का जन्म हमारी गढ़ी हुई घटना नहीं है। कुमारी कुन्ती के साथ सूर्य का व्यभिचार और इसके द्वारा प्रबल प्रतापी वीर कर्ण का जन्म भी उपेक्षा करने का विषय नहीं है। इस घटना के बाद भी कुन्ती के विवाह का किसी ने विरोध नहीं किया था। अन्त में कुन्ती का शुभ विवाह पाण्डु से हुआ था, जिनके सहवास से पाण्डवों का जन्म होना भी ध्रुव-सत्य है। महाकवि कालिदास के वंश का किसी को आज तक पता नहीं है। कबीर जैसे सिद्धभक्त भी कूड़े के ढेर पर पड़े हुए मिले थे, पर आज अभागे हिन्दुओं की हठधर्मी, उनकी सामाजिक सङ्कीर्णता, उनकी अपरिवर्तन-शीलता और उनकी स्थितिपालकता ने न जाने कितने लालों को खोकर अपने को क्षीण और विधर्मियों को निहाल कर दिया है। ये पंक्तियाँ लिखते-लिखते हमें खण्डवा (सी० पी०) का एक रोमाञ्चकारी समाचार मिला है। १२ जनवरी के सहयोगी 'कर्मवीर' में यह पंक्तियाँ प्रकाशित हुई हैं जिन्हें सम्पादक महोदय ने निशान लगा कर तथा उस पर "Hindu Society exposed in its neckedness" लिख कर हमारे पास भेजने की कृपा की है। पाठकगण इन्हें पढ़ें और आँसू बहावें। पंक्तियाँ ये हैं:—

ता० ३०।१२।२८ को, रात्रि में, लगभग ८ बजे एक कन्या, तीन-चार दिन की, अनाथालय के टीन के कम्पाउण्ड के बाहर, कोई व्यक्ति डाल गया। कन्या के रोने पर अनाथालय के मेहतर ने सूचना दी। कन्या फाटक के पास पड़ी थी। उसके पास एक पत्र भी पड़ा मिला, जिसकी अविकल लिपि यह है:—

"ओं"

"श्री० माहा से कृपा करके यह लड़की आप के सूपरत करी है, आप हिन्दू धर्म कि रक्षा करना यही धर्म है और मैं जाती की ऊँची हूँ अपनी इज्जत रखने को आप के पास भेजी है अब मैं प्रतीगा करती हूँ कि जनम भर यह काम नहीं करूँगी और मैं किसी भी रूप में इस लड़की की साहता अनाथले में करती रहूँगी सो इसका अनाथले में भेजो और इसकी जान बचान यह आपसे प्रथन्या है इसके दोसी आप होवोगे अगर रक्षा नहीं करोगे तो मेरा आप सबको प्रनाम है।

द० हिन्दू कि बालीका

फिर से मैं अपना पता दूँगी।"

कन्या आश्रम में सकुशल है। इसको श्रीमान् ज़िलाधीश मिस्टर डी० वी० रेगे साहब और उनकी श्रीमती जी ने भी, अनायास रात्रि के

समय आकर देखा, तथा बड़ा दया-भाव प्रदर्शित किया। श्रीमती जी ने इस कन्या के लिए कई गर्म वस्त्र भी भेजे हैं।

इसके अतिरिक्त कन्या को श्रीमान् पं० माखनलाल जी चतुर्वेदी सम्पादक 'कर्मवीर' और श्रीमान् पं० सि० मा० आगरकर स० सम्पादक 'कर्मवीर' ने भी अवलोकन किया है। कन्या सुन्दर और किसी उच्च घराने की है।

जिस देवी का यह कार्य है, हम उसके साहस की प्रशंसा किए बिना नहीं रह सकते। उसने अपने एक पाप को छिपाने के लिए भ्रूण-हत्या का दूसरा पाप नहीं किया, और इस कन्या को आश्रम तक पहुँचाया।

—मौजीलाल, मन्त्री हिन्दू-अनाथालय, खण्डवा

* * *

हमारे पास इसी आशय का एक न एक अभागिनी महिला का करुणा-पूर्ण पत्र नित्य ही आया करता है, जिसमें वे अपनी लाज छिपाने के अभिप्राय से हमारी सहायता चाहती हैं, पर बिना किसी उपयुक्त संस्था के हुए हम व्यक्तिगत रूप से कर ही क्या सकते हैं। आज तक व्यक्तिगत रूप से हमसे जो कुछ हो सका है, हमने अभागिनी बहिनों की सेवा की है। अनेक महिलाओं को हमने श्रद्धेय मोहता जी के द्वारा स्थापित कराँची तथा बीकानेर के संरक्षण गृहों में जाने की सलाह दी है। स्त्रियों का सर्वस्व यों तो समस्त भारत में लम्पट पुरुषों द्वारा अपहरण किया जाता है, पर दुर्भाग्य से युक्तप्रान्त में इसका विशेष आधिक्य है। मिर्ज़ापुर, झाँसी, कानपुर, प्रयाग अथवा काशी की ऐसी अभागिनी स्त्रियों से यह आशा करना कि वे ७-८ मास का कलङ्क पेट में लेकर इतनी दूर की यात्रा करेंगी, दुराशा मात्र है। एक और भी कारण है। एक बार ऐसा विकट धोखा खाकर स्त्रियाँ सहसा किसी का विश्वास भी नहीं करतीं, उनका ऐसा करना नितान्त स्वाभाविक है। ऐसी परिस्थिति में हम प्रत्यक्ष अनुभव कर रहे हैं कि प्रयाग में एक विशाल संरक्षण गृह की नितान्त आवश्यकता है, जिसमें कम से कम १००-१५० स्त्रियों के रहने का तथा आदर्श जीवन व्यतीत करने का समुचित प्रबन्ध हो सके। इस कार्य के लिए कम से कम १ लाख रुपयों की आवश्यकता है। हिसाब का संक्षिप्त ब्योरा इस प्रकार है:—

एक ऐसे साधारण भवन के निर्माण के लिए जिसमें १०० कमरे, चौका तथा चारों ओर बरामदे, रसोई तथा गुसलख़ाने आदि रह सकें, करीब ५०,००० के व्यय होंगे। बर्तनों, चारपाइयों, वाद्यों, कपड़ों, बिस्तरों, मैशीनों तथा चर्ख़े आदि में कम से कम १०,००० व्यय होंगे। ज़मीन का किराया भी क़रीब ५०० रुपया वार्षिक देना होगा, एक छोटे से, किन्तु आवश्यकतानुसार दवाख़ाने के लिए भी कम से कम ५,००० रुपयों की आवश्यकता होगी और शेष रुपए, रेल-यात्रा, अन्य प्रकार की सहायता, कर्मचारियों का वेतन, शिक्षा आदि के समुचित प्रबन्ध तथा भोजन-वस्त्र के लिए सुरक्षित रहेंगे, जब तक संस्था अपने पैरों पर खड़ी हो सके, इस योजना के लिए अब तक हमें निम्न-लिखित दानों की सूचना मिली है:—

सुप्रसिद्ध समाज-सेवी श्रद्धेय रामगोपाल जी मोहता ... ... १०,०००रु०

एक गुप्त दानी सज्जन, जो अपना नाम प्रकाशित नहीं कराना चाहते ... २,१०० रु०

'चाँद' सम्पादक श्री० सहगल जी ... १,१०० रु०

[वाचनालय के लिए ६०० रु० मूल्य की पुस्तकें और ५०१ रु० नक़द]

इसी प्रकार के हमें दो-चार और भी वचन मिले हैं, अतएव देशवासियों की इस असाधारण जाग्रति ने हमें एक बार फिर आशा का आलोक दिखा दिया है और हृदय की सारी सञ्चित शक्ति लगा कर भी हमने इस संस्था को चलाने की प्रतिज्ञा कर ली है। हमें पूर्ण आशा है, प्रत्येक विचारशील देशवासी यथाशक्ति दान भेज कर हमारे इस पवित्र अनुष्ठान को सफल करने में हमारा सहायक होगा। अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति १ पैसे से लाख रुपए तक इस प्रस्तावित संरक्षण-गृह के सहायतार्थ भेज सकता है। जिन लोगों का ५०० रु० अथवा इससे अधिक दान आएगा, उनके दान से संरक्षण गृह का एक कमरा बनवाया जायगा और उस पर दानी सज्जन अथवा देवी के नाम की पटरी लगाई जायगी। किसी अवसर पर दान देते समय अथवा शादी-विवाह के उत्सवों पर दानी सज्जनों को इस संस्था की ओर विशेष रूप से ध्यान देना चाहिए।

इस प्रस्तावित संरक्षण-गृह का नाम मातृ-मन्दिर रक्खा जायगा, और भवन-निर्माण के लिए जमुना नदी के उस पार एक बहुत रमणीक और विस्तृत स्थान लेने का प्रबन्ध हो रहा है। ज़मीन स्थानीय एग्रिकलचरल इन्स्टीट्यूट (Agricultural Institute) के समीप है। और इस संस्था के प्राण सुविख्यात अमेरिकन, मिस्टर हिग्गिनबॉटम (Mr. Sam Higginbottam) ने सपरिवार इस उद्योग में हमारी सहायता करने का वचन दिया है। प्रयाग की अनेक शिक्षित महिलाओं ने सब प्रकार संस्था की सहायता करने का विश्वास दिलाया है, अच्छे-अच्छे पुरुष तथा लेडी डॉक्टरों ने भी पूर्ण सहयोग का वचन दिया है। श्रीमती विद्यावती सहगल स्वयं 'मन्दिर' में रहने वाली महिलाओं की देख-भाल करेंगी और उन्हें शिक्षा देंगी। इस संस्था का उद्देश्य निम्न-लिखित होगा :—

उद्देश्य

(१) निर्धन, निराश्रय तथा असहाय महिलाओं और बच्चों की हर प्रकार की सहायता करना।

(२) ऐसी स्त्रियों को, जो सुमार्ग से विचलित होकर, काम के क्षणिक वेग के उन्माद में प्रवाहित होकर अपना सर्वनाश कर चुकी हों, सहायता प्रदान कर उनके जीवन को आदर्श और उपयोगी बनाना—चाहे वे समाज से ठुकराई जाकर वेश्या ही क्यों न हो गई हों।

(३) असहाय तथा अनाथ विधवाओं की सेवा (उपकार नहीं) करना।

(४) जो महिलाएँ कला-कौशल अथवा सङ्गीतादि सीखना चाहें, उन्हें यथाशक्ति सहायता करना।

(५) जो असहाय महिलाएँ पढ़ने की इच्छा रखती हों, किन्तु धनाभाव के कारण पढ़ न सकती हों, उनकी शिक्षा का प्रबन्ध करना।

(६) ऐसी स्त्रियों के साथ यदि बच्चे हों तो उनके खान-पान और शिक्षा का उचित प्रबन्ध करना।

(७) यदि कुमार्ग द्वारा उत्पन्न हुए बच्चे सड़क या पेड़ के नीचे पड़े हुए मिलें, जैसा प्रायः होता है, तो उन्हें लाकर उनका पालन-पोषण करना तथा उनकी शिक्षा का प्रबन्ध करना।

(८) जो महिलाएँ शिक्षा प्राप्त करने के बाद अथवा पहले ही विवाह करना चाहती हों और संस्था की सहायता चाहती हों, उनके लिए सुयोग्य वर का प्रबन्ध कर विवाह करा देना।

(९) गर्भवती स्त्रियों की विशेष रूप से सहायता करना, चाहे वे कुमारी हों अथवा विधवा। उनके प्रसव का समुचित और सुचारु रूप से प्रबन्ध करना और उनको सामाजिक लाञ्छनाओं से बचाना।

(१०) इस प्रकार उत्पन्न हुए बालकों की उचित देख-भाल, उनका लालन-पालन तथा शिक्षा आदि का समुचित प्रबन्ध करना।

हम इस अपील की ओर 'चाँद' के विशाल परिवार का ध्यान विशेष रूप से आकर्षित करना चाहते हैं और आशा है, २-३ मास के भीतर पूरे १ लाख रुपए एकत्र हो जायँगे, ताकि शीघ्र से शीघ्र 'मातृ-मन्दिर' की नींव डाली जा सके। दान अथवा वचन निम्न-लिखित पते पर भेजना चाहिए:—

श्रीरामरखसिंह सहगल, नियोजक 'मातृ-मन्दिर' २८, एल्गिन रोड, इलाहाबाद।

R. SAIGAL, Esq.,
Organiser, Matri Mandir,
28, Elgin Road, Allahabad.

रुपए मिलने पर यहाँ से छपी हुई रसीद दानी सज्जनों की सेवा में भेजी जायगी और प्रत्येक मास के 'चाँद' में दाताओं की नामावली भी धन्यवाद-सहित प्रकाशित होती रहेगी।

इस अपील की ओर हम देश के समस्त पत्र-पत्रिकाओं का ध्यान भी आकर्षित करना चाहते हैं और उनके सहयोग की आशा करते हैं।

* * *

फाँसी-अङ्क की फाँसी

फाँसी-अङ्क की ज़ब्ती का फ़तवा देकर प्रान्तीय सरकार ने 'चाँद' जैसी सामाजिक पत्रिका पर जो अनुचित प्रहार किया है, उसे देख कर हमें तथा 'चाँद' के विशाल परिवार को क्लेश का होना स्वाभाविक

ही है। आज अपनी दासता का हमें विशेष तथा प्रत्यक्ष अनुभव हुआ है और अपने गरेबान में मुँह डाल कर आज हम अपनी परवशता का बड़ा दारुण स्वरूप देख रहे हैं।

'चाँद' का फाँसी-अङ्क भारत से ब्रिटिश-शासन की जड़ खोदने के अभिप्रायः से प्रकाशित नहीं किया गया था और न इस प्रकाशन का उद्देश्य अङ्गरेज़ी साम्राज्य के विरुद्ध घृणोत्पादक भावों का प्रचार ही था। केवल सामाजिक दृष्टि से, इस उन्नति और विकास के युग में फाँसी की जङ्गली प्रथा के विरुद्ध आन्दोलन उठाना ही हमारा एकमात्र उद्देश्य था। हमने यथाशक्ति भिन्न-भिन्न प्रदेशों में प्रचलित प्राणदण्ड की अमानुषिक प्रथाओं की इस अङ्क में चर्चा की है। किसी भी जाति अथवा देश का पक्षपात नहीं किया है। इस समस्त अङ्क को बार-बार पढ़ने पर भी हमारी दृष्टि में एक भी पंक्ति आपत्तिजनक नहीं दिखाई दे रही है। एक गुरुतर अपराध अवश्य हुआ है, वह है फाँसी-अङ्क के परिशिष्ट भाग में मरे हुए विप्लव-कारियों की चर्चा करना! इन बेचारे मरे हुओं की चर्चा हमीं ने की हो, सो बात भी नहीं है, इन स्वर्गीय आत्माओं की संक्षिप्त चर्चा अनेक पत्र-पत्रिकाओं में हो चुकी है, जिसके प्रकाशन पर सरकार द्वारा कभी आपत्ति नहीं की गई। इन पृष्ठों के अतिरिक्त फाँसी-अङ्क को ज़ब्त करने का हमें कोई दूसरा कारण दिखाई नहीं दे रहा है। पर सरकार स्पष्ट बतलाती भी तो नहीं कि उसकी दृष्टि में किस अंश का प्रकाशन घृणोत्पादक समझा गया है?

यदि इस अङ्क के प्रकाशन द्वारा ब्रिटिश साम्राज्य का अस्तित्व ख़तरे में पड़ गया था और इस अङ्क को ज़ब्त करके ही भविष्य की शासन-प्रणाली को प्रान्तीय सरकार सुदृढ़ करना चाहती थी, तो उसके ऐसा करने को हम पराधीन रोक नहीं सकते थे, पर फिर भी हमें न्याया-नुकूल कार्यवाही की आशा थी, वह भी नहीं हुई। ज़ब्ती का संक्षिप्त ब्योरा इस प्रकार है :—

फाँसी-अङ्क में पृष्ठ-संख्या बहुत अधिक होने के कारण इसके प्रकाशन में इस बार असाधारण देरी हो गई थी। १ ली नवम्बर को प्रकाशित न होकर, यह अङ्क प्रकाशित हो सका ११ वीं नवम्बर को। चूँकि दिवाली के कारण डाकख़ाना १२ तारीख़ को बन्द हो रहा था, इसलिए एक सप्ताह तक रात-दिन कार्य करके हमने १२वीं नवम्बर की डाक से अन्तिम कॉपी रवाना कर देने का निश्चय कर लिया था और हुआ भी ऐसा ही। १४ वीं नवम्बर को प्रातःकाल ६ बजे के क़रीब शहर-कोतवाली का एक सिपाही घबड़ाया हुआ आया और 'चाँद' के फाँसी-अङ्क की एक प्रति माँगने लगा। पूछा गया, क्या करोगे? उत्तर मिला, कोतवाल साहब माँग रहे हैं, कप्तान साहब इन्तज़ार में बैठे हैं, देख कर लौटा देंगे। उससे कहा गया, लिखा कर लाओ तब कॉपी मिल सकती है। १६ नवम्बर को दूसरा सिपाही ख़ुफ़िया पुलिस के किसी दारोग़ा साहब का एक पत्र लाया, जिसकी नक़ल नीचे दी जा रही है :—

O. H. M. S.

Dear Mr. Saigal,

I will be highly oblige (obliged?) if you will send your magazine (Chand on *Phansi*) for a short time. It will be returned after a short time.

Yours truly,
(Sd.) Jai Narain Singh,
S. I., D. I. S.
16th November, 1928.

फाँसी-अङ्क की एक प्रति दे दी गई, हालाँकि दो कॉपियाँ सरकारी रिपोर्टर को सदा की भाँति भेजी जा चुकी थीं। हम निश्चिन्त थे, हमारी यह कल्पना भी नहीं हो सकती थी कि "मियाँ की जूती और मियाँ का चाँद" वाली कहावत चरितार्थ की जायगी (मुफ़्त 'चाँद' न देकर, दारोग़ा साहब से २) वसूल किए जा सकते थे) इसके ५-६ रोज़ के बाद चारों ओर हल्ला सुनाई पड़ रहा था कि 'चाँद' का फाँसी-अङ्क ज़ब्त हो गया! हमारे पास लोग पत्र लिखते, टेलीफ़ोन करते और स्वयं आकर कुशल-समाचार पूछते। १६ वीं दिसम्बर तक यही क्रम जारी रहा और फाँसी-अङ्क की कॉपियाँ बराबर रवाना होती रहीं, हालाँकि ज़ब्ती की आज्ञा १० दिसम्बर को निकल चुकी थी। समस्त भारत के डाकख़ाने में सरकारी आज्ञा-पत्र भेजा जा चुका था कि 'चाँद' का फाँसी-अङ्क जहाँ भी मिले; सी० आई० डी० के बड़े दफ़्तर शिमला भेज दिया जाय—पर हमें आज यह पंक्तियाँ लिखते समय (२०-१-२६) तक कोई व्यक्तिगत सूचना नहीं मिली है। १६ दिसम्बर को एक मित्र प्रातःकाल आए,

उन्होंने कहा कि १५ दिसम्बर के सरकारी गज़ट में फाँसी-अङ्क की ज़ब्ती की आज्ञा प्रकाशित हो चुकी है, मँगा कर देख लीजिए। उसी समय गवर्नमेण्ट प्रेस आदमी भेज कर गज़ट मँगाया गया । पढ़ कर हम स्तम्भित रह गए। अफ़वाह ठीक थी। उसमें छपा था—

December 10, 1928.

No. 3774/VIII-100—In exercise of the power conferred by section 99/A of the Code of Criminal Procedure, 1898 (Act V of 1898), the Governor in Council hereby declares to be forfeited to His Majesty *every copy* of the special *Phansi Ank* (Capital punishment number) of the Hindi CHAND magazine issued in November 1928, edited by Sri Chatur Sen Shastri and printed and published by R. Saigal at the Fine Art Printing Cottage, 28, Elgin Road, Allahabad, on the ground that the said number contains matter, the publication of which is punishable under section 124/A of the Indian Penal Code.

अब प्रश्न यह है कि हर एक व्यक्ति नियमित रूप से सरकारी गज़ट नहीं पढ़ता, हमारा भी न पढ़ना स्वाभाविक था। गज़ट १५ तारीख़ को प्रकाशित हो चुका था, किन्तु फाँसी-अङ्क की कॉपियाँ १६ तारीख़ तक बराबर भेजी जा रही थीं। क़ानून की अनभिज्ञता क्षम्य नहीं है (Ignorance of law is no excuse)। यह हमारा सौभाग्य था कि ऐसा नहीं हुआ, किन्तु यदि पुलिस चाहती तो ज़ब्त किए हुए साहित्य के प्रचार करने का अभियोग चला कर हमें दण्ड दिला सकती थी। वास्तव में कैसा अन्धेर है; आधी दुनिया जान ले कि 'चाँद' ज़ब्त हो गया, लेकिन उसके प्रवर्तकों को पता ही न दिया जाय! हमें यदि सामयिक सूचना मिल गई होती तो वृथा डाक-व्यय में हमारी आर्थिक हानि न होती और न ग्राहकों को असुविधा ही। जिन ग्राहकों की कॉपियाँ डाकख़ानों से ही उड़ा ली गई थीं, उनसे हमें वृथा लिखा-पढ़ी भी न करनी पड़ती। सैकड़ों ग्राहक लिख रहे थे, उन्हें फाँसी-अङ्क नहीं मिला। यहाँ से जाँच कर लिखा जाता कि अमुक तारीख़ को ठीक तौर से देख भाल कर रवाना किया जा चुका है, डाकख़ाने को शिकायत कीजिए। अस्तु—

फाँसी-अङ्क की १० हज़ार प्रतियों में से हमारे यहाँ वापसी आने वाली केवल ४० प्रतियाँ शेष बची थीं, जिसे सरकारी गज़ट पढ़ते ही हमने कलक्टर साहब के पास तुरन्त भेजकर अपने औचित्य का पालन किया और प्रान्तीय सरकार के चीफ़ सेक्रेटरी की सेवा में २२ दिसम्बर के अपने पत्र में अपनी नीयत (Intention) की सफ़ाई देते हुए हमने पूछा कि आख़िर फाँसी-अङ्क के किस अंश पर आपत्ति की गई है, ताकि उस प्रकार का साहित्य भविष्य में 'चाँद' में न छापा जाय। हमारे पत्र की नक़ल यह है:—

The Chief Secretary to
Government U. P.
Lucknow

December, 22nd. 1928.

Sir,

I was shocked at the perusal of Notification No. 3774/VIII-100 of December 10th appeared in the U. P. Gazette dated 15th. in which the Governor in Council has been pleased to forfeit copies of Special *Phansi Ank* of the Chand (November issue, edited by Prof. Chatur Sen Shastri of Delhi).

The magazine was brought into existence in the year 1922 and since then it has worthily served the society. The only object of the magazine being the betterment of society and uplift of Indian Women. The magazine is mostly subscribed by educated people of thought and is highly spoken of by the readers, public and Government officials alike. I take the liberty of presenting you a booklet entitled "Responsible Opinions." This will give an idea of what the magazine stands for.

The question of the elimination of the death-penalty has been agitating the minds of the Western Jurists for so long. They rightly claim that the punishment for a murder should not be a legalized killing. The society in its present stage of evolution does not favour the principle of eye for eye and tooth for tooth, on which the system of death-penalty is based. These are my confirmed

views that prompted me to bring out a Special Number on this most important topic of the day. In short, my object was purely humanitarian and not to spread disaffection against His Majety's Government, I am charged with.

Words fail me to express, how damaging I feel when I see that the forfeiture of my magazine is claimed under Section 124/A I never thought of and how anxious I am to vindicate my position in the eyes of the Government.

If you have time I would beg you to go through the issue and see for yourself how grave injustice is done to me by the local police. In the issue you will find that atrocities committed by any community—irrespective of color, caste or creed has been codemned on authentic grounds. The magazine begins with the pathetic account of the Christ. The history of French Revolution is amply traced. The trial of Charles not excepted. The killing of Jone of Arc is recalled. Atrocities of the Indian Mutiny of 1857 is vehemently condemned and assassination of President Lincoln is given full of pathos. In the end short account is given of some misguided Indians who were done to death by the Government for their revolutionary activities, which was only a collection from Newspapers and periodicals which were never objected to by the Government. This is the long and short of the whole issue. I have re-read the whole number, immediately after seeing the order and to me nothing appears to be so serious as to justify the action of the local Police. I shall thank you so much, if you be so good as to inform me what particular portion is taken exception to, so that the publication of such contributions may be particularly avoided in future.

In the end, I assure you once more that as a creed I am as loyal to the Crown as anybody could claim to be. At times, unfortunately so often in the present political atmosphere, that as a Journalist one has to comment against particular action of the Government but that does not mean that he, at a time cannot be loyal and true to his Journalistic profession. This is what I mean by representing my case to you and hope you will do me Justice.

I have the honour to be
Sir,
Your most obedient servant,
(Sd.) R. SAIGAL.

हमने इस पत्र की एक नक़ल प्रान्तीय गवरनर के प्राइवेट सेक्रेटरी की सेवा में भी भेज कर प्रार्थना की थी कि यह पेशगी भेजी हुई कॉपी गवरनर महोदय के सामने रख दी जाय, जिसका उत्तर हमें १ली जनवरी के पत्र में यह मिला कि विचार हो रहा है, और चीफ़ सेक्रेटरी आपको सरकारी निर्णय की सूचना देंगे। अस्तु—

हमने प्रान्तीय सरकार के चीफ़ सेक्रेटरी महोदय से ख़ास तौर से प्रार्थना की थी कि वे इस अङ्क को आदि से अन्त तक पढ़ लेने की अवश्य कृपा करें, क्योंकि कुछ भी हो, कुँवर जगदीशप्रसाद जी भारतीय थे, हिन्दी जानते ही होंगे—केवल यही समझ कर हमने यह अनुरोध करने की धृष्टता की थी, क्योंकि निम्न श्रेणी के पुलिस-कर्मचारियों की योग्यता में हमें सदा सन्देह रहा है। इसका कारण है। इन्हीं दिनों में ख़ुफ़िया पुलिस के कई दारोग़ाओं ने अपने चरण-रज से कार्यालय को पवित्र किया था। एक दारोग़ा साहब की योग्यता का नमूना भी दे देना अप्रासङ्गिक न होगा। वे कार्यालय के मैनेजर महोदय के टेबुल पर बैठे थे। मेज़ पर एक कॉपी "आदर्श चित्रावली" की पड़ी थी, उसमें अनेक कविताएँ भी थीं, आपने उन्हें बड़े ग़ौर से पढ़ा और बोले—"वास्तव में आपका 'चाँद' बहुत सुन्दर निकलता है, चित्र भी इतने अधिक निकलते हैं। आपको तो बड़ा ख़र्च करना पड़ता होगा! छपाई बहुत साफ़ होती है।" शायद बतलाना न होगा, दारोग़ा साहब ने इस चित्रावली को ही 'चाँद' समझ लिया था, उनका यह भ्रम दूर करने पर बेचारे बड़े लज्जित हुए। इस घटना से हमें केवल यह दिखाना है कि इसी प्रकार के बहुत से जाहिल आज हमारे भाग्य-विधाता बना दिए गए हैं। जो लोग 'चाँद' तथा 'चित्रावली' में भेद नहीं समझ सकते वे साहित्यिक

लेखों को कितना समझ सकते होंगे, इसका सहज ही में अनुमान लगाया जा सकता है। एक दारोग़ा साहब ने, हमें विश्वस्त सूत्र से पता लगा है, अपनी रिपोर्ट में लिखा था "Its very name is objectionable" अर्थात् इस विशेषाङ्क का नाम (फाँसी-अङ्क) ही आपत्तिजनक है। इन्हीं भाग्य-विधाताओं के डर से हमने चीफ़ सेक्रेटरी महोदय से इस अङ्क को आद्योपान्त पढ़ने की प्रार्थना की थी, पर उन्हें इतनी हमदर्दी क्यों होने लगी। मन्त्री महोदय का वही टकसाली उत्तर आया है, जिसकी नक़ल नीचे दी जा रही है :—

No. 29-Z.

From

KUNWAR JAGDISH PRASAD,
C. I. E., O. B. E., I. C. S.,
Chief Secretary to Government,
United Provinces.

To

R. SAIGAL SAHIB (?)
Printer and Publisher of the
"Chand" Magazine,
Allahabad.

Dated, Lucknow the January 10, 1929.

Sir,

With reference to your letter, dated December 22, 1928, regarding the proscription of the Special *Phansi Ank* issue of the Chand magazine, I am directed to say that the grounds on which this issue of the magazine was proscribed are stated in notification No. 2774/VIII-100, dated December 10, 1828, and that Government have nothing further to add.

Department Police.

I have the honour to be,
Sir,
Your most obedient servant,
(Sd.) JAGDISH PRASAD,
Chief Secretary.

इधर हमसे प्रान्तीय सरकार से यह लिखा-पढ़ी हो ही रही थी; इस बीच में प्रयाग के एक दूसरे ख़ुफ़िया पुलिस के दारोग़ा साहब का पत्र हमें मिला, जिसमें उन्होंने अलीगढ़ ज़िले के 'चाँद' के ग्राहकों की सूची हमसे माँगी थी। पत्र में कहा गया था कि अलीगढ़ के डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रेट को इसकी ज़रूरत है। पत्र की नक़ल यह है :—

To

Mr. R. Saigal,
Chand Press,
28, Elgin Road,
Allahabad.

Dear Sir,

Will you please give me a list of your subscribers in Aligarh District. The District Magistrate of Aligarh wants it.

Yours Sincerely,
(Sd.) Surendra Nath Mukerjea,
S. I., D. I. S.,

Allahabad
23-12-28.

हमारे क्षोभ की सीमा न रही। इस पत्र के उत्तर में हमने ग्राहकों के पते देने से साफ़ इन्कार कर दिया। हमने जो उत्तर दिया था, उसकी नक़ल भी नीचे दी जा रही है।

Dec. 24th.

Dear Sir,

I have your letter of yesterday's date. You know what addresses mean to a Newspaper; and as such—on business principles, I am sorry I do not see my way to comply with your request.

Yours truly,
(Sd.) R. Saigal.

Mr. S. N. Mukerjea,
S. I., D. I. S.
Allahabad.

पुलिस के साधारण कर्मचारियों के इस छिछोरेपन को उत्साहित करना हमने उचित नहीं समझा। इन पंक्तियों के लेखक ने २४ दिसम्बर को ख़ुफ़िया पुलिस के डिप्टी डाइरेक्टर जनरल (Deputy Director General of the Criminal Investigation Deptt.) से भेंट की। आप बहुत शराफ़त से पेश आए और इन अनुचित कार्यवाहियों के विरुद्ध आपने बड़ा रोष प्रकट किया। उन्होंने कहा कि पुलिस का कोई भी कर्मचारी आप से पते माँगने की जुर्रत नहीं कर सकता। मैं इस बात की

पूरी-पूरी जाँच ही नहीं करूँगा, बल्कि जो कुछ भी कर सकता हूँ, करूँगा।

उनसे फाँसी-अङ्क के ज़ब्त होने के सम्बन्ध में और भी अनेक बातें हुईं, जिनका यहाँ प्रकाशन करना साधारण-शिष्टाचार के विरुद्ध समझ कर हम उन्हें नहीं देना चाहते। उन्होंने शहर-कोतवाल से पूछ-ताछ की और इस सम्बन्ध का फ़ाइल मँगाने की आज्ञा भी दी। कोतवाल साहब तथा अन्य पुलिस-कर्मचारियों से उनकी क्या बातचीत हुई, इसका तो हमें पता नहीं, किन्तु दूसरे रोज़ शहर के कोतवाल साहब हमारे यहाँ माफ़ी माँगने के लिए तशरीफ़ लाए और इन सारी कार्यवाहियों पर उन्होंने बहुत खेद प्रकट किया। उनका कहना था कि "मुझे आज तक इन दारोग़ाओं की इन अनुचित हरकतों का ज़रा भी पता नहीं था और न मैंने कभी 'चाँद' ही मँगाया था। मुझे आज तक इस बात का इल्म ही नहीं है कि 'चाँद' की शिकायत किसने की और वह ज़ब्त कैसे हो गया!" हमें इस बात का भी विश्वास दिलाया गया कि "भविष्य में इस प्रकार की मूर्खताएँ कदापि न होने पाएँगी और पुलिस के जिन कर्मचारियों ने इस प्रकार वृथा आपको कष्ट दिया है, उनकी भरपूर तम्बीह की जायगी।" किन्तु अब एक नया गुल खिला है, पिछले १५ दिनों से हमारी सारी डाक—बाहर से आने वाली तथा यहाँ से जाने वाली—दोनों ही सेन्सर (Censor) हो रही हैं—(खोल कर देखी जाती हैं)। कोतवाल साहब से, जो डिप्टी सुपरिन्टेन्डेण्ट पुलिस भी हैं और जिनके अधीन शहर तथा सिविल लाईन दोनों हल्क़े हैं, पूछा गया। आप फ़र्माते हैं कि उन्हें इस बात का ज़रा भी इल्म नहीं है, शायद ख़ुफ़िया पुलिस के विशेष विभाग (Special Branch of the C.I.D.) की ओर से ऐसा होता हो। इस अन्धेर का भी कोई ठिकाना है! 'बड़े सो बड़े, छोटे मियाँ सुभान अल्लाह' वाली कहावत अक्षरशः चरितार्थ हो रही है। बड़े हाकिमों को पता भी नहीं और साधारण कर्मचारी अपनी मनमानी कार्यवाही कर ब्रिटिश शासन-पद्धति को इस प्रकार कलङ्कित कर रहे हैं!

हमने प्रान्तीय सरकार के चीफ़ सेक्रेटरी महोदय की सेवा में जो सफ़ाई पेश की है और जिसकी नक़ल ऊपर दी जा चुकी है, उससे अधिक हमें कुछ भी नहीं कहना है। यदि सरकारी कोष में अन्याय के विरोध का ही दूसरा नाम अराजकता अथवा सरकार के विरुद्ध घृणोत्पादक भावों का प्रसार समझा जाता है, तो हम हृदय की समस्त शक्ति से किसी भी प्रकार के दण्ड का स्वागत करते हैं और परमात्मा से प्रार्थना करते हैं कि वह सर्वशक्तिमान हममें इतना साहस दे कि हम दृढ़तापूर्वक सदैव अन्याय का विरोध करते रहें। रही, पुलिस की हम पर विशेष कृपा-दृष्टि की बात, सो उसकी भी हमें चिन्ता नहीं है। जब भारतीय सरकार के भूतपूर्व क़ानूनी सदस्य (Law member) डॉक्टर सर तेजबहादुर सप्रू जैसे राज-भक्त व्यक्ति का नाम पुलिस की डायरी में अङ्कित हो सकता है; जबकि इसी प्रान्त के भूतपूर्व गवर्नर सर हारकोर्ट बटलर के अभिन्न मित्र महाराजा महमूदाबाद और भूतपूर्व अस्थायी गवर्नर—छत्तारी के नवाब साहब जैसे राज-भक्तों पर पुलिस की कृपा-दृष्टि रह सकती है तो हमारी हस्ती ही क्या है? इन प्रतिष्ठित व्यक्तियों की श्रेणी में अपना नाम देख कर हमें भी क्षणिक गर्व का होना स्वाभाविक ही है और इसे हम अपना सौभाग्य समझते हैं।

* * *

अखिल भारतीय सामाजिक परिषद्

पिछले ४० वर्षों से राष्ट्रीय कॉङ्ग्रेस-सप्ताह में ही अखिल भारतवर्षीय सामाजिक कॉन्फ्रेन्स का अधिवेशन होता आया है। इस बार भी ४१वीं बैठक कलकत्ते में बड़े समारोह से सम्पन्न हुई। सदा की भाँति सभी सामाजिक प्रश्नों पर विचार और प्रस्ताव पास किए गए। इस बार यह अधिवेशन बड़ी व्यवस्थापिका सभा के प्रभावशाली सदस्य श्री० मुकुन्दराव जयकर के सभापतित्व में हुआ था। सामाजिक सुधार के मामले में आपने अङ्गरेज़ी सरकार की उदासीनता पर बड़ा खेद और रोष प्रकट किया। आपने ठीक ही कहा कि एक तो भारतीय सरकार समाज-सुधार सम्बन्धी क़ानूनों के पास कराने में देश को किसी प्रकार की सहायता नहीं देती; उल्टे कभी-कभी अनुचित अड़चनें उपस्थित कर देती है, जिससे देशवासियों का किया-कराया सारा प्रयत्न निष्फल हो जाता है। सरकार प्रायः रूढ़ियों के उपासकों की

पीठ ठोक कर उन्हें और भी उद्दण्ड कर देती है, यही कारण है कि हमारे देश में समाज-सुधार का कार्य इतनी मन्द गति से हो रहा है। किन्तु जयकर महोदय की यह शिकायत नई नहीं है। गत वर्ष के सभापति श्री० के० नटरञ्जन (सम्पादक इण्डियन सोशल रिफ़ॉर्मर) का भी ठीक यही कहना था। भिन्नता यह थी कि श्री० नटरञ्जन की राय में बिना स्वराज्य प्राप्त हुए सामाजिक सुधार हो ही नहीं सकता। आपकी इस धारणा से हमारा घोर मतभेद है। हमारा तो निश्चित-विश्वास है कि आज हम इतने निर्बल, अकर्मण्य, अपरिवर्तनशील तथा स्थितिपालक हैं कि यदि स्वराज्य मिल भी जाय, जिसकी बहुत कम सम्भावना है, तब भी हम उसका उपभोग नहीं कर सकते, उसे अधिक दिनों तक अपनी वर्तमान रूढ़ियों के अन्तराल में सुरक्षित नहीं रख सकते! रही सरकार की बात, सो उससे—एक हृदयहीन विदेशी सरकार से—किसी प्रकार के सुधार की आशा करना पत्थर से पानी निकालने के समान दुराशा मात्र है। शासित प्रजा जितनी ही कमज़ोर होगी उतना ही शासन सुदृढ़ रहेगा। प्रजा का शक्तिशाली और शासक का निर्बल होना—राजनैतिक कोष में एक ही अर्थ रखता है। अस्तु—

जयकर महोदय ने, इस बार अपने भाषण में एक बात अवश्य मार्के की कही है, वह यह कि स्त्रियों के उत्तराधिकार, पति के चुनाव तथा तलाक़ आदि विषयों में क़ानून द्वारा उन्हें वही अधिकार मिलने चाहिएँ जो अन्यान्य देशों की स्त्रियों को मिले हैं। यह बात सुनकर पुरानी टकसाल के लोग अवश्य नाक-भौं सिकोड़ेंगे, पर समय का प्रवाह बड़े वेग से गतिशील है और स्त्रियों की जाग्रति की गति यदि इसी प्रकार जारी रही तो क़ानून-निर्माताओं को इस विषय पर गम्भीरतापूर्वक विचार करना ही होगा।

सामाजिक सुधारों के अर्थ की विवेचना करते हुए आपने इसकी जो व्याख्या की, वह अवश्य आपके सारे व्याख्यान का एक महत्वपूर्ण पहलू है। आपने कहा कि सामाजिक सुधारों का अर्थ केवल कुरीतियों को दूर करना ही न समझना चाहिए, बल्कि इसे समाज में सुख, स्वास्थ्य एवं आनन्द की वृद्धि का एक सामूहिक आन्दोलन समझना चाहिए। आपके शब्द थे :—

"... Every form of Social activity calculated to promote the health, comfort and happiness of Society ... " सुधारों को सङ्कीर्णता की दृष्टि से न देख कर, उनका क्षेत्र जयकर महोदय ने विशेष विस्तृत कर दिया है, इसमें ज़रा भी सन्देह नहीं।

सभापति महोदय के महत्वपूर्ण भाषण के अतिरिक्त अनेक सुधारकों के बड़े सारगर्भित व्याख्यान हुए। इस परिमित स्थान पर उन सभों का उल्लेख करना हमारे लिए सम्भव नहीं है। समय-समय पर हम इन व्याख्यानों तथा प्रस्तावों पर प्रकाश डालने का प्रयत्न करेंगे। इस स्थान पर हम केवल ख़ास-ख़ास बातों की ही चर्चा करना चाहते हैं। अस्तु—

इस बार की सामाजिक परिषद् में आचार्य सर पी० सी० राय ने इस आशय का एक प्रस्ताव पेश किया कि जातिभेद की जड़ मिटाने के लिए सहभोज तथा भिन्न-भिन्न जातियों में असवर्ण विवाह की प्रथा को प्रोत्साहित किया जाय और छुआछूत सम्बन्धी प्रत्येक ढकोसले को समाज से निकाल दिया जाय, इसी में देश का कल्याण है। सुप्रसिद्ध समाज-सेविका श्रीमती कमला-देवी चट्टोपाध्याय ने इन प्रस्तावों का बड़े ज़ोरों से समर्थन करते हुए कहा कि सहभोजिता और अन्तर्जातीय विवाहों द्वारा हमारे राष्ट्रीय सङ्गठन में बहुत बड़ी शक्ति आ जायगी। यह बिलकुल सत्य है और इसमें मतभेद नहीं हो सकता, किन्तु क्या साल में एक बार केवल प्रस्ताव पास कर देने से ही यह जटिल प्रश्न हल हो जायगा? इसके लिए तो शिक्षा, प्रचार तथा एक सङ्गठित आन्दोलन की आवश्यकता है। पहले एक जाति में तो भेद-भाव मिट ले, एक जाति से उपजातियों का ढकोसला तो दूर हो ले, फिर कहीं ऐसे क्रान्तिकारी सुधार सम्भव हैं!

एक अङ्गरेज़ पादरी हर्बर्ट एण्डरसन (Rev. Herbert Anderson) महोदय ने एक बड़ा महत्वपूर्ण प्रस्ताव मादक पदार्थों के विरुद्ध पेश किया और मादक द्रव्यों की हानियाँ बतलाते हुए आपने इस बात पर बड़ा ज़ोर दिया कि अमेरिका की भाँति भारत-सरकार को भी शराब तथा अन्यान्य मादक पदार्थों के प्रचार को रोकने का शीघ्र प्रयत्न करना चाहिए। आपने शराब सम्बन्धी हानियाँ बतलाते हुए कहा कि शराब निकृष्ट श्रेणी का आहार द्वितीय श्रेणी की औषध और प्रथम श्रेणी का विष है

"It is a third rate food, second rate drug, and a first rate poison. . . ."

लेकिन पादरी महोदय शायद यह बात भूल गए कि अमेरिकन और ब्रिटिश राज्य में अन्तर कितना है? वहाँ का राज्य प्रजातन्त्र है और भारत एक गुलाम देश है। यहाँ की सरकार, जिसकी आमदनी का १३वाँ हिस्सा मादक वस्तुओं के प्रचार से है, कैसे प्रजा की बेहतरी के लिए इतनी भारी आमदनी का परित्याग कर देगी? ख़ास कर ऐसी स्थिति में, जब वर्तमान सरकार इस जाति की नहीं, इस देश की नहीं—सात समुद्र लाँघ कर व्यापार की नीति को सामने रख कर शासन करने आई हो!

* * *

कलकत्ते की अखिल भारतीय महिला कॉन्फ़्रेन्स

दिसम्बर का अन्तिम तथा जनवरी का प्रथम सप्ताह केवल कॉन्फ़्रेन्सों का ही सप्ताह था। इन्हीं दिनों महिलाओं की दो महत्वपूर्ण अखिल भारतीय कॉन्फ़्रेन्सें हुईं। एक तो थी समाज-सुधार सम्बन्धी, जो कलकत्ते में कॉङ्ग्रेस के साथ हुई और जिसकी सभापति थीं ट्रावनकोर की जूनियर महारानी पार्वती बाई। भारतीय रियासतों में स्त्रियों के सुधार तथा उन्नति की दृष्टि से कोचीन और ट्रावनकोर की रियासतें बहुत आगे बढ़ी हुई हैं। अतएव यह सर्वथा उचित ही था कि वहाँ की महारानी इस सभा की नेत्री बनाई जातीं। स्वागत-कारिणी समिति की सभापति थीं मयूरगञ्ज की महारानी साहिबा। देश भर की १००० से अधिक सुशिक्षित महिलाओं ने इसमें भाग लिया; यों तो सब मिला कर कई हज़ार स्त्रियाँ इसमें सम्मिलित थीं और हर्ष का विषय है कि आज तक किसी अन्य महिला-सभा में स्त्रियों की संख्या इतनी अधिक नहीं थी, जितनी इस बार!

मयूरभञ्ज की महारानी साहिबा ने स्वागत करते हुए सबका ध्यान भारतवर्ष के प्राचीन स्त्री-जीवन के आदर्श की ओर आकर्षित किया और कहा कि महिला-सङ्गठन के लिए देश भर में बहुत सी निस्स्वार्थ बहिनों की आवश्यकता है जो तन-मन-धन से स्त्री-समाज के उद्धार के लिए कटिबद्ध हो जायँ।

सभानेत्री ने अपने भाषण में सामाजिक कुरीतियों का विवरण देते हुए कहा कि हिन्दू-धर्म में स्त्रियों का अधिकार बहुत सङ्कुचित हो गया है, विशेष कर उत्तराधिकार सम्बन्धी स्वत्व तो उनसे छीन ही लिए गए हैं। बेचारी कितनी बहिनें, जो सहस्त्रों की जायदाद की अधिकारिणी हो सकती हैं, आज दाने-दाने को तरस रही हैं। हमसे अधिक उदारता तो मुसलमानों ने अपनी स्त्रियों के प्रति दिखलाई है और यद्यपि इस्लाम में आजकल पर्दे की बड़ी धाक है, इसके लिए न तो क़ुरान ही आज्ञा देता है और न हज़रत मुहम्मद का ही यह उद्देश्य था। यही बात बहु-विवाह के लिए भी ठीक है, जिसकी संख्या मुहम्मद साहब ने चार तक परिमित रक्खी है, इसका कारण आपने यह बतलाया कि शायद मुहम्मद साहब के पहले एक पुरुष बहुत सी स्त्रियों के साथ विवाह कर सकता था। उसे घटा कर उन्होंने अधिक से अधिक चार तक की सीमा बाँध दी।

वैदिक समय की स्त्रियों की दशा का वर्णन करते हुए आपने बतलाया कि उस समय तो वे पुरुषों के साथ-साथ बराबर सभी कार्यों में भाग लेती थीं—मन्त्रों के लिखने, यज्ञों में उन्हें पढ़ने और पुस्तकों की रचना करने में भी उनका बहुत हाथ रहता था। ऐसी ही स्त्रियों के होते हुए तो अङ्गरेज़ी विद्वान् ने कहा था कि "Paradise lies round the feet of mothers" अर्थात् सच्चा स्वर्ग माताओं के चरणों में विराजता है। परन्तु इसके प्रतिकूल पर्दे के कारण आजकल तो उनकी मानसिक, शारीरिक एवं सामाजिक दशा बहुत ही गिरी हुई है। इसकी अड़चन न तो उन्हें ठीक तौर से अपनी पारिवारिक स्थिति सँभालने देती है और न समय पड़ने पर खेती-बारी अथवा अपनी जायदाद का सञ्चालन ही पर्दानशीन औरतें सुचारु रूप से कर सकती हैं। इन अधिकारों के लिए स्त्रियों को समाज से लड़ना पड़ेगा, जैसे यूरोप में उन्हें अपने स्वत्वों के लिए सैकड़ों वर्ष सङ्घर्ष करना पड़ा है। रही पुरुषों की बात, उनके विषय में आपने ठीक ही कहा कि सभाओं में प्रस्ताव पास करते समय तो वे गला फाड़-फाड़ कर कमाल का जोश प्रगट करते हैं, पर जहाँ वास्तविक कार्य करने का समय आता है, ये सिट-

पिटा जाते हैं। विश्वासों को कार्य में परिणत करने की शक्ति ही तो अपने समाज में नहीं है, जिसके कारण हम लोग अभो इतने पीछे पड़े हुए हैं। पर इसमें केवल पुरुषों का ही दोष नहीं, स्त्रियों का भी उतना ही उत्तरदायित्व है। उन्हें जनता की सम्मति को—बहुमत को—अपने पक्ष में करना है और यह सिद्ध कर दिखाना है कि प्रत्येक क्षेत्र में हम लोग वैसा ही कार्य कर सकती हैं, जैसा हमारी पाश्चात्य बहिनें यूरोप तथा अमेरिका में करती हैं।

पर्दा, विधवा-विवाह, बाल-विवाह आदि प्रश्नों पर कई आवश्यक प्रस्ताव पास हुए, पर सबसे अनोखी बात यह थी कि पर्दा वाले प्रस्ताव के समय बहुत सी पर्दानशीन स्त्रियाँ भी थीं, जिनके कारण प्रेस के प्रतिनिधियों को स्वयं पर्दे में ही बैठना पड़ा था ! यह देख कर तो अचानक वही कहावत स्मरण हो आती थी कि घर में दीया जला के फिर मस्जिद में जलाया जाता है। जिस कॉन्फ्रेन्स में पर्दे के हटाने का प्रस्ताव पास हो, उसमें ही यदि इस तरह पर्दा किया जायगा तो परमात्मा ही जानता है कि कब तक पर्दे का पर्दा फाड़ा जा सकेगा।

* * *

अखिल भारतीय महिला-शिक्षा-कॉन्फ़्रेन्स

शिक्षा-सम्बन्धी दूसरी कॉन्फ़्रेन्स जो पटने में हुई उसकी अध्यक्षा थीं श्रीमती ललितकुमारी जी, महारानी मण्डी। आपका भाषण बड़ा सारगर्भित तथा विद्वत्तापूर्ण था। पहले तो आपने पाश्चात्य देशों से तुलना करते हुए भारतीय स्त्रियों की भीषण निरक्षरता दिखलाई और कहा कि गत दस वर्षों में सैकड़ा पीछे १ से भी कम स्त्रियों की संख्या पढ़ने-लिखने में बढ़ सकी है। इस हिसाब से तो देश भर की स्त्रियों को केवल पढ़ना-लिखना जानने के लिए सैकड़ों वर्ष लग जायँगे। अतएव इसके लिए जैसा कि कृषि-सुधार वाले रॉयल-कमीशन की सम्मति है, हमें अनिवार्य-शिक्षा (Compulsory Education) की शरण लेनी होगी। इतना ही नहीं, स्त्री-पुरुषों में समानता और उनके अधिकारों में भी हर प्रकार की समता की आवश्यकता इसके लिए परमावश्यक है। इसके अतिरिक्त प्रचलित शिक्षा-पद्धति में भी अनेक परिवर्त्तनों की आवश्यकता है, क्योंकि बालकों तथा बालिकाओं के लिए दो भिन्न-भिन्न प्रणालियों का आश्रय लेना पड़ेगा।

इस सम्बन्ध में आपने बड़े-बड़े पाश्चात्य लेखकों की पुस्तकों के उद्धरण देकर यह सिद्ध किया कि स्त्रियों में अब उच्च शिक्षा प्राप्त करने की इच्छा स्वयं जाग्रत हो उठी है, जिसकी तृप्ति करना समाज तथा सरकार का परम कर्त्तव्य है। अधिकारों की समानता के लिए आपने बौद्धकालीन अनेक उदाहरण दिए, जिनमें स्त्री-पुरुष, भिक्षु-भिक्षुकाओं को एक ही स्वत्व प्राप्त थे, क्योंकि भारतवर्ष के लिए यह कोई नई बात नहीं थी। इसके उपरान्त आपने समाज-सुधार सम्बन्धी और बहुत सी साधारण बातें बतलाईं, जो ऐसे अवसरों पर प्रायः कही जाती हैं और जिनका उल्लेख हम 'चाँद' में कई बार कर चुके हैं।

तदनन्तर अनेक प्रस्ताव पास हुए, जिनमें से दो-तीन मुख्य थे। एक तो था प्रोफ़ेसर करवे के पूना वाले सेवा-सदन की तरह की और ऐसी ही संस्थाओं की स्थापना के विषय में। सचमुच प्रोफ़ेसर करवे की यह अनुपम संस्था स्त्री-समाज की उपयोगिता के लिए बहुत-कुछ कर रही है और इस प्रकार के जितने ही और आश्रम खोले जायँ उतना ही देश का कल्याण होगा। इस सम्बन्ध में पाठकों को यह जानकर हर्ष होगा कि हम यहाँ (प्रयाग में) भी इस तरह का एक संरक्षण-गृह (Rescue Home) स्थापित करने का प्रयत्न कर रहे हैं। यदि लक्ष्मी के सुपुत्रों ने इसके लिए सहायता की तो शीघ्र ही हमारे प्रयत्न सफल होंगे। दूसरा प्रस्ताव इस विषय का था कि भविष्य में यह कॉन्फ़्रेन्स अपना अधिकांश ध्यान महिला-संसार के सामाजिक सुधार तथा शिक्षा की ओर दे। इस सम्बन्ध में हमें केवल इतना ही कहना है कि इस समय, जब कि सुधारों के लिए लोग इतने उत्सुक हैं और स्त्रियाँ भी उच्च शिक्षा के लिए लालायित हो रही हैं, हमारे कर्णधारों को इस बात की बड़ी सावधानी रखनी चाहिए कि हमारी शिक्षा-प्रणाली एवं सुधार-पद्धति जातीय प्रथा की हो, केवल यूरोप की नक़ल मात्र न हो।

कॉन्फ्रेन्स में यों तो बिहार से बाहर की २०० से अधिक महिला-प्रतिनिधि उपस्थित थीं, पर बिहार के कुछ लोगों ने इसके विरुद्ध काफ़ी स्थानीय आन्दोलन किया था और यदि श्रीमती पी० के० सेन तथा श्रीमती कमलादेवी चट्टोपाध्याय ने इतना परिश्रम न स्वीकार किया होता तो इसकी इस अधिवेशन का पटने में होना असम्भव ही था। ये दोनों देवियाँ इन दिनों महिला-संसार में बड़ी जाग्रति फैला रही हैं, जिसके लिए सारा देश इनका ऋणी रहेगा।

हमें पूर्ण आशा है कि आगामी वर्ष ये दोनों कॉन्फ्रेन्सें और अधिक उत्साह प्रदर्शित करेंगी और इस वर्ष के पास हुए प्रस्तावों के अनुसार तब तक बहुत-कुछ वास्तविक कार्य भी हुआ रहेगा, जिससे अगली बैठक में कोरे प्रस्ताव ही पास न हों, बल्कि राष्ट्र तथा समाज को हम और भी उन्नत अवस्था में देख सकें। शायद हमें बतलाना न होगा कि आज समस्त राष्ट्रों की दृष्टि भारतीय महिला-मण्डल की ओर आकर्षित हो रही है। महिला-मण्डल के उत्साह को देख कर ही वे देश की वास्तविक जाग्रति का अनुमान लगा सकते हैं। हमें यह देखकर वास्तव में बड़ी प्रसन्नता हुई है कि पटना शिक्षा-सुधार कॉन्फ्रेन्स में शिक्षित महिलाओं ने बड़े उत्साह से भाग लेकर देश के महिला-समाज के समक्ष एक आदर्श उपस्थित किया है और अब नारी-समाज का कर्तव्य हो गया है कि वह स्वयं हाथ-पैर हिला कर अपने अस्तित्व का परिचय दे तथा देश के फूलने-फलने में सहायक हो!

* * *

शैतान की विजय

अन्तिम पंक्तियाँ छपते-छपते हमें यह जान कर वास्तव में बड़ा क्लेश हुआ कि अफ़ग़ानिस्तान के मुल्लाओं ने वहाँ के लोकप्रिय शासक अमानुल्ला ख़ाँ के विरुद्ध केवल इसलिए बग़ावत का झण्डा बुलन्द कर दिया है कि अमीर साहब अफ़ग़ानिस्तान-जैसे जङ्गली प्रदेश को एक उन्नतशाली राष्ट्र बनाने का प्रयत्न कर रहे थे और रूढ़ियों तथा अन्ध-विश्वास के विरुद्ध उन्होंने अनेक सामाजिक तथा राजनैतिक सुधारों की योजना प्रजा के सामने रक्खी थी। आश्चर्य तो यह है कि षड्यन्त्रकारियों को अपने निन्दनीय प्रयत्नों में अभूतपूर्व सफलता मिली है, जिसके फल-स्वरूप सम्राट् अमानुल्ला ख़ाँ को बाध्य होकर शासन का परित्याग करना पड़ा और समस्त अफ़ग़ानिस्तान में आज शिव का नहीं, शैतान का क्षणिक राज्य क़ायम हो गया है!!

मदान्ध तथा षड्यन्त्रकारी प्रजा चाहती थी कि सम्राट् महोदय सारे सुधार वापस ले लें तथा सम्राज्ञी सौरिया का परित्याग इसलिए कर दें—उन्हें तलाक़ दे दें—क्योंकि उन्होंने परदा की अमानुषिक कुप्रथा का परित्याग कर दिया है और वे स्त्रियों में परदा-प्रथा के विरुद्ध आन्दोलन भी कर रही हैं! प्रजा-वत्सल अफ़ग़ानिस्तान के सम्राट् महोदय ने व्यर्थ का रक्तपात न कर, सुधारों को रद्द तो कर दिया, किन्तु अपनी सहधर्मिणी का परित्याग उनके लिए असह्य था—वे भारतीय मुसलमान नहीं थे!! उन्होंने राज्य का परित्याग करना ही उचित समझा। जबकि सम्राट् महोदय ने राज्य का परित्याग ही उचित समझा तो उनके सुधार को वापस लेने की नीति की हम प्रशंसा नहीं कर सकते, यदि विरोध (Protest) स्वरूप सम्राट् महोदय अपने शासन का परित्याग किए होते तो आज उनके व्यक्तित्व के प्रति हमारी श्रद्धा कहीं अधिक बढ़ गई होती।

केवल सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध ऐसा शक्तिशाली आन्दोलन देख कर बड़े-बड़े राजनीतिज्ञों का मस्तिष्क आज चक्कर खा रहा है। उन्हें विश्वास नहीं होता कि मुट्ठी भर मुल्ला सम्राट् अमीर अमानुल्ला ख़ाँ के सुदृढ़ शासन को एक बार ही उलट देने में कैसे समर्थ हुए? हमारा तो विश्वास है कि यह किसी प्रगाढ़ राजनैतिक षड्यन्त्र का फल है। कारण स्पष्ट है, यदि केवल अमानुल्ला ख़ाँ के प्रस्तावित सुधारों के विरुद्ध बग़ावत की आवाज़ उठाई जाती तो उनके शासन परित्याग करते ही सारा वायु-मण्डल शान्त हो गया होता, पर ऐसा नहीं हुआ। अमानुल्ला ख़ाँ के हटते ही उनके भाई इनायतुल्ला ख़ाँ ने राज्य पर अपना प्रभुत्व क़ायम करना चाहा—वस्तुतः ८४ घण्टों तक उन्होंने अफ़ग़ानिस्तान की बादशाहत का लुत्फ़ भी उठाया, पर तुरन्त बचा साक़ा नाम के एक व्यक्ति ने—जिसे कुछ लोग डाकू कहते हैं और कुछ कहते हैं पानी ढोने वाला भिश्ती—उन्हें भी राज्य से खदेर भगाया और इस समय शासन की बागडोर इसी के हाथ में है!

अमानुल्ला ख़ाँ संसार के इतिहास में अद्वितीय प्रतिभाशाली, लोकप्रिय तथा प्रजावत्सल शासक माने जा चुके हैं। एक ऐसे आदर्श सम्राट् का यह नाटकीय पतन देख कर, हमारी तो बुद्धि काम नहीं कर रही है। अपना प्रभुत्व स्थापित करने के लिए, संसार की दृष्टि में अपने को श्रेष्ठ सिद्ध करने के लिए तथा अन्य सांसारिक प्रलोभनों के शिकार होकर, अथवा अपने अधिकारों तथा स्वत्वों की रक्षा के निमित्त राज्यसिंहासन से हाथ धोने की—अपने प्राण तक देने की घटनाएँ तो हमने इतिहासों में अनेक पढ़ी हैं, किन्तु अपनी प्रजा की उन्नति की सद्भावना से प्रेरित होकर, उसे सुदृढ़, चरित्रवान् एवं बलिष्ट करने के उद्योग में अपने राज्य-सिंहासन को ठुकरा देने वाले, अमानुल्ला ख़ाँ पहले शासक हैं—सारे ब्रह्माण्ड का इतिहास हमारी इस धारणा का पोषक है।

अमानुल्ला ख़ाँ का यह पतन स्थायी होगा—उनकी प्रजा उनके मनोभावों की क़द्र न करेगी, हम इसे मानने के लिए तैयार नहीं हैं। हमें ख़ूब स्मरण है, टर्की में भी मुल्लावाद का एक ऐसा ही समय आया था और जिस समय अपने सुधारात्मक विचारों के लिए टर्की की जाहिल प्रजा मुस्तफ़ा कमाल पाशा के जान की दुश्मन हो गई थी और उन्हें अपनी जान बचाने के लिए टर्की से भागना पड़ा था, उस समय उनके साथ केवल २१ नवयुवक थे—समस्त टर्की में केवल २१ आत्माएँ उनके उदार विचारों की पोषक थीं, पर आज वे ही मुस्तफ़ा कमाल पाशा टर्की के प्राण हो रहे हैं—आज बिना उनकी आज्ञा के समस्त राज्य में एक पत्ता तक नहीं हिल सकता। महात्मा लेनिन को एक दिन इसी अपराध के कारण—देश तथा समाज में प्रचलित अन्यायों के विरुद्ध आवाज़ उठाने के कारण—शराब के पीपे में छिप कर भागना पड़ा था और आज? आज उनका नाम केवल रूस ही नहीं, समस्त पराधीन देशों के लिए अक्षय-कवच का काम कर रहा है। स्वामी दयानन्द इसी सुधारात्मक प्रवृत्ति के लिए ईंट और पत्थरों से मारे जाते थे और अन्त में उनकी जान भी इसी अपराध के कारण ली गई, पर फल क्या हुआ? आज आधा संसार उनकी स्मृति का उपासक है। महात्मा ईसा ने इन्हीं ईश्वर-प्रदत्त विभूतियों के लिए अपना बलिदान कर दिया; किन्तु फल क्या हुआ? आज सारा ईसाई-समाज अपने किए हुए अन्यायों के लिए घुटने टेक-टेक कर उनकी आत्मा से क्षमा-भिक्षा माँग रहा है! इन सारी स्वर्गीय आत्माओं की सहानुभूति आज अमानुल्ला ख़ाँ के साथ है!!

उन्मत्त मुल्लाओं को, धन-लोलुप साम्राज्यवादियों को तथा स्वार्थ के पुतले सैनिकों को अपनी समस्त शक्ति लगा कर अमानुल्ला ख़ाँ के विरुद्ध षड्यन्त्र रचने दीजिए, किन्तु हमने जिन कतिपय महात्माओं का नाम ऊपर लिया है, उनकी आत्माएँ अमानुल्ला ख़ाँ की रक्षा करेंगी—शैतान की पराजय और सत्य की विजय होगी। हमारे कानों में कोई कह रहा है कि शीघ्र ही सम्राट अमानुल्ला ख़ाँ तथा सम्राज्ञी सौरिया के सद्भावों की विजय होगी और हमारा यही पड़ोसी अफ़ग़ानिस्तान एशियाई देशों की पराधीनता अपहरण करने में सहायक होगी। परमात्मा हमारी इस भविष्य-वाणी को सफल करें।

* * *

कॉङ्ग्रेस और समाज-सुधार

पिछले ४२ वर्षों से राष्ट्रीय कॉङ्ग्रेस का अधिवेशन देश के कोने-कोने में होता फिर रहा है, और आज तक इस महासभा का उद्देश्य केवल स्वराज्य-प्राप्ति ही रहा है, किन्तु इस बार—कॉङ्ग्रेस की ४३ वीं बैठक में राजनीतिज्ञों का ध्यान पूरी तरह से अपनी लज्जापूर्ण विफलता की ओर आकर्षित हुआ है। इस अधिवेशन में, पहली बार उन्होंने स्वीकार किया है कि बिना पूर्ण सामाजिक सुधार हुए, बिना नागरिकों के सुदृढ़ एवं बलवान् किए लम्बे-लम्बे डग मारना व्यर्थ है। एक हास्यास्पद बात यह है कि इस वर्ष के अन्त तक सरकार से औपनिवेशिक स्वराज्य (Dominion Status) देने की प्रार्थना की गई है। साथ ही यह धमकी दी गई है कि यदि ऐसा नहीं हुआ तो भारतवासी आगामी वर्ष के शुरू में ही अपना ध्येय पूर्ण स्वराज्य (Complete Independece) बना लेंगे। दूसरे शब्द में यों कहिए कि यदि इस वर्ष औपनिवेशिक स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं हुई तो आगामी वर्ष कॉङ्ग्रेस के सभी नेता पूर्ण स्वतन्त्रता की घोषणा कर देंगे। यदि घोषणा कर देने मात्र से ही स्वराज्य की प्राप्ति सम्भव थी, तो यही लम्बी-लम्बी दाढ़ी-मूँछ वाले नेता अब तक

कहाँ थे ? उन्होंने अब तक स्वराज्य की दुन्दुभी क्यों नहीं बजा दी ?

पहली बार इस वर्षीय कॉङ्ग्रेस में रचनात्मक कार्य करने का निश्चय किया गया है। इस बार के प्रस्तावों में विशेष रूप से सामाजिक सुधार सम्बन्धी ठोस कार्यों पर ज़ोर दिया गया है। उन सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध आन्दोलन करने का आदेश किया गया है, जो समाज की स्वतन्त्रता तथा राष्ट्रीय जाग्रति की अवरोधक हैं। इनमें भी पर्दे की कुप्रथा और महिलाओं की अधोगति सम्बन्धी कारणों के उन्मूलन करने के लिए विशेष ज़ोर दिया गया है। अछूतों की शिक्षा तथा सुधार और मादक पदार्थों का निषेध, तथा ग्राम-सङ्गठन आदि भी इस वर्ष के कार्य-क्रम के विशेष अङ्ग उद्घोषित किए गए हैं। सभापति पं० मोतीलाल जी नेहरू ने अपने भाषण में कहा है —

"... I say that the only chance there is of Dominion Status being ever offered to them lies in the complete fulfilment of this very programme"

इस प्रोग्राम की महत्ता के सम्बन्ध में इससे अधिक और क्या कहा जा सकता था। प्रस्तावित स्वतन्त्रता की सारी नींव ही नेहरू महोदय ने अपने इसी कार्य-क्रम पर रख दी है। स्त्रियों के सुधार के सम्बन्ध में अपने इस बार के भाषण में नेहरू महोदय ने बहुत-कुछ कहा है। आपने कहा—

"... If woman is the better-half of man, let us men assist them to do the better part of the work of National uplift."

अर्थात्—यदि स्त्री पुरुष की वास्तव में अर्द्धाङ्गिनी है, तो हम पुरुषों को उचित है कि हम राष्ट्रोन्नति के कार्य में उनके सहायक हों।

सारांश यह कि इस बार सामाजिक सुधार के जटिल प्रश्न को राष्ट्रीय कॉङ्ग्रेस ने, सौत के बच्चे की तरह अलग न फेंक कर, अपने कार्य-क्रम का एक विशेष अङ्ग बना लिया है। इस वर्ष इन कार्यवाहियों से सुधारकों का मार्ग कुछ सरल अवश्य हो जायगा, किन्तु कौन जानता है, राष्ट्रीय रङ्गमञ्च से गले फाड़ कर कोरे व्याख्यान देने वाले हमारे नेता वर्ष भर के लिए छुट्टी न पा जायँगे, क्योंकि उनमें से अधिकांश का तो यह विश्वास है कि स्वराज्य होते ही सारे सुधार आप से आप हो जायँगे ; और इस वर्ष स्वराज्य मिलने में सन्देह की गुञ्जाइश ही नहीं है ! बहुत करके तो ब्रिटिश सरकार स्वयं ही इस वर्ष स्वराज्य दे देगी और यदि नहीं मिला तो नेतागण पूर्ण-स्वतन्त्रता का उद्घोष अवश्य ही कर देंगे। हमारी इस टिप्पणी को मनोरञ्जन का विषय न समझना चाहिए, कॉङ्ग्रेस के अनेक नेताओं का ऐसा ही विश्वास है।

* * *

केशवचन्द्र सेन की जयन्ती

बङ्गाल के प्रसिद्ध समाज-सेवी श्रीयुत केशवचन्द्र सेन की ४५ वीं वार्षिक जयन्ती गत जनवरी में बड़े समारोह से मनाई गई है। सेन बाबू का स्वर्ग-वास हुए आज ४५ वर्ष हो गए, पर सारे बङ्गाल में ही नहीं, भारतवर्ष के बाहर भी इनकी कीर्ति वैसी ही अमर है, जैसी उनके जीवन-काल में थी। दूर-दूर देशों में भी इन्होंने भारतीय आदर्शों की पताका फहराई थी और अभी तक यूरोपीय समाज में इनके नाम का बड़ा प्रभाव है। केशवचन्द्र उन व्यक्तियों में थे, जिन्होंने कॉङ्ग्रेस स्थापित होने के बहुत पूर्व देश की स्वतन्त्रता का प्रश्न उठाया था और अपने जीवन में ही समाज-सुधार द्वारा उसे बहुत हद तक हल भी कर डाला था। पर स्मरण रहे कि ये केवल उन कोरे समाज-सुधारकों में न थे, जो धार्मिक कुरीतियों का ही विरोध करना अपना ध्येय समझते हैं। इनका मुख्य उद्देश्य भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में देश को स्वतन्त्र करना था। और इसी आदर्श को सामने रख कर इन्होंने बङ्गाली समाज को सङ्गठित करने का बीड़ा उठाया था। साथ ही साथ आप दर्शन तथा धर्मशास्त्र के बड़े गम्भीर विद्वान् थे।

पं० ईश्वरचन्द्र विद्यासागर को छोड़ कर इतनी ठोस समाज-सेवा और दूसरे बङ्गाली ने नहीं की है और न इतना विरोध ही किसी दूसरे नेता का हुआ है। इन दोनों महान् आत्माओं का कार्य भारतीय समाज-सुधारकों के लिए सदैव आदर्श तथा प्रोत्साहन का काम करेगा, इसमें ज़रा भी सन्देह नहीं।

प्रत्येक

सन्तानहीन माता

की

हार्दिक उत्कण्ठा

कौन स्त्री ऐसी है जो सन्तानों के लिए अपने हृदय में भीतर ही भीतर उत्सुक न हो ? माता का पद ऐसा स्पृह्य तथा सुखमय है कि सभी स्त्रियाँ इसे प्राप्त करना चाहती हैं—परन्तु कितनी ही ऐसी हैं जिनकी स्वप्नमयी आकांक्षाएँ व्यर्थ हो जाती हैं।

आन्तरिक इन्द्रियों के रोग के कारण आशाएँ सफल नहीं होतीं। सभी औषधियाँ की जाती हैं, पर व्यर्थ।

पर "फ़ेलूना" स्त्रियों की एक अपूर्व दवा है, जो कई वर्षों के विस्तृत प्रयोग का फल है। फ़ेलूना की सहायता से सहस्रों स्त्रियों के सुख-स्वप्न सच्चे सिद्ध हुए हैं। यह सभी स्त्री-रोगों का मूल नाश कर देता है और सारे शरीर को शुद्ध करके ठीक तथा पुष्ट कर देता है। स्त्री-सुलभ सभी दुःखदायक व्याधियों को दूर भगाता है—और सब से बड़ी बात यह कि प्रकृति के महत्वपूर्ण उत्पादन-कार्य में अचूक सहायता देता है।

सन्तानोत्पत्ति के लिए जो स्त्रियाँ अस्वस्थ हैं उन्हें अब निराश न होना चाहिए। फ़ेलूना उनकी बड़ी सहायता करेगा और हर हालत में स्वास्थ्य को शीघ्र ही अतीत उन्नत बना देगा।

FELUNA PILLS

for females only
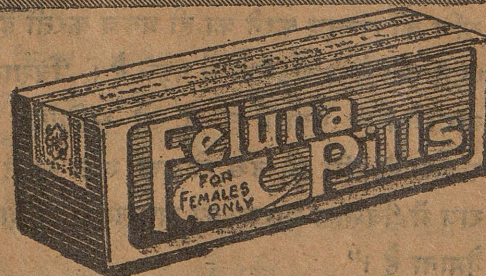
भारतवर्ष, बर्मा तथा लङ्का में सभी केमिस्टों के यहाँ २।) फ़ी बोतल बिकता है। सीधे सोल एजण्टों के यहाँ से भी इस पते पर मँगाया जा सकता है—

पटेल एण्ड धोंड़ी, पोस्ट बॉक्स ८३८, बम्बई, अथवा पोस्ट बॉक्स ६२०, कलकत्ता

सुप्रसिद्ध मेंटो पाकेट वाच

यह मशहूर और बेश कीमती घड़ी पाकेट वाचों की सिर मौर है इसका डायल निहायत सुन्दर और नक्काशी ऐसी नयनाभिराम है कि देखते ही तबीयत फड़क उठेगी बिजली के समान तेज पालिश अपनी चमक से आपके दिलमें घर करलेगो विशेष क्या इसी घड़ी के महान सौन्दर्य्य का मजा घड़ी रखने वाले ही जानते हैं। यदि आप घड़ियों का जरा भी शौक रखते हैं तो इस बेश कीमती चीजका मुलाहिजा अवश्य करें। दाम कुछ नहीं चीज सोना, फकत क्लास ए० ४॥) बी० ६॥) सी० ८॥) सुनहरी और रेडियम के लिये आठ आने अधिक साथ में बढ़िया चैन मुफ्त। डाक खर्च अलग

रेलवे रेगुलेटर लीवर। गारण्टी ५ साल (घड़ी परखुदी है)

अक्सर लोगों की शिकायत रहती है कि कम दाम की घड़ी टाइम ठीक नहीं देती। हम चैलेञ्ज देकर कहते हैं कि यह शिकायत गलत है हमने स्विसके प्रसिद्ध कारीगर मि० एच० क्रीनेस से यह घड़ी बनवाकर हाल ही में मंगवाई, जो मजबूती, सुन्दरता, मनोहरतामें अच्छी २ घड़ियों को शिकस्त देती है। दाम कम होने पर भी चीज हर दिलपसन्द और अपनी शान में अद्वितीय है। दाम सिर्फ २॥) बेष्ट क्वालिटी ३॥) साथ में चैन मुफ्त।

सुप्रसिद्ध कलैण्डर वाच॥ गारण्टी ३ साल

यह कलैण्डर वाच सभी कारबारी आदमियों के बड़े ही काम की चीज है। एक घड़ी के साथ चार २ विशेषताएं किसी दूसरी घड़ी में मिलही नहीं सकती। सर्व प्रथम तो घड़ी ही ऐसी मजबूत, सुन्दर और बेश कीमती है कि क्या कहना, दूसरे इसके साथका कलेण्डर जो हजार वर्ष तक दिन, तारीख और सन् बतलाता रहेगा। तीसरे साथमें लगा गरमी नापने का वैज्ञानिक यंत्र जो गरमी की कमी बेशी बतलाता है। चौथा जिसका टेबला वाहवा इसकी खूब सूरती तो देखने से ही जानी जाती है। इन सब चार२ विशेषताओंसे युक्त महान् कलैण्डर वाचका दाम आप सुनकर ताज्जुब करेंगे, सिर्फ ६॥) बढ़िया ८॥) डाक खर्च अलग

टेबिल टाइम पीस।

घड़ी अद्वितिय है आनमें, शानमें, बानमें, खुब सूरती में, मनोहरतामें मजबूतीमें अद्वितीय, घरमें, आफिस में, बैठकखानोंमें, स्कूल में, कालेजमें जहां रखेंगे वहांकी शोभाको चौगुना करेगी। टूटने फूटने का बिलकुल डर नहीं। दाम सिर्फ ४) बढ़िया सिर्फ ५) अलार्म घण्टी वाली ४॥) बढ़िया ५॥)

माल मंगानेका पता— दी एशियाटिक ट्रेडिंग कम्पनी पोस्ट बक्स ६७२० कलकत्ता

गुडलक फाउन्टेन पेन

फाउन्टेन पेन प्रत्येक पढ़े लिखे आदमी के लिये कितनी आवश्यक बस्तु है यह सभी जानतेहैं । यह फाउन्टेन बहुत ही बढ़िया निहायत फैशनेबल और बहुत मजबूत है इसकी निब सोनेकी जो फूलसी हलकी तथा फौलादसी मजबूत स्याही भरनेकी पिचकारी साथ में मुफ्त । दाम १॥) २॥) ३) बहुत बढ़िया ३॥) ४॥) ६) डाक खर्च अलग ।

ड्राइंग बक्स

ये ड्राइंग बक्स बहुत बढ़िया हैं सभी आवश्यक सामान बक्स में बड़ी सुन्दरता और सफाईसे सजाया गया है परकाल, पेंसिल, स्केल सभी चीजें है दाम छोटा १॥) बड़ा चित्रकारों डिजाईनरों के कामका ८) १०) १५) डाक खर्च अलग
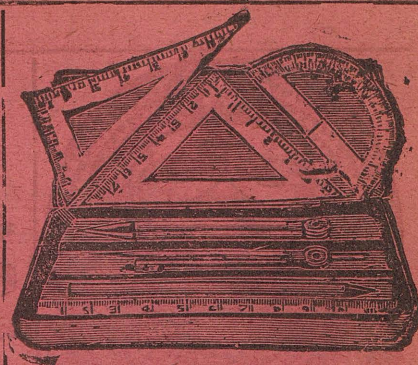
सोलह फला चाकू

यह चीज प्रत्येक गृहस्थ और विशेषकर स्काउटोंके बड़े कामकी है चाकू, छुरी, कांटा करौती, कैंची, कार्क निकालने का यंत्र आदि सभी चीजें मौजूद है। दाम २) बड़ा और बढ़िया ३॥) डाक खर्च अलग
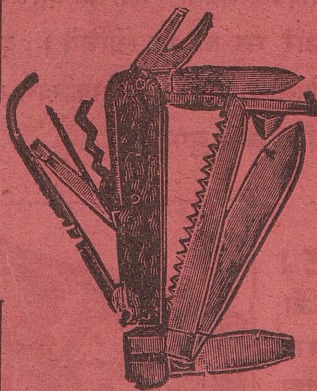
रूफरी चूल्हा

न लकड़ियों का झंझट न कोयलोंकी आफत कमखर्च (बालानसीन)॥ पैसे क खर्चमें घर भरका भोजन १० मिनिटमें तय्यार, सफर वालोंके लिये बड़े काम की चीज है। कमरे को धूवें से बचाइये स्वास्थ्य सुफत लूटिये। दाम ८ बढ़िया १०) विधिपत्र मुफत
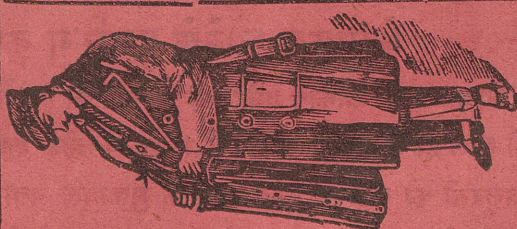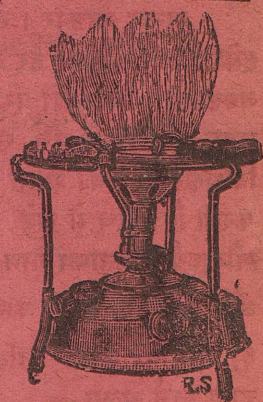
बरसाती

बेहद मजबूत निहायत फैशनेबिल और आला दर्जे के हैं। बरसात के कष्ट से बचिये। दाम ५॥) बढ़िया ७॥) १०) २५)

शारदा फ्लूट हारमोनियम ।

शारदा फ्लूट हारमोनियम भारत भरमें प्रसिद्ध है। इसमें बढ़िया और मजबूत सागौनकी लकड़ी लगाई जाती है। रीडबढ़िया और पेरिस के बने है जो कभी खराब नहीं होते । डबल पालिस जिसमें चेहरे का बाल २ दिखलाई पड़ता है। गारन्टी ४ साल, दाम सिंगल रीड चार स्टाफ २५) ३०) ३५) डबलरीड ५ या ६ स्टाफ ३५) ४०) ४५)—
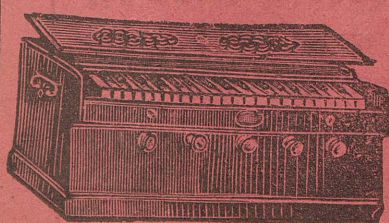
माल मंगानेका पता— दी एशियाटिक ट्रेडिंग कम्पनी पोस्ट बक्स ६७२० कलकत्ता

केमिकल सोनेका अनन्त

अनन्त हिन्दू 'आर्यों' का मुख्य और धार्मिक गहना है इसे पहनना प्रत्येक हिन्दू का कर्तव्य है। यह बेश कीमती गहना सब गहनों का सम्राट, आभूषणों का मुकुटमणि, जेवरोंकी जान, शारीरिक शोभा, धार्मिक आभा का जीता जागता अवतार है। इसकी नक्काशी उंचे दर्जेकी आकार प्रकार अत्यन्त बढ़िया और नयनाभिराम डिजाइन हर दिल पसन्द है। अनन्त ठीक चित्रकी तरह है यह ध्यान रहे चित्र आखिर नकल है। असली अनन्त इससे अधिक सुन्दर मनोहर और दर्शनीय है। अवश्य एक जोड़ा मंगाकर इस राजसी गहने से घरकी स्त्रियों में राज लक्ष्मी सा सौन्दय देखिये। हीरे और मोतियों के हजारों रुपये के गहने इसके सामने शरमाकर मुंह छिपा लेते हैं। छोटे बड़े सभी नाप के स्टाकमें मौजूद हैं बघ मुहां और हाथी मुहां सभी प्रकार के हैं। जिस पर नजर डटे वही मंगाकर घरको परिस्तान बनाइये। बड़े बड़े खान्दानकी श्रीमतियां इस महान राजसी गहनेको बड़े शौक से मंगाकर अपनी ख्वाहिस पूरी करती हैं। दाम २ नग एक जोड़ा राजसी अनन्त का ५) ६) बेष्ट क्वालिटी सोनेकी डबल पालिश ८) १०) डाक खर्च आदि ॥) पेकिंग मुफ्त

परदेपर चलता फिरता तमाशा दिखाने वाली बायस्कोप मशीन

आप बेकार क्यों हैं? देखिये—दौलत का पेड़ सामने है

यदि आप बेकार हैं तो मत पछताइये देखिये--दौलतका पेड़ आपके सामने है साहस करके उठिये और मन वांछित धन प्राप्त कीजिये। पर्दे पर चलता फिरता तमाशा दिखाने वाली मशीन, जिसे हिन्दीमें बायस्कोप और अङ्गरेजीमें सिनेमा कहते हैं। आपकी बेकारीको दूर कर मनवांछित धन देगी। इसके मुकाबले कोई व्यापार है ही नहीं। इस मशीन के जरिये देहात या शहर मे २ घण्टे तमाशा दिखाकर २) से २५) रोज तक पैदा कर सकते हैं। मशीनके साथ फिल्म जिनमे तीन तमाशे होते हैं तथा आवश्यक सामान और विधि पत्र मुफ्त भेजा जाता है। मन बहलाव के लिये छोटी ८) १०) १५) २५) तमाशा दिखाकर रुपये पैदा करने वाली बड़ी मशीन ५०) ८०) १००) २००) से १५००) तक।

माल मंगाने का पता— दी एशियाटिक ट्रेडिंग कम्पनी पोस्ट बक्स ६७२० कलकत्ता

छप गया !
छप गया !!
एक हलचल मचाने वाला, सर्वथा मौलिक
सामाजिक उपन्यास
अनाथ पत्नी
[ले० पण्डित भगवतीप्रसाद जी वाजपेयी]
[भूमिका-लेखक—श्री० विश्वम्भरनाथ जी शर्मा, कौशिक]
इस उपन्यास में बिछुड़े हुए दो हृदयों—पति-पत्नी—के अन्तर्द्वन्द का ऐसा सजीव चित्रण है कि पाठक एक बार इसके कुछ ही पन्ने पढ़कर करुणा, कुतूहल और विस्मय के भावों में ऐसे ओत-प्रोत हो जायँगे कि फिर क्या मजाल कि इसका अन्तिम पृष्ठ तक पढ़े बिना कहीं किसी पत्ते की खड़-खड़ाहट तक सुन सकें !
अशिक्षित पिता की अदूरदर्शिता, पुत्र की मौन व्यथा, प्रथम पत्नी की समाज-सेवा, उसकी निराश रातें, पति का प्रथम पत्नी के लिए तड़पना और द्वितीय पत्नी को आघात न पहुँचाते हुए, उसे सन्तुष्ट रखने को सचेष्ट रहना, अन्त में घटनाओं के जाल में तीनों का एकत्रित होना और द्वितीय पत्नी के द्वारा, उसके अन्तकाल के समय, प्रथम पत्नी का प्रकट होना—ये सब दृश्य ऐसे मनोमोहक हैं, मानो लेखक ने जादू की क़लम से लिखे हों !!
लेखक कहानी और उपन्यास लिखने में वैसे भी लब्ध-प्रतिष्ठ हैं, पर इस उपन्यास के लिखने में तो उन्होंने सचमुच कमाल किया है । शरत् बाबू के उपन्यासों में जो मोहक आकर्षण है और मेरी करेली के उपन्यासों में जो तड़पन, वह सब आपको इसकी पृष्ठ-प्यालियों में सर्वत्र ही छलकता हुआ मिलेगा !!!
काग़ज़ बढ़िया, छपाई लाजवाब, मूल्य केवल २)
व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय, इलाहाबाद

Printed and Published by R. SAIGAL—Editor—at The Fine Art Printing Cottage, Twenty-eight, Elgin Road Allahabad.